सूफी साहित्य में अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोधार्थी

कु० कृष्णा खत्री एम० ए० (हिन्दी)

निर्देशक

डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एम० ए०, डी०

रीडर हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
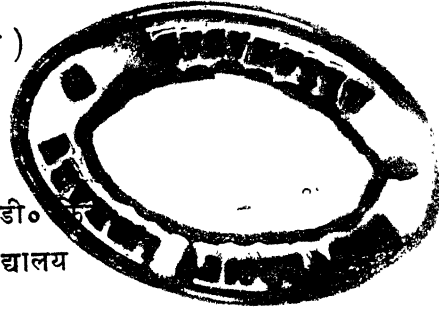
हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अक्टूबर १९८८

प्राक्कथन

स्नातकोत्तर स्तर पर अध्ययन करते समय से ही मेरे मन में साहित्यिक क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने की विशेष अभिरुचि थी । इन्हीं दिनों जाने अनजाने मेरे अन्तरम में सूफी काव्य के प्रति आकर्षण बढ़ता गया और मैंने सूफी साहित्य पर कार्य करने की अपनी इच्छा डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव जी से प्रकट की । उन्होंने मुझे " सूफी साहित्य में अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति " विषय पर कार्य करने की प्रेरणा दी क्योंकि यह विषय शोध की दृष्टि से अछूता था , तदर्थ मैंने विभाग में शोधार्थ प्रार्थनापत्र दिया जो संयोग से स्वीकृत हो गया । अब मेरा शोध कार्य पूरा हो गया है जो कि संभवतः प्रथम और मौलिक है ।

वैसे तो सूफी साहित्य पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका है । इनमें शोध ग्रन्थ भी है , जिनमें विशेष उल्लेखनीय श्री चन्द्रबली पाण्डेय कृत तसव्वुफ अथवा सूफीमत , पंडित परशुराम चतुर्वेदी कृत सूफी काव्य संग्रह श्री रामपूजन ~~तिवारी~~ तिवारी कृत सूफीमत साधना और साहित्य , डा० विमल कुमार जैन कृत सूफीमत और हिन्दी साहित्य , डा० शिवसहाय पाठक कृत हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन , डा० श्याम मनोहर पाण्डेय कृत मध्ययुगीन प्रेमाख्यान , जयबहादुर लाल कृत सूफी संत साहित्य का उद्भव और विकास , डा० कमल कुलश्रेष्ठ कृत हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य तथा डा० सरला शुक्ल की जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य ग्रन्थ हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में निबद्ध किया गया है । प्रथम अध्याय भूमिका के अन्तर्गत विषय का स्पष्टीकरण करते हुए सूफीमत के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में विचार किया गया है । सूफी शब्द के विवेचन में विभिन्न विद्वानों द्वारा अभिव्यक्त विविध अभिमतों का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है

कि सूफी वह है जो शान्ति पूर्वक जीवन यापन करता है तथा परमात्मा में लीन रहता हुआ दृश्यमान जगत की विषमताओं को देखकर ईश्वरीय चिन्तन में लगा रहता है । वह आत्मशुद्धि को विशेष महत्व देता है । सूफी मत के प्रारम्भिक इतिहास पर विचार करते हुए भारत में विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा सूफीमत का प्रचार और प्रसार दिखाया गया है । प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यह बताया गया है कि प्रेम ही धर्म है , प्रेम ही धर्म है , प्रेम ही ज्ञान है और प्रेम ही उपासना है । प्रेमतत्व की प्रधानता के कारण सूफी काव्य को प्रेमकाव्य की संज्ञा भी दी गयी है ।

द्वितीय अध्याय का विवेचन संस्कृति के निरूपण तथा भारतीय संस्कृति के परिचय से सम्बन्धित है । संस्कृति शब्द पर व्यापक विचार करने के अतिरिक्त संस्कृति की परिभाषा तथा अर्थ के स्पष्टीकरण में अनेक देशी-विदेशी विद्वानों के मत उद्धृत किये गये हैं । शाब्दिक विवेचन में " संस्कृति " तथा " कल्चर " दोनों पर विचार करने के उपरान्त इस मत का निराकरण किया गया है कि संस्कृति शब्द आधुनिक काल में कल्चर के लिए गढ़ा गया नया शब्द नहीं है । इसी अध्याय में भारतीय संस्कृति की विशेषताओं के आकलन में बताया गया है कि भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों से मिलकर धीरे-धीरे विकसित हुई है । भारतीय संस्कृति की सीमा में संस्कार , खान-पान , रहन-सहन , वेश-भूषा सामाजिक राजनीतिक , धार्मिक , आर्थिक , साहित्यिक आदि सभी तत्व सम्मिलित हैं ।

तृतीय अध्याय में सूफी संस्कृति के अनुशीलन में इस्लाम के आधारभूत सिद्धान्त , मुस्लिम संस्कारों , त्योहारों और तीर्थस्थानों का विवेचन है ।

चतुर्थ अध्याय का विवेच्य विषय है प्रमुख रचनाएं और रचनाकार । इस अध्याय में सूफी काव्य ग्रन्थों की कथावस्तु , वस्तु संगठन , विविध पात्रों

तथा उनकी चारित्रिक छवि , रस-भावाभिव्यंजना तथा अलंकार-योजना जैसे विषयों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में सूफी कवियों की आध्यात्मिकता , काव्य-दर्शन ,कथानक रूढ़ियों और प्रेम साधना विषयों का अनुशीलन किया गया है ।

छठाँ अध्याय सांस्कृतिक लाक्षणिकता से सम्बद्ध है । इसमें सूफी कवियों की भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का आकलन है ।

उपसंहारात्मक सप्तम अध्याय में हिन्दी तथा सूफी संस्कृति के योग द्वारा उपलब्ध परिणामों का निरूपण है ।

परिशिष्ट भाग में अक्षर क्रम से मूल तथा सहायक ग्रन्थों की सूची दी गई है । शोध प्रबन्ध में जिस संस्करण का प्रयोग किया गया है , प्रायः उसी संस्करण के प्रकाशन वर्ष का उल्लेख किया गया है ।

प्रबन्ध-परक परिचय के बाद अब आभार-ज्ञापन का पुनीत कार्य शेष रह जाता है । शोध-प्रबन्ध के लेखन में जिन-जिन महानुभावों ने मुझे सहयोग प्रदान किया उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा परम कर्तव्य है । सबसे बड़ा आभार मैं उनका मानती हूं जिनकी कृतियों से मैंने सहायता ली है । उनके अभाव में सही दिशा पा सकना असम्भव था । उनके प्रति हार्दिक आभार निवेदित करती हूं ।

मैं विभागाध्यक्ष डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी की परम आभारी हूं , जिन्होंने मेरे अनुसंधान काल में अपेक्षित सहायता कर मेरे प्रति अपनी सहज उदारता प्रदर्शित की है ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अपने अन्य गुरुजनों -निवर्तमान अध्यक्ष डा० जगदीश गुप्त , प्रो० माताबदल जायसवाल , डा० मोहन अवस्थी , डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह , डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा आदि की कृपा एवं प्रेरणाओं के लिए मैं अत्याधिक कृतज्ञ हूं ।

उर्दू के विभागाध्यक्ष सैय्यद अकील रिजवी , सैय्यद मुहम्मद अकील रिजवी डा० अखिया निशात खान और डा० अली अहमद फातमी जिन्होंने अपना अमूल्य एवं व्यस्त समय देकर सीधी बातचीत के द्वारा आत्मीय सरलता के साथ अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है ‡ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूं ।

मैं उन समस्त मित्रों , मार्ग दर्शकों की भी आभारी हूं जिन्होंने मेरा किसी न किसी रूप में मार्ग दर्शन किया एवं सहायक सिद्ध हुए ।

आज तक मैंने जो ज्ञानार्जन किया उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे पूजनीय पिताश्री तथा माता जी को है । मैं उनकी हार्दिक अभिलाषा को सम्बल मानकर ही निरन्तर अध्ययन के प्रति समर्पित होती गई हूं । उनका वात्सल्य पूर्ण व्यवहार दीपशिखा की भांति मेरी पग-पग पर रक्षा करता रहा । यही कारण है कि मैं कभी कार्य से हतोत्साहित नहीं हुई ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव जी के असीम स्नेह , सुमधुर व्यवहार एवं सौम्य स्वभाव तथा गुरुतम परामर्श का प्रतिफल है । आशा-निराशा की द्वैध मनःस्थितियों में सुसौम्य गुरुदेव जी की आत्मीयता एवं कृपापूर्ण वाणी ही आधार शिला बनकर प्रेरक रही है । अतः कार्य समाप्ति के इस अवसर पर कृतज्ञता ज्ञापन की औपचारिकता से मैं उऋण नहीं हो सकती । वास्तव में श्रीवास्तव जी के कुशल पथ-प्रदर्शन के अभाव में यह कार्य पूरा\होना सर्वथा असम्भव था ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग , इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, पब्लिक लाइब्रेरी , सेंट्रल लाइब्रेरी तथा भारती भवन पुस्तकालयों के अधिकारियों के सौजन्य एवं सहयोग के प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करती हूं , जिनकी औपचारिक अनौपचारिक सहायता से शोध कार्य सम्पन्न हो सका है ।

शोध प्रबन्ध का लक्ष्य नयी जानकारी देना तथा नये तथ्यों का विवेचन-विश्लेषण होता है । उसमें अंतिम सत्य तक पहुंचने तथा उसे पकड़ने की चेष्टा होती है । किन्तु अंतिम सत्य उपार्जित हुआ यह दावा नहीं किया जा सकता । अतः यदि विद्वानों को शोध प्रबन्ध में कोई अभाव मिले तो उसके लिये मैं अग्रिम क्षमा चाहूंगी । गोस्वामी जी के शब्दों में विद्वज्जन " सुनहहिं बालवचन मन लाई " ।.

कृष्णा खत्री

: कृष्णा खत्री :

विषय - सूची

00 ————00

अध्याय - १

भूमिका :- सूफीमत एवं साहित्य

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

सूफीमत के उद्भव और विकास पर विचार करने से पूर्व "सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

"सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विविध तर्कों एवं युक्तियों के द्वारा इस शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों को संगत एवं समीचीन सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये हैं।

१- कतिपय विद्वान "सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति "सूफा" शब्द से मानते हैं। "सूफा" अर्थात पवित्र। उनका कहना है कि जो लोग पवित्र थे, वे सूफी कहलाये।[१]

२- कुछ लोगों की धारणा है कि मदीना में मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था, उसी पर जो फकीर बैठे वे सूफी कहलाये।[२]

३- कुछ लोगों का कहना है कि "सूफी" शब्द के मूल में सफ (पंक्ति) है। निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एवं व्यवहार के कारण औरों से अलग एक पंक्ति में खड़े किये गये, वास्तव में उन्हीं को सूफी कहा गया।[३]

४- कुछ विद्वानों के अनुसार "सूफी" शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपान्तर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है।[४]

५- अलबरूनी (जन्मकाल ६७३ ई०) के समय में भी यह मान्यता थी कि "सूफ" (ऊन) शब्द से "सूफी" शब्द बना। पर उसने यह मत प्रकट किया है

कि उच्चारण में विकृति के कारण "सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति "सूफ" से की जाने लगी ।[5] अलबरूनी का कथन है कि - उसके ख्याल से इसका अर्थ वह युवक है जो "साफी (पवित्र) है । यह साफी ही उसके अनुसार सूफी हो गया है - अर्थात "विचारकों का दल" ।[6]

ब्राउन महोदय का कथन है कि "यह बिल्कुल निश्चित है कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति "सूफ" (ऊन) से हुई । फारसी में रहस्यवादी साधकों को "पश्मीना-पोश" (ऊन का बना वस्त्र धारण करने वाला) कहा गया है, इससे भी इस मत की पुष्टि होती है ।"[7]

वस्तुत: "सूफी" शब्द सूफ (ऊन) से ही व्युत्पन्न है । व्याकरण की दृष्टि से भी "सूफी" शब्द की "सूफ" शब्द से व्युत्पत्ति शुद्ध है । "सूफ" और "सूफी" शब्दों के बीच सीधा शब्द साम्य ही दिखाई पड़ता है । इसलिए "सूफ" से "सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति उपयुक्त प्रतीत होती है ।

परिभाषाएं :-

विभिन्न सूफी साधकों ने अपने ज्ञान और सूझ के अनुसार यह बताने की चेष्टा की है कि सूफी कौन है? उनके द्वारा सूफी शब्द की दी गई परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :-

अबुल हुसैन अननूरी का कहना है कि "सूफी को संसार से घृणा होती है और परमात्मा से प्रेम ।"[8] बिशर अलहाफी ने बतलाया है कि "सूफी वह है जो परमात्मा के सहारे अपने हृदय को पवित्र रखता है ।"[9] जुन नून मिस्री ने सूफी के लक्षणों को बतलाते हुए कहा है कि "सूफी वह है जो कथन और कर्म में सामंजस्य बनाये रखता है ।"[10] इसी प्रकार डा० रामलाल वर्मा तथा डा० रामचन्द्र वर्मा ने भी विभिन्न विद्वानों द्वारा सूफी शब्द की भिन्न-भिन्न

परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं - जैसे अबुअली कुम्बीनी - "सुन्दर व्यवहार करने वाला सन्त सूफी है।"[११] अबुहसन धाकूरी - "विधि निषेधों से उदासीन रहने वाला सन्त सूफी है।"[१२] अबु सईद फज्जुल्ला - "एक निष्ठ होकर परमात्मा में ध्यान लगाने वाला सूफी है।"[१३] अबु बक्र शिब्ली - "परमात्मा को छोड़कर और कहीं मन केन्द्रित न करने वाला सूफी है।"[१४]

श्री चन्द्रबली पाण्डे के अनुसार "जो जन्म से मुसलमान और कर्म से सूफी हो उसे ही सूफी माना जाय, किसी अन्य को नहीं"[१५]। अबुलफिदा नामक इतिहासकार लिखता है कि "ये महान आत्माएं 'असहाबे सुफा' पनी स्थान या पूजा मन्दिर में बैठने वाले ही सूफी कहे जाते थे।"[१६]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सूफी वह मर्मी साधक है जो ऊनी चोगे का व्यवहार करता है और परम प्रियतम के रूप में परमात्मा की उपासना करता है तथा उसे अपने जीवन का परम लक्ष्य मानता है।

ऊनी वस्त्र धारण करने के कारण सूफी अपनी निस्पृहता, सादगी, स्वेच्छा तथा दारिद्र्य का प्रदर्शन करने में समर्थ थे। सांसारिक वस्तुओं के प्रति उन्हें कोई मोह न था। ईश्वर के प्रति अनुराग और अबाध भक्ति में ही काल-यापन करना ही उनका सर्वोच्चादर्श था। परमेश्वर की उपलब्धि ही उनकी चिन्ता का एक मात्र विषय था। इस प्रकार धन, वैभव, गृह परिवारादि के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करना सूफियों के लिये स्वाभाविक हो गया था। सादगी की यह वेशभूषा उनका केवल परिधान न था, यह सन्यास व्रत सूफियों की आन्तरिक मनोवृत्तियों को भी प्रभावित करता रहा।[१७]

अतएव सूफी हृदय से अत्यन्त उदार और सांसारिक बन्धनों के प्रति उदासीन रहते थे साथ ही फकीरी जीवन व्यतीत करते थे। उनके अनुसार

सूफी किसी भी प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी नहीं होता है और न ही उसका कोई स्वामी होता है। अतः सांसारिकता से परे ईश्वर प्रेमी सच्चे सन्त ही सूफी कहे जाते थे। वास्तव में उनका सादा फकीरी जीवन, एकान्त में परमात्मा का ध्यान और स्मरण एक प्रकार से सामाजिक कुरीतियों के प्रति उनके अन्तर के विद्रोह का प्रतीक था। बाह्य और आन्तरिक शुद्धि और पवित्रता बनाये रखना ही उनका कर्तव्य था। उनका एक मात्र उद्देश्य अपनी समस्त इच्छाओं समस्त वासनाओं को मिटा कर परमात्मा की इच्छा पर ही अपने को छोड़ देना था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि "मुस्लिम साधकों ने विश्व-व्यापक अलौकिक सत्ता की झलक भी नियमों और प्रतिबन्धों से परे हो स्वच्छन्द पाकर जिस रहस्य का उद्घाटन किया, उसी के सामंजस्य का नाम सूफीमत है।"[१८]

सूफीमत के प्रारम्भिक काल से ही कुछ साधकों में रहस्यवादी प्रवृत्तियां परिलक्षित होने लगती हैं। उस काल के सूफी साधक अधिकांश में एकान्तिक और फकीरी जीवन बिताने वाले थे। सांसारिक विषयों से अपने को अलग हटाकर कष्ट साध्य और त्यागमय जीवन बिताना ही उनका आदर्श था। अतः सच्चा सूफी संसार से विमुख होता हुआ उस अनन्त स्रोत की ओर उन्मुख हो जाता है जहां उसे ईश्वरीय साक्षात्कार का आभास मिलने लगता है।

<u>सूफीमत का उद्भव और विकास</u>

सूफीमत का उद्भव अथवा सूफीमत का प्रारम्भिक इतिहास ६२३ ई० से मिलने लगता है, जब मुहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे। सूफीमत के विकास के सम्बन्ध में स्वर्गीय चन्द्रबली पाण्डेय,[१९] डा० कमल कुलश्रेष्ठ[२०], पण्डित परशुराम चतुर्वेदी,[२१] डा० सरला शुक्ल,[२२] श्री रामपूजन तिवारी,[२३] एवं विमलकुमार जैन[२४]

आदि विद्वानों ने गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है । इन विद्वानों के अनुसार सूफीमत का आविर्भाव इस्लाम के अन्तर्गत ही हुआ और इस्लाम की गोद में ही फल-फूल कर पल्लवित हुआ ।

प्रसिद्ध सूफी साधक मारूफ अल-करखी (सन् ८१५ ई०) ने सूफीमत की चर्चा करते हुए बताया कि " परमात्मा सम्बन्धी सत्य का जानना और मानवीय वस्तुओं का त्याग ही सूफी का धर्म है ।"[२५] सूफी साधकों में बसरा के अलहसन अल-बसरी का विशिष्ट स्थान है । बाह्य एवं आभ्यंतरिक शुद्धि और पवित्रता बनाये रखना ही उसकी प्रमुख साधना थी । इसन के प्रयासों के फलस्वरूप सूफीमत इस्लाम धर्म के प्रमुख अंग के रूप में विकसित हुआ ।

प्रारम्भिक काल के सूफी साधकों में इब्राहीम बिन-अधम (मृ० सन् ७७७ ई०) फुजायल बिन अयाज (मृ० ८०१ ई०) और राबिया अल-अदाविया (मृ० ८०२ ई०) आदि सूफी साधक फकीरी जीवन , एकान्तवास और सांसारिक वस्तुओं के त्याग पर जोर देते थे । परमात्मा के ऊपर अपने को सम्पूर्ण रूप से छोड़ देना ही उनके उपदेशों का सार था । ये स्वभाव के अत्यन्त विनम्र होते थे तथा संसार से विरक्त होकर सादा और कष्टमय जीवन यापन करने में आत्मिक सुख और शान्ति का अनुभव करते थे , अर्थात ईसा की सातवीं शताब्दी के सूफी साधकों को संसार से पूर्ण विरक्ति और एकान्त जीवन से लगाव था । एक मात्र ईश्वर में विश्वास और आचरण की पवित्रता ही उन्हें मान्य थी , जैसा कि अल-कुशैरी " बाह्य और आभ्यन्तरिक जीवन की पवित्रता को ही सूफी धर्म मानते थे । उनके अनुसार " पवित्रता एक श्रेष्ठ वस्तु है , चाहे जिस प्रकार की भाषा के द्वारा उसे क्यों न व्यक्त किया जाय और इसके विपरीत अपवित्रता है जिसका परित्याग करना चाहिए ।[२६]

यद्यपि इस काल के साधकों को पापवृत्ति तथा ईश्वरीय दण्ड विधान की कठोरता सदैव भयभीत बनाये रखती थी तथापि इनमें भावात्मक चिन्तन का पूर्ण विकास हुआ था ।

इब्राहीम बिन अधम ने राज्य-त्याग , फकीरी जीवन , एकान्तवास तथा सांसारिक वस्तुओं के परित्याग पर ही जोर दिया तथा एक मात्र ईश्वर पर अपने को छोड़ देना ही उनका उद्देश्य था । एक स्थान पर तो अत्तार ने उसके एक प्रवचन को उद्धृत किया है , जिसमें कहा गया है, - " हे खुदा , तुम जानते हो कि अपना प्रेम प्रदान कर जिस प्रकार तुमने मुझे गौरवान्वित किया है उसकी तुलना में आठों स्वर्ग मच्छर के एक पंख से अधिक मूल्य नहीं रखते ।"[27] उनके इस प्रकार के सभी उपदेशों में सांसारिकता का त्याग और सन्यास भावना का पूर्ण सन्निवेश मिलता है । इब्राहीम के अनुसार "गरीबी ईश्वर का दिया हुआ प्रसाद है ।" उसने सुख शान्ति और ऐश्वर्य के बदले दुख , विनय और गरीबी को ही वरण किया । परमात्मा की अनन्य भक्ति तथा संसार के प्रति उसकी विरक्ति कितनी अधिक थी इसका पता निम्नलिखित कहानी से चलता है । "जब इब्राहीम राज्य त्यागकर फकीरी जीवन बिताता हुआ इधर-उधर घूम रहा था तो कहीं उसकी एक नौजवान से भेंट हुई । वह नौजवान उसका पुत्र था । उसे देखकर उसके मन में मोह उत्पन्न हुआ लेकिन वह फिर संभल गया और उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि " हे खुदावन्द , तुम्हारे प्रेम के लिये मैंने संसार का त्याग किया और तुम्हारे ध्यान में लौ रहने के लिए मैंने अपने बच्चों को अनाथ बनाया । अब अगर इस प्रेम को पाने के लिए तुम्हारी यही शर्त हो कि मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जांय तो भी तुम्हारे सिवाय मैं किसी की ओर मदद के लिये नहीं देखूंगा ।"[28]

सूफीमत के विकास में राबिया अल-अदाविया (जन्म सन् ७१७ ई०) का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है । उसका जन्म स्थान बसरा था इसलिये उसे राबिया अल-बसरी के नाम से भी पुकारा जाता है । राबिया में ही सर्वप्रथम प्रेम दर्शन का उदय और

प्रखर रूप सामने आता है । एक स्थान पर वह स्वयं कहता है कि "खुदा के प्रेम ने मुझे इतना अभिभूत कर दिया है कि मेरे हृदय में अन्य किसी के प्रति न तो प्रेम शेष रहा, न घृणा शेष रही ।"[29] उसका सम्पूर्ण जीवन गरीबी, ईश्वर, चिन्तन तथा प्रेम की आंच में तपते हुये बीता । उसका समस्त जीवन प्रेममय था और उस प्रेम के समक्ष संसार की सभी वस्तुएं उसके लिये तुच्छ और नगण्य थीं । परमात्मा के प्रति उसका प्रेम इतना अगाध था कि उसे दूसरी किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी । उसका कहना था कि "प्रेम के द्वारा ही परमात्मा को पाना सम्भव है । उस प्रेम की आंच में मनुष्य के सारे कलुष जलकर भस्म हो जाते हैं और परम प्रियतम का पाना सहज हो जाता है ।"[30]

राबिया माधुर्य भाव की अनन्य उपासिका थी । सर्वप्रथम राबिया ने ही सूफीमत में प्रेम भावना का विकास किया उसे परम प्रेम ही श्रेय था अतः वह कहती है "हे नाथ तारे चमक रहे हैं, लोग निद्रा निमग्न हैं, सम्राटों के द्वार बन्द हैं, प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेयसी के साथ और मैं यहां अकेली आप के साथ हूं ।"[31] वह एक मात्र ईश्वर में विश्वास करती थी और उस ईश्वर की ज्योति में ही लीन हो जाना चाहती थी । उसका उद्देश्य था कि प्रेम के द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति सहज और स्वाभाविक है अतः उस परम प्रियतम के असीम सौन्दर्य के दर्शन हेतु वह सर्वस्व त्यागने को सदैव तत्पर रहती थी । वह स्वयं को ईश्वर की पत्नी समझती थी और कहती थी "हे परमात्मा इस संसार में हमारे लिये जो कुछ भी तुमने निर्दिष्ट कर रखा है, उसे अपने शत्रुओं को प्रदान कर दे । और परलोक का जो कुछ है उसे अपने उपासकों को प्रदान कर दें । मेरे लिये तो तुम ही यथेष्ट हो और मैं कुछ नहीं चाहती ।"[32]

सर्वप्रथम राबिया में ही प्रेम का प्रज्ज्वलित रूप सामने आता है । उसका सम्पूर्ण जीवन प्रेममय था और उसका रोम-रोम प्रेम का ही आर्तनाद कर रहा था । "अनन्य भक्ति और प्रेम तथा परमात्मा के हाथों में सम्पूर्ण रूप से अपने आपको सौंप

देना राबिया की अपनी विशेषता थी ।'[33]

आरम्भिक काल के सूफी साधक फकीरी जीवन को ही ईश्वरीय विधान के अनुरूप मानते थे और सदैव ध्यानामग्न रहते थे । अन्तःकरण की शुद्धि ही उनकी साधना का प्रमुख लक्ष्य था ।

सूफीमत के क्रमिक विकास को लगभग नवीं शताब्दी में 'मारुफुल करखी' ने सूफीमत का व्यापक प्रचार और प्रसार किया । मारुफुल करखी मेसोपोटामिया के वासित नगर का निवासी था, तथा सूफीमत का पक्का अनुयायी था । कहा जाता है कि परमात्मा के प्रेम में वह डूबा रहता था । उसका कहना था कि परमात्मा के दास वे हैं जिनका ध्यान परमात्मा में लगा रहता है और जो परमात्मा के संग वास करते हैं और उनके सभी कार्य उसी को लेकर चलते हैं ।

' अबू सुलेमान अब्दुल रहमान बिन अतियुया अल-दारानी[1] का नाम भी प्रारम्भिक काल के सूफी साधकों में लिया जाता है । उसने मारिफत (परमज्ञान) के सिद्धान्त पर पूर्ण प्रकाश डाला । उसने बड़े सुन्दर ढंग से अपने भावों को व्यक्त किया है जो निम्नलिखित है :-

'जब ज्ञानी के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं तब उसकी दैहिक आँखें बन्द हो जाती हैं । वह उसको (परमात्मा) छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं देखता ।' 'इस संसार की विषय सुख की लालसा से वही बच सकता है जिसके हृदय में एक ज्योति है और जो उसे दूसरी दुनियां की ओर उन्मुख किए हुए रहती है ।'

' प्रत्येक वस्तु के लिए एक-एक अलंकार है , हृदय का अलंकार उच्च प्रेमाई भाव है ।' (जन्म सन् ७९६ ई० मृ० सन् ८६० ई०) । सुप्रसिद्ध सूफियों में 'जुन-नून' बहुत बड़ा सूफी साधक और विचारक था । जून-नून ने सूफी सिद्धान्तों को सुन्दर

विवेचना की है तथा सूफीमत को अपनी विचार परिपक्वता से पुष्ट किया । उसने इल्म और मारिफत में ज्ञान और प्रज्ञान (विज्ञान) में भी भेद स्थापित किया तथा एक मात्र ईश्वर की अनन्यता प्रतिपादित करते हुए उसने अन्य सभी वस्तुओं को अस्तित्वहीन बतलाया ।

इस युग के अन्य प्रसिद्ध सूफियों में अबू याजीद अथवा बायजीद अल बिस्तामी मृ० सन् ८७४ ई० विशेष उल्लेखनीय है । सूफी सिद्धान्त के विकास में उसका महत्वपूर्ण स्थान है । परमात्मा को ही एक मात्र वास्तविक सत्ता मानने के कारण उसने उस परमात्मा को ही सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त देखा । उसका कहना था कि " परमात्मा का जीवात्मा के प्रति प्रेम , परमात्मा के प्रति जीवात्मा के प्रेम से प्राचीन है । जीव अज्ञानवश समझता है कि वह परमात्मा को प्रेम कर रहा है । वास्तव में वह तो प्रेम के अनन्य स्रोत परमात्मा का अनुकरण कर रहा है ।"३४ अन्यत्र प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहता है "ज्ञान की भांति प्रेम भी तत्वत: एक दैवी वरदान है , यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो प्राप्त की जा सके । प्रेम एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति है जो साधक को आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर करती है । यह एक ऐसी वासना है जो सभी वस्तुओं को उखाड़ कर दूर कर देती है । यदि सारे संसार के लोग भी प्रेम को आकर्षित करना चाहें तो नहीं कर सकते और यदि वे इसे हटाने का अत्यधिक प्रयास करें तो वे ऐसा नहीं कर सकते ।"३५ ईश्वर के प्रति प्रेम उसी के हृदय में जागरित होता है जिससे ईश्वर स्वयं प्रेम करता है । बायजीद बिस्तामी के अनुसार " मैं समझता था कि मैं परमात्मा से प्रेम करता हूं लेकिन गौर करने पर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करने से पहले ही वह मुझसे प्रेम करता है ।"३६ प्रेम के द्वारा सभी अन्तर्द्वन्द्वों और सभी वासनाओं का अन्त हो जाता है और ईश्वरानुभूति स्वाभाविक हो जाती है अत: बायजीद सदैव प्रेम को ही महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहता है " कि दुनिया से उकता कर जब मैं परमात्मा की शरण में गया तो उसके प्रेम ने मेरे ऊपर इतना अधिकार जमाया कि मैं अपना ही दुश्मन हो गया ।"३७ बायजीद के अनुसार वही भक्त है जिसकी अपनी कोई इच्छा न हो परमात्मा की इच्छा ही उसकी इच्छा हो ।

बगदाद निवासी अल जुनैद (मृ०सं० ६४६ ई०) उसी काल के सूफी साधकों में था । प्रेम को परिभाषित करते हुए जुनैद ने कहा कि " प्रिय की विशेषताओं में अपनी विशेषता को मिला देना 'प्रेम' है ।

ईसा की लगभग नवीं शताब्दी में 'हुसैन बिन मन्सूर अल-हल्लाज' (मृ०सं० ६७८ ई०) बहुत बड़ा सूफी साधक था । मन्सूर ने ही अन-अल-हक (अहं ब्रह्मास्मि) का सर्वप्रथम सूफीमत में नारा लगाया । प्रेम को मन्सूर ने परमात्मा के सत्य के सार के रूप में स्वीकार किया , उसके अनुसार प्रेम की महत्ता बिना प्रतिकार किये दुख सहिष्णु करने में है । वह परमात्मा का प्रेमानुरागी था और उसके प्रेम में विह्वल रहता था । परमात्मा के वियोग की आंच में वह बराबर तपता रहता था । अपने विचारों के लिए उसे अपमान , नाना प्रकार की यातनाएं , कारागार और अन्त में मृत्यु दण्ड भोगना पड़ा अर्थात अमानुषिक अत्याचारों और उत्पीड़नों को सहन करते हुए अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक वह 'अनल-हक' (मैं ही ब्रह्म हूं) की घोषणा करता रहा ।

मंसूर अल हल्लाज की धारणा थी कि "ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के मध्य से होकर गुजरें ।"३८ इसीलिए सूफी प्रेमाख्यानों में नायक को भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ता है । उसका संबल दर्द , विरह और तड़पन है । ईश्वर की अनन्य उपासना में सदैव लीन रहता था । "कण-कण में ईश्वर को व्याप्त देखने वाला मन्सूर जब आत्म विलास की पराकाष्ठा पाकर स्वयं सत्य (अनल-हक) हो गया तो इस्लाम के शास्त्रीय , विधायक और शासक सहे न सह सके और उसे धर्म विरोधी एवं " रब्बुल्ला " का पारंगत घोषित कर दण्डदिया ।"३९

प्रसिद्ध सूफी दार्शनिक अल-फराबी (सन् ६५० ई० - १००७ ई०) ने प्रेम को ईश्वर का पर्याय माना है और सृष्टि का कारण भी प्रेम को ही स्वीकार किया है । अल-फराबी के अनुसार "ईश्वर स्वयं प्रेम है सृष्टि की रचना का कारण भी प्रेम ही है । प्रेम के सहारे सृष्टि की कलायें प्रेम के महास्रोत में , जो पूर्ण सौन्दर्य और सर्वोत्तम भी है , निमग्न हो जाने के लिए पूर्ण रूपेण संलग्न है ।"४०

इस प्रकार हम देखते हैं कि विकास की प्रथम अवस्था में सूफी साधक सांसारिक विषयों से अपने को अलग रखते थे। इस समय एकान्तप्रिय सूफीमत में सन्यास वृत्ति ही प्रधान थी। सन्यास वृत्ति एक प्रकार नकारात्मक थी किन्तु जब इसी सन्यास वृत्ति में आध्यात्मिक भावनाएं विकसित हुईं तो सूफीमत अपने क्रमिक विकास की नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ। इस समय के सूफी साधकों ने परमसत्ता को प्रियतम के रूप में स्वीकार किया। प्रेमातिरेक में वे सदैव बेसुध रहते थे अतः जहां सूफी साधकों का आदर्श एकान्त जीवन, फकीरी दीनता और विनम्रता था, वहां अब प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति उनके जीवन का उद्देश्य बन गया। अब वे प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परमसत्ता के दर्शन करने लगे। अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति सहज और स्वाभाविक है यही उनके जीवन का लक्ष्य था। सूफीमत को व्यवस्थित रूप प्रदान कर उसके विभिन्न सिद्धान्तों को प्रकाशित करके उसे इस्लाम में उचित स्थान देने वालों में काला बाधी (मृ०ई० १०५२) हुज्विरी (मृ०ई० ११४६ ई०) एवं गजाली (मृ०ई० ११६८ ई०) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

काला बधी के प्रयासों के फलस्वरूप सूफीमत इस्लाम धर्म का एक प्रमुख अंग बन गया। काला बाधी ने प्रतिपादित कर दिखाया कि सूफीमत इस्लाम धर्म का किसी भी प्रकार से विरोधी नहीं है, अपितु उसी के सिद्धान्तों का पोषक है।

सूफीमत को इस्लाम के पर्याय के रूप में स्वीकार करने वाले अबुल-हसन अल हुज्विरी ने अपनी रचना " कश्फुल महजूब " में सूफीमत और इस्लाम धर्म के बीच सामन्जस्य स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया है। उनके अनुसार "ईश्वर के प्रति मानव का प्रेम वह गुण है जो केवल उन पवित्र व्यक्तियों में श्रद्धा और गरिमा के रूप में प्रकट होता है, जिनको ईश्वर में आस्था है, इसलिये कि वह अपने प्रिय को सन्तुष्ट कर सके और उसके दर्शनार्थ विकल हो उठे। उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु में उनके मन न रमें। ऐसा व्यक्ति उसके स्मरण में लगा रहता है और किसी अन्य का स्मरण नहीं करता है।"४१

सुप्रसिद्ध साधक और गम्भीर विचारक " अबू हमीद अल-गजाली " के अथक प्रयासों के फलस्वरूप सूफीमत और इस्लाम धर्म के बीच पृथकता समाप्त हो गई और सूफीमत इस्लाम धर्म में मिलकर एक हो गया और सूफीमत का प्रचार इस्लाम के रूप में होने लगा । अधिकांश सूफी इस्लाम के प्रचारक बन गये ।

भारत में सूफीमत के प्रवेश करने से पूर्व अधिकांश सूफी इस्लामी नियमों का पालन करने लगे और सूफीमत का प्रचार इस्लाम के नाम से करने लगे । उन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप उत्तरी भारत में इस्लाम राजधर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । दक्षिणी भारत में भी सूफियों के प्रचार के फलस्वरूप इस्लाम धर्म को मान्यता प्राप्त हुई ।

तेरहवीं शताब्दी सूफीमत के प्रचार का काल था साथ ही यह वही समय था, जब कि ईरान के प्रमुख सूफी काव्यकारों ने अपनी पुष्ट लेखनी द्वारा हृदयग्राही बनाया । जिसका अनुकरण भारतीय सूफियों ने किया । सूफीमत की सबसे सफल अभिव्यक्ति "सनाई-काव्य" में हुई । सनाई (मृ०ई० ११८८) ने सूफियाने रंग में " हदीक तुल हकीका " काव्य लिखा । सनाई के अतिरिक्त उमर खैयाम (मृ० ई० ११८०), निजामी (मृ०ई० १२६०), अत्तार मृ० ई० १२८७, रूमी (मृ० ई० १३३०), सादी (मृ० ई० १३४६), शब्सतरी (मृ० ई० १३७७), हफीज (मृ० ई० १४४७) एवं जामी (मृ० ई० १५५६) जैसे प्रतिभाशाली कवियों ने फारसी साहित्य की अभिवृद्धि की । फारस की इस काव्यमयी धारा का प्रभाव अन्य भाषाओं पर भी पड़ा । भारतीय सूफी कवियों ने तो फारस की इस काव्यमयी सूफी भावधारा से समन्वय करके अपनी प्रेम भरी वाणियों से लोक मानस पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया । इन्हीं प्रयासों का फल है, हिन्दी का सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य ।

भारतवर्ष में सूफीमत का प्रवेश

भारतवर्ष में सूफीमत के प्रवेश की निश्चित तिथि बताना कठिन है लेकिन इतना तो निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि मुसलमानों के आक्रमणों के साथ

से ही सूफी-साधकों का यहां आना प्रारम्भ हो गया था ।

सर्वप्रथम सूफी-साधकों का पता सिन्ध-पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशों में चला परन्तु धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत देश इन सूफी साधकों से परिचित हो गया और 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती' (११९० ई०) के आगमन के बाद से सूफीमत का क्रमबद्ध इतिहास भी मिलने लगता है ।

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती पृथ्वीराज के शासन काल में भारत आया था, इसने अपने उपदेशों द्वारा भारतीय जनता को प्रभावित किया तत्पश्चात् अजमेर गये वहां इनकी इतनी ख्याति हुई कि हिन्दू मुसलमान दोनों ही समान भाव से उनका आदर करने लगे ।

सन् १०३९ ई० में " शेख नथर शाह " दक्षिण भारत में धर्म प्रचार करने आये । धार्मिकता, जीवन की सादगी और उदारता आदि के कारण जनता का प्रिय पात्र बनने में इन्हें जरा भी कठिनाई नहीं हुई । उनका सादा सरल जीवन, सांसारिक विषयों के प्रति विरक्ति, धार्मिक कट्टरता के प्रति उदासीनता ने हिन्दू जनता को आकृष्ट किया ।

प्रारम्भिक धर्म प्रचारकों में 'शेख इस्माइल' का नाम विशेष उल्लेखनीय है । वह सन् १००५ ई० में लाहौर आया था । अपनी वाक्पटुता और तर्कों द्वारा उसने बहुतों को मुसलमान बनाया ।

ईसा की तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में मुस्लिम धर्म प्रचारकों और सूफियों का पूरा जोर देश के कई भागों में रहा । पंजाब, कश्मीर, दक्षिण तथा देश के पूर्वी भाग में उन दो शताब्दियों में इनका कार्य पूरे जोश के साथ हुआ ।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कश्मीर में सर्वप्रथम 'बुलबुल-शाह' ने सूफीमत की स्थापना की ।

इस प्रकार "ईसा की तेरहवीं शताब्दी में तथा उसके बाद भी बड़े-बड़े धर्म प्रचारकों, पीरों और सूफी साधकों के नाम सुनने में मिलते हैं। ईसा की चौदहवीं शताब्दी में इनका पूरा ज़ोर रहा। धर्म प्रचारकों का यह वेग ईसा की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में बहुत कम हो गया और सत्रहवीं शताब्दी में प्राय: लुप्त हो गया।"४२

सूफियों की उदारता और सन्तों जैसा जीवन ने जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों द्वारा वे समान रूप से समादृत होने लगे। धीरे-धीरे उनके प्रभाव का विस्तार देश के प्राय: सभी भागों में हो गया।

शताब्दी के प्रारम्भ में जितने भी सूफी सन्त भारत आये उनका एक मात्र उद्देश्य भारत देश में इस्लाम का प्रचार और प्रसार करना था। भारत में इस्लाम की इमारत को खड़ी करने का श्रेय भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में बसने वाले सूफी साधकों को प्राप्त है। मूल रूप से पश्चिमोत्तरी सूफी साधक ही "भारत इस्लाम धर्म भवन" के आधार स्तम्भ माने जाते हैं।

इस प्रकार सूफियों की उदारतापूर्ण नीति ही भारत में सूफीमत की आधार शिला बनी। सूफी साधकों ने असमान परिपाटियों का परित्याग कर समान परम्पराओं को ग्रहण किया तथा अपनी वाणी द्वारा लोक मानस पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य इन्हीं प्रयासों का परिणाम है।

अपनी मूलभूत सफलताओं के साथ सूफीमत ने "भारत में प्रवेश पा अपने को एक ऐसे वातावरण में पाया जिसका परिचय उन्हें पहले कभी नहीं हुआ था और पहली बार उन्हें एक ऐसी संस्कृति, एक ऐसी सभ्यता और एक ऐसे धर्म से पाला पड़ा कि वे उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।"४३

भारतवर्ष में प्रवेश के बाद हिन्दू धर्म ने सूफीमत को बहुत अधिक प्रभावित किया फलस्वरूप सूफीमत का स्वरूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। भारतवर्ष में आकर सूफीमत वही नहीं रह गया जो मुस्लिम प्रधान देशों में था। यहाँ के वातावरण रीति-रिवाज और चिन्तन पद्धति ने इस्लाम धर्म और सूफीमत को अत्यन्त प्रभावित किया। भारतीय परिपार्श्व में आकर सूफीमत ने भी हिन्दू धर्म की बहुत सी बातों को ग्रहण किया। इस प्रकार हिन्दू मुसलमान दोनों ही धर्मों में एक दूसरे के निकट आने लगे। धार्मिक विभिन्नता होने पर भी उन्होंने एक साथ रहना और एक दूसरे के प्रति विश्वास करना सीखा।

प्रमुख सूफी सम्प्रदाय

इतना तो निश्चित है कि सूफी साधक बहुत पहले से ही इस देश में आने लगे थे लेकिन सम्प्रदाय के रूप में सूफीमत का प्रवेश बाद में ही हुआ। सूफीमत के विकास के क्रम में प्रसिद्धि प्राप्त साधकों के शिष्य-प्रशिष्य होते गये और उन्होंने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायों का रूप ले लिया। ये सम्प्रदाय धीरे-धीरे अन्य देशों में फैल गये। `अबुल फजल ने `आईन-ए-अकबरी' में तत्कालीन चौदह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है - चिश्ती, सुहरावर्दी, हबीबी, तफूरी, करखी, सकती, जुनैदी, काजरूनी, तूसी, फिरदौसी, जैदी, इयादी, अधमी और हुबेरी।४४ किन्तु भारत में विशेष रूप से प्रसिद्ध होने वाले चार सम्प्रदाय हैं -

१- चिश्तिया सम्प्रदाय
२- सुहरावर्दिया सम्प्रदाय
३- कादिरिया सम्प्रदाय
४- नक्शबन्दिया सम्प्रदाय।

१- चिश्तिया सम्प्रदाय

भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के प्रवर्तक `ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (११४२ ई० से १२३६ ई०) है। सूफी साधकों में इनका बड़ा सम्मान रहा और

इसी कारण इन्हें लोग 'आफताबे हिन्द' भारत-भास्कर कह कर पुकारते हैं।[४५] इनके शिष्यों में कुतुबुद्दीन बख्तियार शेख फरीदुद्दीन शकरगंज, निजामुद्दीन, अली अहमद साबिर और शेख सलीम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन शिष्यों के भी अनेक शिष्य-प्रशिष्य हुए। इन शिष्यों ने चिश्ती सम्प्रदाय का सन्देश सम्पूर्ण भारत में पहुंचाया।

'चिश्तिया सम्प्रदाय में 'चिल्ल' का प्रचलन था जिसमें साधक चालीस दिनों तक किसी मस्जिद में अपना समय बिताता है अथवा किसी कमरे में बन्द रहता है। उस समय वह अल्प परिमाण में भोजन करता है। अपना सब समय वह प्रार्थना और ध्यान में लगाता है। वह बातचीत भी बहुत कम करता है। यह 'इल्ला-ल्लाहु' पर खूब जोर देता है। इसका जोर-जोर से उच्चारण करते हुए अपने शरीर के ऊपरी भाग तथा सिर खूब हिलाता है। वह रंगीन वस्त्र धारण करता है।[४६] इसके साथ ही इस सम्प्रदाय में संगीत को खूब प्रधानता दी गई है। साधक संगीत सुनते-सुनते भावाविष्टावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

कहा जाता है कि शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से अकबर को पुत्रोत्पन्न हुआ था। उसमान के गुरु भी चिश्ती सम्प्रदाय के थे।

सन् १२३६ ई० में ६३ वर्ष की अवस्था में अजमेर में ख्वाजा मुईनुद्दीन की मृत्यु हो गई। आज भी अजमेर में ख्वाजा साहब की दरगाह पर लाखों मुसलमान तीर्थ करने आते हैं।

२- सुहरावर्दिया सम्प्रदाय

भारतवर्ष के सूफी-सम्प्रदायों में चिश्तिया सम्प्रदाय के बाद सुहरावर्दिया सम्प्रदाय की प्रधानता रही है।

भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं 'बहाउद्दीन जकारिया' (मृ० १२६७ ई०) ४७। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'भारत में सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय को प्रचारित करने का श्रेय जलालुद्दीन सुर्खपोश (सन् ११९९-१२९१ ई०)

की है। जो बुखारा में उत्पन्न हुए और स्थायी रूप से 'उच्च' (सिंध) में रहे।[58]
इन्होंने भारत के अनेक स्थानों में प्रचार किया। जलालुद्दीन तबरीजी, सैयद
जलालुद्दीन मखदूम, जहानिया, बुरहानुद्दीन कुतुबे आलम आदि सन्तों ने सिन्ध,
गुजरात, पंजाब, बिहार और बंगाल आदि स्थानों में इस सम्प्रदाय का प्रचार किया।
इस सम्प्रदाय के लोगों ने कई राजाओं को भी अपने धर्म में दीक्षित किया। फिर-
दौसिया भी सुहरवर्दिया सम्प्रदाय की एक शाखा है। मृगावती के रचयिता कुतुबन
इसी सम्प्रदाय के थे।[*]

३- कादिरिया सम्प्रदाय

सूफीमत की तीसरी शाखा कादिरिया सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं अब्दुल कादिर
अल जीलानी जन्म सन् १०७८ मृ०सं० ११६६ ई० भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक
मुहम्मद गौस थे। जीस ने सिन्ध (उच्च) को अपना केन्द्र बनाया था। वहीं पर
१५१७ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इस सम्प्रदाय के संतों में भावोन्मेष की प्रधानता थी।
* इस सम्प्रदाय वाले प्राय: अपनी टोपी में गुलाब का फूल लगाए रहते हैं। यह फूल
इस सम्प्रदाय में अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इसे पैगम्बर का प्रतीक माना जाता
है।[56] कादरी सम्प्रदाय के दो प्रमुख उपसम्प्रदाय हैं - १- रज्जाकिया २- वहाबिया
इसी सम्प्रदाय में प्रसिद्ध संत शेख मीर मुहम्मद 'मियांमीर' हुए हैं।

इस सम्प्रदाय के संतों ने अपने प्रभावपूर्ण विचारों और चमत्कार पूर्ण
कार्यों द्वारा इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने में सफल रहे।

४- नक्शबन्दिया सम्प्रदाय

चौथा मुख्य सूफी सम्प्रदाय नक्शबन्दी है। साधारणत: ख्वाजा बहाउद्दीन
नक्शबन्द (मृ०सं० १३८६ ई०) को ही इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है।[50]
* भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रचार करने वाले ख्वाजा बाकी बिल्लाह बेरंग माने
जाते हैं।[51] टर्की, चीन, जावा आदि देशों में भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी पाये
जाते हैं। इस सम्प्रदाय का नाम नक्शबंदिया सम्भवत: इसी कारण पड़ा कि इस

सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक कपड़ों में चित्र छापकर जीविकोपार्जन किया करते थे।[52]

डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि जनसाधारण की रुचि इस सम्प्रदाय की ओर आकर्षित नहीं हुई। अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा नक्शबन्दी सम्प्रदाय निर्बल और प्रभावहीन रहा। जन साधारण में वे वह पैठ नहीं पैदा कर सका जो सभी पूर्व भारत में प्रचारित होने वाले अन्य सम्प्रदायों ने की थी। उपर्युक्त चार प्रधान सम्प्रदायों के अतिरिक्त "उवैसी" "मदारी", "अन्सारी", कलन्दरिया और मलामती सम्प्रदाय भी अंकुरित हुए परन्तु उनके प्रवर्तकों और मूल सिद्धान्तों के विषय में विस्तार से कुछ भी ज्ञात नहीं होता है।

अतएव इन सभी सम्प्रदायों का अपनी सरल ईश्वरोन्मुखी भावना के कारण जन समुदाय में विशेष रूप से प्रभाव फैला रहा और समाज के निम्न वर्ग के व्यक्ति जिन्हें हिन्दू समाज में विशेष सुविधाएं नहीं थीं, इन सम्प्रदायों में दीक्षित होते रहे।[53] ये सम्प्रदाय उदार और सरस भावपूर्ण नीति के परिचायक होने के साथ-साथ सरल मार्ग से ईश्वरोपासना के भी पक्षपाती थे। सूफीमत की स्थापना भारत में पूर्ण शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों पर चल कर हुई। सूफी मत इस्लाम का वह रूप नहीं था, जो तलवार की धार पर चलकर अथवा रक्त रंजित सरिता में बहकर भारत भूमि में आया हो, प्रेम आत्मीयता, सरसता और सहिष्णुता के द्वारा ही यह विचार धारा भारत में फैली। उक्त चार प्रधान धाराओं में चलकर सूफीमत और इस्लाम का प्रचार भारत की जनता में हुआ।

अपने सरल और प्रेम पूर्ण व्यवहार के कारण सूफीमत ने शीघ्रता से जन मानस को अपनी ओर आकर्षित किया। कहा जाता है कि हिन्दुओं ने तलवार के आगे गरदन झुका दी थी परन्तु तलवार से जो विश्वास नहीं उत्पन्न किया जा सकता उस कार्य को इन सूफी संतों ने पूर्ण किया। मृत्यु के अनन्तर इन संतों के समाधि स्थान दरगाह या मकबरे बने। दिल्ली, आगरा, अजमेर, फतेहपुर, सीकरी मुल्तान, हैदराबाद आदि स्थानों पर अनेक पीरों के समाधि स्थल और दरगाह दर्शनीय कोटि बने हुए हैं। इन स्थानों पर प्रायः "उर्स" हुआ करते हैं।

डा० विमल कुमार जैन के अनुसार -" उपर्युक्त सम्प्रदायों के सूक्ष्म विवेचन से प्रतीत होता है कि इनका पूर्ण उत्थान मुगलकाल में ही हुआ । अकबर जहाँगीर आदि अनेक मुगल सम्राट पीरों के परमभक्त थे । शाहजहाँ का पुत्र दाराशिकोह तो मुस्लिम और हिन्दू रहस्य ज्ञान का अच्छा वेत्ता था । उसने सूफीमत और वेदान्त का गम्भीर अध्ययन किया था । तदुपरान्त उसने दोनों मतों के मूल सिद्धान्तों को तुलनात्मक विवेचना की और बतलाया कि इसमें कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है । कलेवर भिन्न अवश्य है, परन्तु आत्मा एक ही है । बहादुर शाह भी शाह होते हुए एक सन्त से कम न था, उसकी अनेक कविताओं में सूफीमत के उच्च सिद्धान्तों की विशद व्याख्या है।[४४]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि भारत में सूफीमत का उत्थान १४ वीं, १५ वीं, १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में शुरू हुआ और मुगलकाल में यह उत्थान पूर्णता को प्राप्त हुआ ।

सूफीमत की प्रमुख विशेषतायें

सूफीमत में "प्रेम" का महत्व

सूफियों ने जिस साधना के आधार पर आध्यात्मिकता की सृष्टि की है उसके मूल में प्रेम तत्व ही है । उसी के आधार पर सूफियों का भव्य आध्यात्मिक भवन निर्मित है । सूफी प्रेम को ही धर्म कर्म यहाँ तक कि संसार का आधार मानते हैं । उनके लिये जीवन तभी सार्थक है जब कि उनके हृदय में प्रेमाग्नि व्याप्त हो और निरन्तर प्रज्वलित रहे । प्रेम ही उनका मुक्ति का मार्ग है, उसी प्रेम में वे सदैव लीन रहना चाहते हैं । सूफी सम्पूर्ण भू-मण्डल को प्रेम । प्रेम की ध्वनि से गुंजित कर देना चाहते हैं । उनके लिये विश्व का कण-कण प्रेममय है । उनकी साधना प्रेम की साधना है । उनका साध्य प्रेम प्रभु है, उनका "एक मरीहीं एक-मत एक बात विश्वास" " प्रेम " ही है । यदि सूफी साधकों को प्रेमी साधक के नाम से अभिहित किया जाये तो अनुचित न होगा ।

सूफी चाहे किसी किसी को भी प्रेम का पात्र कहे परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को अपने प्रेम का आलम्बन मानते हैं। प्रेम के पुल पर चढ़कर ही सूफी साधक भवसागर पार करते हैं। प्रेम ही उनका अमोघ अस्त्र है वही उनका परम साधन है।[५५] प्रेम ज्ञान (मारिफ) की भाँति ईश्वरीय देन है यदि सम्पूर्ण संसार भी प्रेम को अर्जित करना चाहे तो सम्भव नहीं है।

ईश्वर प्राप्ति के लिये जितने भी साधन और मार्ग बताये गये हैं, उनमें प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। रहस्यवादी सन्त प्रेम के सहारे ईश्वर प्राप्ति की कामना करते हैं उनका विश्वास था कि सन्त प्रेम द्वारा सब कुछ सम्भव हो सकता है। सूफियों के अनुसार प्रेम के द्वारा ही मनुष्य स्वर्ग के योग्य बना है अन्यथा वह केवल एक मुट्ठी राख के समान है -

"मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी नाहित काह छार भरि मुठी"[५६]

प्रेमानुरागी मर भी जाए, तो अमर हो जाता है। प्रेमी केवल प्रेमी ही नहीं रहना चाहता है, वह प्रियतम से मिलकर तादात्म्यता का अनुभव करना चाहता है। वह प्रेम पंथ पर चलने के लिए अपना सर्वस्व त्याग देने को प्रस्तुत रहता है। पतंग दीपकमय हो जाना चाहता है, भ्रमर कमल के मुंदने के साथ ही मुंद जाता है, मछली जल के वियोग में तड़प-तड़प कर जान दे देती है। वास्तव में प्रेमी प्रेम की अग्नि में झुलस-झुलस कर सदैव प्राण दे देने को उद्यत रहता है। अलहल्लाज ने अपने वध के समय शिवली से कहा था, "ओ शिवली" प्रेम का प्रारम्भ दग्ध कारक अग्नि है और अन्त मृत्यु है।"[५७]

"प्रेम एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति है जो साधक को आध्यात्मिक मार्ग पर लगा देती है। यह एक ऐसी भावना है जो समस्त वासनाओं को हृदय से दूर कर देती है।[५८] सूफियों का विश्वास है कि परमात्मा प्रेम स्वरूप है और वह उन व्यक्तियों को अपना प्रेम नहीं बतलाता है जिसने अपने सांसारिक कालुष्य का प्रक्षालन न किया हो और जिसने सांसारिक लोभ का परित्याग न किया हो, उसे ऐसे प्रेम की प्राप्ति करने का

अधिकार नहीं है ।

सूफी साधक 'अल-शिबली' के अनुसार "प्रेम हृदय में अग्नि के समान है जो परमात्मा की इच्छा के सिवाय अन्य सभी वस्तुओं को जला कर भस्मीभूत कर देता है।"[66] "अल बुखारी" ने कहा है कि ईश्वर के प्रेमी के पास इच्छा नाम की कोई वस्तु नहीं रहती कि अच्छी या बुरी किसी भी चीज की इच्छा करें क्योंकि जो ईश्वर का प्रेमी है उसके लिये परमात्मा के सिवा कोई भी वस्तु अभीप्सित नहीं होती।

अपनी समस्त कामनाओं के साथ अपने को समर्पित कर देने में ही प्रेमी सुख की तीव्र अनुभूति करता है क्योंकि वह जानता है कि सर्वस्व का त्याग करने पर ही उसे ईश्वर की प्राप्त किया जा सकता है। अबू अब्दुल्ला अल-कुरशी ने कहा है कि "सच्चे प्रेम का तात्पर्य है कि तुम जिस परम प्रियतम से प्रेम करते हो उसे सब कुछ जो तुम्हारे पास है, दे दो जिससे कि तुम्हारा अपना कहने को कुछ भी न रह जाय।"[67] इसका मतलब केवल इतना ही नहीं कि प्रेमी को अपनी सांसारिक वस्तुओं और कामनाओं का ही परित्याग करना पड़ता है बल्कि उसे पूर्णरूपेण अपने को उस परम प्रियतम को सौंप देना पड़ता है। बिना 'अहं' का त्याग किये वह उस अलौकिक प्रेम का अधिकारी नहीं हो सकता है। शुद्ध प्रेम स्वार्थपरक इच्छा से होता है। साधक के हृदय में जब प्रेम का उदय होता है तो सभी सांसारिक वस्तुएं उसके लिए तुच्छ और नगण्य हो जाती हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी प्रेम की व्यापकता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं -

"तीन लोक चौदह खंड, सबै परै मोहि सूझि
प्रेम छाड़ि नहिं लोन किछु, जो देखा मन बूझि।"

सूफी भली-भांति जानते हैं कि प्रेम ही सब रसों का मूल है। एक सूफी का उद्गार है -

"अगर इश्क न होता इंतजाम आलम सूरत न पकड़ता । इश्क के बगैर जिन्दगी वबाल है । इश्क को दिल दे देना कमाल है । इश्क बनाता है, इश्क जलाता है । दुनिया में जो कुछ है इश्क का जलवा है । आग इश्क की गर्मी है, हवा इश्क की बेचैनी है, पानी इश्क की रफ्तार है, खाक इश्क का कियाम है । मौत इश्क की बेहोशी है, जिन्दगी इश्क की होशियारी है, रात इश्क की नींद है, दिन इश्क का जागना है । मुस्लिम इश्क का जमाल है, काफिर इश्क का जलाल है, नेकी इश्क की कुरबत है, गुनाह इश्क से दूरी है, बिहिश्त इश्क का शौक है, दोजख इश्क का जौक है ।"[४१] अतः इश्क (प्रेम) ही सम्पूर्ण जगत का सार है । जिस हृदय में इश्क का निवास है वह काबा एवं कैलाश की भाँति पवित्र है । प्रेम विहीन हृदय कंकड़ एवं पत्थर के समान मूल्यहीन है । सूफी दार्शनिक अलफराबी ने प्रेम को ही ईश्वर माना है और इस सृष्टि का कारण भी उसने प्रेम ही स्वीकार किया है । उनके अनुसार "भौतिक वस्तुओं तथा ज्ञान और बुद्धि से परे एक विशिष्ट वस्तु है जिसे प्रेम कहते हैं । प्रेम के सहारे इस सृष्टि में हर चीज, जिसमें व्यक्ति भी सम्मिलित है, अपनी सम्पूर्णता पर पहुँच जाती है ।"[४२] अलफराबी ने अन्यत्र कहा है कि "ईश्वर स्वयं प्रेम है । सृष्टि की रचना का कारण भी प्रेम ही है । प्रेम के सहारे सृष्टि की कड़ियाँ प्रेम के महास्रोत में जो पूर्ण सौन्दर्य और सर्वोत्तम भी है, निमग्न हो जाने के लिये पूर्ण रूप से जुड़ी हुई हैं ।"[४३] प्रेम के विषय में "कश्फुल महजूब" में हुज्वेरी ने कहा है कि "ईश्वर के प्रति मानव का प्रेम वह गुण है जो केवल उन पवित्र व्यक्तियों में श्रद्धा और महिमा के रूप में प्रकट होता है जिनकी ईश्वर में आस्था है, इसीलिये कि वह अपने प्रिय को सन्तुष्ट कर सकें और उसके दर्शन के लिए विकल हो उठें । उसके अतिरिक्त और किसी चीज में उनके मन न रहें । ऐसा व्यक्ति उसके स्मरण में लगा रहता है और किसी अन्य को स्मरण नहीं करता ।[४४] अतएव सूफीमत के मूल में प्रेम का निवास है । प्रेम पर सूफियों का इतना व्यापक और गहरा अधिकार है कि प्रेम को लोग सूफीमत का पर्याय समझते हैं ।[४५] आगे चलकर सूफियों में प्रेम तत्व की इतनी व्यापकता हुई कि कालान्तर में सूफी लोग प्रेम के प्रतीक माने जाने लगे ।

अतः कहा जा सकता है कि प्रेम एक मानसिक प्रक्रिया है। मानव हृदय में प्रेम का प्रस्फुटन स्वाभाविक ही नहीं वरन अनिवार्य भी है। प्रेम की किरणों खुलते ही सारे संशय, तर्क एवं जिज्ञासा स्वयं ही शान्त हो जाती है और साधक संसार से मुख मोड़ लेता है। प्रेम के इस दुष्कर मार्ग पर चलने के लिये साधक को " सीस उतारै भुइं धरै तब पैठियर माहिं " का अनुसरण करना पड़ता है। प्रेम मार्ग पर चलना एक प्रकार से शूलों पर चलने के समान है।

इस प्रेम-माधुरी के कारण कटु भी मिष्ट हो जाता है। प्रेमी शूल को फूल समझ लेता है। इसी प्रेमोन्माद में सूली सिंहासन और कारागार उद्यान बन जाता है। मंसूर इसी तरंग में हंसते-हंसते सूली पर चढ़ गया था।

सूफी अपनी प्रेम व्यंजना सामान्य नायक नायिका के रूप में करते हैं किन्तु उनके प्रेम का संकेत परम प्रेम की ओर ही होता है और जब इश्क मजाजी इश्क हकीकी में परिणत हो जाता है, तब साधक आत्मानन्द पाता है, वह ध्यान द्वारा ईश्वरीय सौन्दर्य पर विस्मय-विमुग्ध होता हुआ परम साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील रहता है। एक ऐसी स्थिति आती है जब कि प्रेमी स्वयं प्रेमरूप हो जाता है। प्रेम एक ऐसी रागिनी छेड़ देता है जिसके प्रभाव में से प्रेमी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रेममय हो जाता है।

बरज़दे दिलम नवस्त यक कामका इश्क ।
जां कामकां कमी पार ता दर दम इश्क ।। 44

वस्तुतः इश्क मजाजी इश्क हकीकी की सीढ़ी है और इसी के द्वारा इन्सान खुदी को मिटा कर खुदा बन जाता है।

प्रेम की अनुभूति अनिर्वचनीय होती है ठीक ही कहा गया है कि "अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम" वाणी द्वारा इसे व्यक्त करना असम्भव है।

नारद जी ने प्रेम की परिभाषा देते हुए कहा है -

' गुणरहितं कामना रहितं प्रतिक्षण वर्द्ध
मानम विच्छिन्न सूक्ष्मतरम अनुभवरूपम '

(भक्ति सूत्र)

अर्थात प्रेम निर्गुण और कामना रहित होता है तथा प्रतिक्षण बढ़ने[१] वाला अत्यन्त सूक्ष्म और अनुभवगम्य रस है । जिसका हृदय प्रेम-बाणों से बिद्ध जाता है वही इसके मर्म को जानता है -

' प्रेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लागै जानै पै सोई ।। '
मंसूर ने ठीक ही कहा था - 'ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के बीच से होकर गुजरें ।'[६३] प्रेम की अवस्था मृत्यु से भी कठिन है - ' कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था ।'

प्रेम के आविर्भाव से लेकर ईश्वर से साक्षात्कार होने तक की यात्रा में प्रेमी को अनेकों बाधाओं का सामना करना अनिवार्य है । इन बाधाओं में ही प्रेमी को सच्चे प्रेम की अनुभूति होती है । सूफियों के अनुसार 'प्रिय के द्वारा जो दुख पहुंचाया जाता है उससे प्रेमी को आनन्द की प्राप्ति होती है । प्रेमी में प्रेम होता है अतः वह प्रिय की कठोरता और उदारता दोनों को एक ही प्रकार से देखता है ।'[६८] प्रेम मार्ग पर चलने वाला पथिक मृत्यु के भय से विचलित नहीं होता । वह उसे एक यात्रा का अवसान और दूसरी यात्रा का आरम्भ समझता है ।

प्रेम मार्गीय पथिक के लिये हृदय की पवित्रता अनिवार्य है । कलुषमय हृदय से प्रेम प्रभु का मिलन असम्भव है । अलाउद्दीन भी पद्मावती का प्रेमी है परन्तु उसका प्रेम सच्चा नहीं है । उसमें एक सच्चे साधक की सी तपस्या लगन और त्याग नहीं है । उसमें शक्ति-जन्य अहंकार-तृष्णा और वासना का प्राधान्य है , इसीलिए उसके हाथ में चिता की राख मात्र आती है ।

` हार उठाइ लीन्हि एक मुठी , दीन्ह उड़ाइ पिरथिमी झूठी `[६९]

अत: शुद्ध प्रेम वही शुद्ध व्यक्ति बिना किसी स्वार्थ परक इच्छा के होता है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सूफीमत में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है `सूफीमत मानों स्थान-स्थान पर प्रेम के आवरण से ढका हुआ है । उस सूफीमत के बाग को प्रेम के फुहारे सदा सींचते रहते हैं निस्वार्थ प्रेम ही सूफीमत का प्राण है ।[७०] डा० रामकुमार वर्मा के ही शब्दों में `प्रेम के साथ-साथ उस सूफीमत में प्रेम का नशा भी प्रधान है उसमें मद्य के खुमार का और भी महत्वपूर्ण अंश है । उसी मद्य के खुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है । फिर संसार की कोई स्मृति नहीं रहती , शरीर का कुछ ध्यान नहीं रहता । केवल परमात्मा की `ली` ही सब कुछ रहती है ।`[७१] इसी आधार पर कतिपय हिन्दी विद्वानों ने सूफीमत को प्रेममार्ग की संज्ञा दी है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सूफियों में प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । प्रेम ही कर्म है और प्रेम ही धर्म है ,प्रेम ही पंथ है और परमात्मा भी प्रेममय ही है । इसी प्रेम से हिन्दी सूफी काव्य पोषित हुआ है । हिन्दी सूफीकाव्य की प्रत्येक कहानी का मूलाधार `प्रेम` है ।

सूफीमत में पीर (गुरु) का महत्व

हिन्दी के सूफी कवियों ने गुरु महात्म्य का अत्यधिक वर्णन किया है । सूफियों ने गुरु को ईश्वर तुल्य माना है । वही प्रेम पन्थ का मार्गदर्शक है और प्रेम प्रभु से मिलन कराने वाला भी वही है । भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में गुरु की महत्ता इतनी अधिक थी कि गुरु को ही ईश्वर का स्वरूप तक मान लिया गया था ।[७२] कभी-कभी तो गुरु को गोविन्द से भी अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है -

` बलिहारी गुरु आपणे जिन गोविन्द दियो बताय `

(कबीर)

सूरदास ने भी ऐसा ही माना है -

" हरि-गुरु एक रूप नृप जानि । या में कछु सन्देह न आनि ।।"[७३]

तुलसीदास भी गुरु की वात्सल्यता, प्रभु की पतिमान्यता उन्हीं की कृपा का फल मानते हैं ।

सूफी प्रेम-पन्थ के पथिक के लिए एक आध्यात्मिक गुरु अत्यावश्यक है ।[७४] कहा जाता है कि यदि कोई साधक बिना गुरु के साधना-पन्थ में चलता है, तो उसका गुरु शैतान हो जाता है और वह उसे कार्य भ्रष्ट कर देता है । जायसी ने पद्मावत, अखरावट, चित्ररेखा आदि में गुरु-परम्परा और गुरु-महिमा का सविस्तार गुणगान किया है । उनकी मान्यता है कि -

" बिन गुरु पंथ न पाइय, भूलै सो जो भेंट ।"[७५]

स्पष्ट है कि सूफी साधक का लक्ष्य है प्रियतम का साक्षात्कार और इस प्रेम पंथ पर गुरु साधन के मार्ग दर्शक है -

" प्रेम पियाला पंथ लखावा । आपु चाखि मोहिं बूंद चखावा ।"[७६]

गुरु की कृपा से समस्त पाप धुल जाते हैं -

" धोवा पाप पानि सिर मेला ।"[७७]

यद्यपि यह सत्य है कि कामी पुरुष भी ध्यान से योगी हो सकते हैं किन्तु जब तक साधक को गुरु के हाथ से माला या नामस्मरण का मन्त्र प्राप्त नहीं हो जाता, उसे सिद्धि नहीं मिलती । गुरु की कृपा से वंचित साधक इस जगत में अकेला रहता है । साधक चाहे कितना ही ज्ञानी हो उसे गुरु की कृपादृष्टि के बिना सफलता नहीं मिल सकती । इस संसार में गुरु के सदृश अनुकूल कोई नहीं है । गुरु के अनुकूल होते ही सारी प्रतिकूलता नष्ट हो जाती है ।

इस्लाम के अनुसार गुरु से वियुक्त साधक अत्यन्त दुःखानुभूति का अनुभव करता है । वह शारीरिक कष्ट सहता हुआ केवल गुरु नाम स्मरण को आधार मान लेता है । और जिस साधक को गुरु का निर्देशन प्राप्त नहीं होता वह अन्धे की

की भांति चारों ओर भटकता फिरता है और सीधा मार्ग उपलब्ध नहीं कर पाता -

" जा कहं गुरु न पन्थ देखावा , सो अन्धा चारिउं दिसि धावा ।"[७८]

चाहे सारा संसार जोगियों या साधकों का स्वरूप धारण करके मूंड़ मुड़ाकर सन्यासी बन जाय किन्तु सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती । जब तक गुरु की कृपा उस पर न हो जाय । गुरु की कृपा से नवों निधियां उसे प्राप्य हैं -

मूंड़ मुड़ाये जग फिरे , जोगी होय न सिद्ध ।
जा कहं गुरु किरपा करहिं , सो पावै नौ निद्ध ।।[७९]

गुरु के वचनों का आंख में ~~आंख में~~ अन्जन लगाकर हृदय रूपी दर्पण परिमार्जित करके , माया या ममता को भस्म करने के पश्चात ही परमरूप का दर्शन सम्भव है -

गुरु बचन चखु अंजन देहू , हिया मुकुर मंजन करि लेहू ।
माया जारि भसम कै डारौ , परम रूप प्रतिबिम्ब निहारौं ।[८०]

सूफियों के अनुसार - जीवन में वही दिन सफल एवं सार्थक है जब गुरु से भेंट होती है । गुरु दर्शन से सारे पाप और दुख नष्ट हो जाते हैं । सारे अवगुणों का अभाव हो जाता है ।

सुफल दिवस जावै जवै , होय गुरु से भेंट ।
पाप और दुख मेटिये , औगुन जाय सो मेंट ।।[८१]

" शेख रहीम " गुरु की पदवन्दना एवं आज्ञापालन साधक का अनिवार्य कर्तव्य मानते हैं । गुरु के चरणों की सम्मान पूर्वक वन्दना करके , मार्ग सम्बन्धी आदेश लेना साधक का कर्तव्य है ।

प्रेमा जाय दन्डवत कीन्हा , गुरु चरन माथे पर लीन्हा ।
कर दाया मोहि पन्थ बताऊ , जेहि विधि मिलै सो भेद बताऊ ।[८२]

" कवी पुराद " के अनुसार बिना गुरु के सारी उम्र व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है , गुरु-भक्ता का अवलम्बन लेकर ही प्रेमपथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है ।

बिना गुरु बहु काम न होई , बैठ अकारथ पूरी होई ।
पहले प्रीत गुरु से कीजै , प्रेम बाट में तब पग दीजै ।।[83]

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार " जिस रास्ते को तुमने बिल्कुल नहीं देखा , उस पर अकेले मत चलो , अपने पथ प्रदर्शक के पास से अपना सिर मत हटाओ । मूर्ख , यदि उसकी छाया (रक्षा) तेरे ऊपर न हो तो शैतान की कठोर ध्वनि तेरे सिर को चक्कर में डालकर तुम्हें (यहां-वहां) घुमाती रहेगी , शैतान तुम्हें रास्ते से बहका ले जायेगा (और) तुम्हें 'नाश' में डाल देगा ।"[84]

अतः सूफी साधना में गुरु महिमा का विशेष स्थान है । साधना का रहस्य जानने एवं प्रेम मार्ग में अग्रसर होने के लिये साधक को एक पीर (गुरु) की आवश्यकता होती है । जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी के प्रथम भाग में पीर अथवा गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है -

" पीर ग्रीष्म है और व्यक्ति शरत्काल है । व्यक्ति रात्रि के समान है और पीर चन्द्रमा है । पीर चुनो क्योंकि बिना पीर के यह यात्रा बहुत ही कष्टमय , भयानक और विपत्तिमय है ।"[85] गुरु भक्ति के अभाव में साधक की सारी साधना निष्फल एवं अपूर्ण कही जाती है ।

मध्यकालीन हिन्दी काव्य गुरु महात्म्य से ओत-प्रोत है । सगुण-निर्गुण ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी सभी वर्ग के साधकों की साधना के अन्तर्गत गुरु की आवश्यकता पड़ती है । साधक अपने पीर के स्वरूप का निरन्तर ध्यान करता है फलस्वरूप उसे अपना अस्तित्व गुरु के अस्तित्व में प्रायः लुप्त सा दिखाई पड़ता है ।

गुरु-महात्म्य के अतिरिक्त " वली " एवं " औलिया " का भी सूफियों में विशेष सम्मान रहा है । सूफी औलियाओं की जीवनी , करामातें एवं उपदेश सूफियों के लिये अनुकरणीय ही नहीं , अनुकम्पा प्राप्ति के साधन भी रहे हैं । सूफी विपत्ति के समय इन पीरों का स्मरण करना और इनकी मजारों पर जाकर

शक्ति रखते थे । सूफी साधक 'ख्वाजा खिज्र' नामक फकीर में भी पूर्ण आस्था एवं विश्वास रखते हैं । इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये जहां भी बैठते हैं वह स्थान हरा-भरा हो जाता है । सम्भवतः इसी कारण इन्हें खिज्र या (Sea green) हरित की संज्ञा दी गई है । इनका वास्तविक नाम 'अबुल अब्बास मलकान' था । असम्भव से असम्भव कार्य को क्षण भर में पूर्ण करने की अद्भुत शक्ति इन्हें प्राप्त थी । ज्ञानोन्मुख व्यक्तियों पर इनकी अपूर्व कृपा होती थी । यही कारण है कि सूफी साधक अपनी साधना में ख्वाजा खिज्र की कृपा की भी आकांक्षा रखते हैं ।

<u>अध्यात्म विरह</u>

सूफियों का विरह विप्रलम्भ में है । सम्पूर्ण सूफी काव्य विरह आप्लावित है । मिलन के तो कहीं-कहीं संकेत मात्र है । इसका कारण यह है कि सूफी कवि स्वयं परमात्मा के विरही थे । जायसी ने अपने अध्यात्म विरह का वर्णन करते हुए बताया कि परमात्मा के विरह में जलते रहने के कारण शरीर में न तो रक्त रह गया है और न मांस ही मुख जैसे विरही का मुख देखता है , उसे हंसी आ जाती है किन्तु जब वह मेरी उस विरह व्यथा को सुनता है तो उसके नेत्रों में आंसू प्रवाहित होने लगते हैं -

मुहम्मद कवि यो विरह भा , ना तन रक्त न मांसु ।
जेइ मुख देखा तेइ हंसा , सुनि तेहि आयउ आंसु ॥ [84]

वस्तुतः ईश्वर का विरह सूफियों की प्रेम साधना का प्रथम सोपान है ।

सूफियों के मतानुसार जिसके हृदय में यह विरह होता है उसके लिये यह संसार स्वच्छ दर्पण हो जाता है जिसमें परमात्मा का आभास अनेक रूपों में पड़ता है तब वह देखता है कि सृष्टि के समस्त रूप , समस्त व्यापार उसी का विरह प्रकट कर रहे हैं ।

अपने इस अध्यात्म विरह के चित्रण के लिये सूफियों ने प्रतीकों का आश्रय लिया । उन्होंने नायक को जीव और नायिका को ब्रह्म का प्रतीक मानकर परमात्मा

के प्रति जीव के विरह को वर्णित किया है। नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते समय सूफी कवियों ने उस अनन्त सौन्दर्य की ओर संकेत किया है जिसके विरह में समस्त सृष्टि जल रही है।

अस्तु कहा जा सकता है कि नायक (जीव) नायिका (ब्रह्म) के प्रयासों के माध्यम से सूफी कवियों ने अपने आध्यात्म विरह का सुन्दर चित्रण किया है।

हिन्दी में सूफी प्रेमाख्यानों की तालिका

हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों की धारा अभी तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर १३७९ ई० (चन्दायन) से लेकर १९१७-१८ ई० (प्रेमदर्पण) तक प्रवहमान रही है। इस सुदीर्घ परम्परा में निम्नांकित काव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है :-

क्रमसंख्या	रचनाकार	रचना	रचनाकाल	विषय
१-	मुल्लादाऊद	चन्दायन	१३७९ ई०	चन्दा और लोरक की प्रेमकथा
२-	शेख कुतुबन	मृगावती	१५०३ ई०	राजकुमार और मृगावती की प्रेमकथा
३-	मलिक मुहम्मद जायसी	पद्मावत	१५४० ई०	रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमकथा
	,,	अखरावट	अज्ञात	—
	,,	आखिरी कलाम	,,	—
४-	मंझन	मधुमालती	१५४५ ई०	राजकुंवर और मधु-मालती की प्रेमकथा
५-	शेख उस्मान	चित्रावली .	१६१३ ई०	सुजान और चित्रावली की प्रेमकथा

६- जानकवि - के सूफी परम्परा में आने वाले प्रेमाख्यानों में कथा रत्नावलि कथा कनकावती, ग्रन्थ बुद्धिसागर, कथा कंवलावती प्रमुख हैं।

क्रमसंख्या	रचनाकार	रचना	रचनाकाल	विषय
७-	शेखनबी	ज्ञानदीप	१६१९ ई०	ज्ञानदीप और देवयानी की प्रेमकथा
८-	शेख आलम	माधवानल कामकन्दला	१६४० ई०	माधव नामक विप्र एवं कामकंदला नामक नर्तकी की प्रेमकथा।
९-	हुसैन अली	पुहुपावती	१७२५ ई०	राजा मानिक चन्द और पुहुपावती की प्रेमकथा
१०-	कासिम शाह	हंस जवाहिर	१७३६ ई०	राजा हंस और रानी जवाहिर की प्रेम कथा
११-	नूरमुहम्मद	इन्द्रावती	१७४४ ई०	राजकुंवर और इन्द्रावती की प्रेमकथा
	//	अनुराग बांसुरी	१७६४ ई०	एक धर्मकथा है।
१२-	शेख निसार	यूसुफ जुलेखा	१७९० ई०	यूसुफ और जुलेखा की प्रेमकथा
१३-	शाहनजफअली सलोनी -	प्रेमचिनगारी	१८४५ ई०	इसमें कवि ने मौलाना-रूमी की मसनवी की दो कथाओं को अपनी भाषा में उपस्थित किया है। पहली 'बांसुरी' कथा में मानव को बांसुरी मानकर सूफी अद्वैतवाद को स्पष्ट किया गया है। दूसरी कथा हजरत मूसा और गड़रिये की है, जिसमें निर्गुण ब्रह्म का आख्यान है।
१४-	ख्वाजा अहमद	नूरजहाँ	१९०५ ई०	खुर्शेद, नूरजहाँ और [illegible] की प्रेमकथा
१५-	शेख रहीम	भाषा प्रेमरस	१९१५ ई०	चन्द्रकला और प्रेमसेन की प्रेमकथा
१६-	नसीर	प्रेमदर्पण	१९१७-१९२०	यूसुफ और जुलेखा की प्रेमकथा।

इस प्रकार प्रेमाख्यानों की ये परम्परा तेरहवीं शताब्दी से लगभग बीसवीं शताब्दी तक चली , जिसके अन्तर्गत अनेक उल्लेखनीय कवि हुए , जिन्होंने सरस प्रेमाख्यानक काव्यों द्वारा हिन्दी साहित्य का शृंगार किया ।

00 ——— 00

संदर्भ - सरणि

अध्याय - १

१-	निजामुद्दीन अंसारी	-	सूफी कवि जायसी का प्रेमनिरूपण, पृ० १८
२-	डा० जयकिशन खण्डेलवाल	-	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० १८६
३-	श्री चन्द्रबली पाण्डेय	-	तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० १
४-	निजामुद्दीन अंसारी	-	सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण, पृ० १८, १९
५-	अनुवादक सचाऊ	-	अलबरूनीज इण्डिया, पृ० ३३
६-	वही	-	- - , पृ० ३३
७-	ब्राउन	-	ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया भाग-१, पृ० ४१० ।
८-	रामपूजन तिवारी	-	सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० १४८
९-	वही	-	" " "
१०-	वही	-	" " "
११-	डा० रामलाल वर्मा, डा० रामचन्द्र वर्मा	-	जायसी व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० ३९
१२-	वही	-	" " "
१३-	वही	-	" " "
१४-	वही	-	" " "
१५-	श्री चन्द्रबली पाण्डेय	-	तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० ३
१६-	डा० सरला शुक्ल	-	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० ३
१७-	वही	-	" " "
१८-	डा० रामपति राय शर्मा	-	निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव, पृ० १८
१९-		-	तसव्वुफ अथवा सूफीमत
२०-		-	हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य
२१-		-	सूफी काव्य संग्रह

२२- - जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य

२३- - सूफीमत साधना और साहित्य

२४- - सूफीमत और हिन्दी साहित्य

२५- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य पृ० १५८

२६- वही - " " पृ० १५६

२७- वही - " " पृ० २७०

२८- वही - " " पृ० २७०

२९- डा० श्याममनोहर पाण्डेय - मध्ययुगीन प्रेमाख्यान , पृ० ५

३०- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य , पृ० २२३

३१- डा० सरला शुक्ल - जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य . पृ० ८

३२- निजामुद्दीन अंसारी - सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण , पृ० २८

३३- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य , पृ० २२६

३४- डा० सरला शुक्ल - जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य

३५- कमीश्वर चतुर्वेदी - इस्लाम के सूफी साधक , पृ० ६७

३६- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य , पृ० ३१५

३७- वही - " " "

३८- ए० एम० ए० शुस्त्री - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर , पृ० ३५०

३९- डा० सरला शुक्ल - जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य पृ० १४-१५

४०- ए० एम० ए० शुस्त्री , - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर , पृ० ३११

४१- निजामुद्दीन अंसारी - सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण , पृ० ३५

४२- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य , पृ० ४००

४३- वही - " . " पृ० ४१८

४४- डा० शिव सहाय पाठक - मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य ,पृ० ४०३

४५- डा० सरला शुक्ल - जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य पृ० २१

४६- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य , पृ० ४४५-४६
४७- वही - ,, ,, पृ० ४६६
४८- डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,पृ०३०४
४९- डा० शिवसहाय पाठक - मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य ,पृ० ४०५
५०- वही - ,, ,, पृ० ४०५
५१- वही - ,, ,, पृ० ४०५-४०६
५२- डा० सरला शुक्ल - जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य पृ० २४
५३- डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०६
५४- डा० विमल कुमार जैन - सूफीमत और हिन्दी साहित्य , पृ० ८६
५५- डा० शिवसहाय पाठक - पद्मावत का काव्य सौन्दर्य , पृ० २२०
५६- आ० रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली (मण्डप गमन खण्ड) पृ० ७१
५७- ए०एम०ए० शुस्त्री - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर ,पृ० ३५०
५८- रामपूजन तिवारी - सूफीमत साधना और साहित्य , पृ० ३१०
५९- वही - ,, ,, पृ० ३१०
६०- वही - ,, ,, पृ० ३११
६१- श्री चन्द्रबली पाण्डेय - तसव्वुफ अथवा सूफीमत , पृ० ११६
६२- ए० एम० ए० शुस्त्री - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर ,पृ० ३११
६३- वही - ,, ,, पृ० ३११
६४- अनु० निकलसन - कश्फुल महजूब , पृ० ३०६-३०७
६५- श्री चन्द्रबली पाण्डेय - तसव्वुफ अथवा सूफीमत , पृ० ४
६६- जामी - ईरान के सूफी कवि , पृ० ४००
६७- ए० एम० ए० शुस्त्री - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर ,पृ० ३५०
६८- डा० श्याम मनोहर पाण्डेय- मध्ययुगीन प्रेमाख्यान , पृ० १५
६९- - जायसी ग्रन्थावली , पृ० ३००

७०- डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १९९

७१- वही - ,, ,, पृ० १९९

७२- - मीरा पदावली पद ६४, पृ० ३६-३७

७३- - सूर सागर ६-५

७४- ए० एम० ए० कुरैशी - आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर, पृ० ३५४

७५- - जायसी ग्रन्थावली, पृ० २२१

७६- - चित्र रेखा, पृ० ७४

७७- - वही, पृ० ७४

७८- उसमान - उसमान, चित्रावली

७९- वही - ,, पृ० ८९

८०- वही - ,, पृ० ९१

८१- कासिमशाह - हंस जवाहिर, पृ० २७

८२- शेख रहीम - प्रेमरस

८३- अलीमुराद - कुवरावत

८४- रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २०१

८५- डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव-
डा० हरेन्द्र प्रताप सिन्हा - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १०६

८६- डा० रामचन्द्र शुक्ल - जायसी ग्रन्थावली (स्तुति खण्ड) पृ० ९ ।

00 ——— 00

अध्याय - २

भारतीय संस्कृति - एक स्पष्टीकरण

"संस्कृति" का अर्थ अथवा स्वरूप

आजकल संस्कृति शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। उसकी व्यापकता पर दृष्टिपात करते हुए विभिन्न विद्वानों ने इस शब्द की व्याख्या अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से की है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार करते हुए श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती का मत है कि "'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में सुट् का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय करने से संस्कृति शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है - भूषणभूत सम्यक् कृति। इसलिये भूषण भूत सम्यक् कृति या चेष्टा ही संस्कृति कही जा सकती है।"[1]

श्री करपात्री जी ने भी संस्कृति की ऐसी ही व्याख्या करते हुए लिखा है कि "लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अभ्युदय के उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारादि की भूषण भूत सम्यक् चेष्टायें एवं हलचलें ही संस्कृति है।"[2]

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुसार "किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है।"[3]

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि "संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।"[4]

'संस्कृति' का शाब्दिक विवेचन

जैसा कि स्पष्ट है 'संस्कृति' शब्द 'सम' + 'कृति' है। इस शब्द का मूल 'कृ' धातु में है। विद्वान वैयाकरण 'संस्कृति' शब्द का उद्गम सम् + कृ से भूषण अर्थ में 'सुट्' आगम पूर्वक 'क्तिन' लेकर सिद्ध करते हैं, जिससे उनका अभिप्राय संस्कृति से भूषण-भूत सम्यक् कृति (चेष्टा) होता है। इस दृष्टिकोण से 'संस्कृति का शाब्दिक अर्थ - सम प्रकार अथवा भली प्रकार किया जाने वाला व्यवहार अथवा क्रिया है। यह परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है।[5]

इस प्रकार संस्कृति का शाब्दिक अर्थ संशोधन करना, सुधारना, उत्तम बनाना, सुन्दर या पूर्ण बनाना अथवा परिष्कार करना है और संस्कृति शब्द से हमारा तात्पर्य उत्तम कृति (उपलब्धि) या सम्यक चेष्टायें (अभिव्यक्तियां) है। अत: समस्त सर्वोत्तम उपलब्धियां अथवा अभिव्यक्तियां ही संस्कृति है, जिसके द्वारा मानवता को सदैव विशिष्टता प्राप्त होती रही है साथ ही 'संस्कृति का सम्बन्ध किसी व्यक्ति या जाति के बौद्धिक तथा मानसिक विकास से माना जा सकता है। जब कोई जाति विकास करती है तो अपना परिष्कार और सुधार करते हुए कुछ विशिष्ट गुणों को महत्व देने लगती है। ये गुण उस जाति के जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं, ऐसे गुण किसी व्यक्ति अथवा समाज को संस्कारों के रूप में प्राप्त होते हैं, जिन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी मान्यता प्राप्त होती रहती है। ऐसे संस्कार जन्य गुणों को 'संस्कृति' कहा जा सकता है।

संस्कृति की परिभाषा

जहां तक संस्कृति को परिभाषित करने की बात है, हम नि:संकोच कह सकते हैं कि जितने तरह के संगठन हैं जितने तरह के लोग हैं उन सबों ने उतनी ही तरह से संस्कृति को परिभाषित करने का भी प्रयास किया है। वस्तुत: संस्कृति को समझने और परिभाषित करने के लिये संस्कृति की व्याख्या सम्बन्धी लम्बी परम्परा को जानना नितान्त आवश्यक है, बिना उन पूर्व व्याख्याओं को जाने हम संस्कृति को सही अर्थों में समझ पाने में भूल कर सकते हैं।

संस्कृति शब्द की व्याख्या के फलस्वरूप विद्वानों ने संस्कृति की अनेकानेक परिभाषाएं उसके बाह्य और अभ्यंतर पक्ष को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत की हैं -

कतिपय विद्वानों ने 'आचार विचार को संस्कृति बताया है।' 'संस्कृति को प्रायः उन गुणों का समुदाय भी माना जाता है जिन्हें व्यक्ति अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने ही प्रयत्नों से प्राप्त करता है।' 'कुछ विचारकों की धारणा है कि नैसर्गिक विकास प्रकृति है तथा मानवीय प्रयास द्वारा परिमार्जित विकास संस्कृति है।'[६]

'मानव जीवन के समग्र व्यापारों का संचालन जिस अंतश्चेतना द्वारा होता है - वह संस्कृति है। इसके द्वारा मनुष्य विभिन्न मानवीय गुणों को विकसित कर अपने जीवन को सार्थक करता है।'[७]

प्रो० हुमायूं कबीर के शब्दों 'संस्कृति समाज की वह आभ्यंतर संस्था है जो सभ्यता की परिस्थितियां उत्पन्न करती हैं।'[८]

टी० एस० इलियट संस्कृति को व्यक्ति के सामाजिक विकास से सम्बन्धित करते हैं। उनका कथन है कि व्यक्ति की सभ्यता समुदाय और वर्ग की सभ्यता पर आधारित है तथा समुदाय और वर्ग की सभ्यता सम्पूर्ण समाज की सभ्यता पर अवलम्बित है। इन दोनों को परस्पर अलग नहीं किया जा सकता है।[९]

यों व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन यापन की समग्र व्याख्या को संस्कृति समझा जा सकता है। इसमें ज्ञान, विश्वास, शिल्प कला और अन्य कलाएं नैतिकता नियम रीति-रिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएं समाहित की जाती हैं जिन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते ग्रहण करता है।[१०]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार - 'नए विज्ञानियों ने संस्कृति को समस्त सीखे हुए व्यवहार का नाम बताया है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त

होता है , इस अर्थ में संस्कृति को सामाजिक प्रथा (Custom) का पर्याय भी माना जाता है । संस्कृति प्राय: उन गुणों का समुदाय समझो जाती है जो व्यक्तित्व को शुद्ध तथा परिष्कृत बनाती है ।[११]

समाज विज्ञान के विश्वकोश में श्री "मैलिनोव्स्की" ने संस्कृति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "इसमें पैतृक निपुणताएं , शैष्ठताएं , कलागत प्रक्रिया , विचार , आदर्श और विशेषताएं सम्मिलित रहती हैं । अत: संस्कृति का सम्बन्ध दर्शन और धर्म से लेकर सामाजिक संस्थाओं तथा रीति-रिवाजों तक मानव जीवन की समस्त महत्वपूर्ण विचार प्रणालियों से है ।[१२]

अंग्रेजी साहित्य में संस्कृति शब्द का पर्यायवाची "कल्चर" शब्द माना जाता है । यह कल्चर शब्द लैटिन भाषा के "कुल्तुरा" (Cultura) शब्द से निकला है और "कल्चर" में वही धातु है जो "एग्रीकल्चर" में है अत: इसका भी अर्थ पैदा करना या सुधारना है ।[१३]

हिन्दी के प्रसिद्ध आधुनिक रचनाकार श्री रामधारीसिंह "दिनकर" ने लिखा है कि "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं , इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है , यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी सन्तानों के लिए छोड़ जाते हैं । इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है । यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर तक करती है ।[१४]

संस्कृति सम्बन्धी उपर्युक्त अभिमतों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि जिन कार्य व्यापारों से हमारे आचार-विचार परिष्कृत होते हैं तथा अन्त:करण की मानवता पुष्पित होकर मनुष्य की योग्यताओं के प्रकाशन के लिये सभ्यता को अनुकूल परिस्थितियां तैयार करती हैं - वह संस्कृति है ।

अत: मानव जीवन के आचार विचारों को सजो-संवारी हुई परिष्कृत अंत:स्थिति तथा मानव समाज की परिमार्जित मति , रुचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम ही संस्कृति है ।

संस्कृति मानव के कार्य , व्यापार , संस्कार , परिष्कार एवं उत्पादन का मिला जुला रूप है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि "संस्कृति मानव के आदि-काल से लेकर वर्तमान जीवन की वह संचित निधि है जो उत्पादन एवं परिष्कार के माध्यम से निरन्तर प्रगति करती हुई पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त होती चली आई है ।

संस्कृति हमारी वृत्ति , रहन-सहन , परम्परागत संस्कार शिष्टाचार एवं विचारधाराओं का समवेत प्रतीक है । संस्कृति का निर्माण मानव समाज के अंतर्मुख किसी वर्ग विशेष का सर्वोन्मुखी विकास है । इसके मूल में जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या का फल तथा सृजन शक्ति के बीज संचित रहते हैं जो अनुकूल भूमि प्राप्त कर विकसित होने लगते हैं । यह उस प्रक्रिया का परिणाम है जो शनै:-शनै: बुद्धि को विलोड़ित कर , विवेक का अवलम्बन ग्रहण कर चिन्तन के उच्च धरातल पर पहुंच सृजन के नये आयाम निर्मित करती है ।

अत: सच्ची संस्कृति वह है जो सूक्ष्म और स्थूल , मन और कर्म , लौकिक और आध्यात्मिक जीवन दोनों का कल्याण करती है । यह लोक कल्याण समाज का सांस्कृतिक स्वभाव है । ऐसी ही संस्कृति द्वारा विश्व मैत्री की भावना जागरित होती है ।

सभ्यता और संस्कृति

जंगलीपन अथवा बर्बरता की स्थिति से उभर कर जब मनुष्य ने अपनी सुरक्षा, सुविधा तथा समाजीकरण की ओर प्रथम चरण उठाये तभी से उसे 'सभ्य' की संज्ञा से विभूषित किया जाने लगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब मनुष्य ने बर्बरता की स्थिति को त्याग कर अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सफल प्रयोग करने प्रारम्भ किये तभी वह "सभ्यता" की स्थिति में आ गया। "इस प्रकार सभ्यता बर्बरता के विरुद्ध जीवित रहने की दशा है।"[15]

प्राय: सभ्यता एवं संस्कृति का प्रयोग साथ-साथ होने से इन्हें एक सिक्के के दो पहलू भी कहा जाता है। इतना ही नहीं इन दोनों को एक दूसरे का पर्यायवाची भी समझा जाता है, परन्तु इन दोनों में इतनी घनिष्ठता होते हुए भी काफी भिन्नता है। साधारण शब्दों में सभ्यता की तुलना मानव के बाहरी शरीर से और संस्कृति की उसमें निवास करने वाली आत्मा से की जा सकती है।

सभ्यता मानव जीवन का बाहरी स्वरूप है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का कोई महत्त्व नहीं होता, ठीक उसी प्रकार संस्कृति के बिना सभ्यता का कोई महत्त्व नहीं होता। डी० ई० स्मि० ने सभ्यता और संस्कृति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "

Culture is what we are, civilization is what we make."[16]

सभ्यता वह वस्तु है जो हमें प्राप्त है और संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। सभ्यता से हमें मानव जीवन के विकास का पता चलता है जब कि संस्कृति से उसके गुणों का। शरीर रक्षा के लिये वस्त्रों का प्रयोग सभ्यता है परन्तु उसकी रक्षा के साथ सौन्दर्य वृद्धि की दृष्टि से उनका कलापूर्ण प्रयोग संस्कृति है। सभ्यता संस्कृति का पुष्पित होना है।[17] सभ्यता का अन्दर से प्रकाशित हो उठना अथवा

सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता का सम्बन्ध बाह्य जीवन से है जब कि संस्कृति का सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क से है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्था अथवा बनावट है, संस्कृति व्यक्ति की आंतरिक मनो-संस्कारी अवस्था है।

इस प्रकार सभ्यता और संस्कृति में उपरोक्त मौलिक भेद होते हुए भी उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है सभ्यता और संस्कृति परस्पर पूरक हैं। इस तथ्य को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यक्त करते हुए लिखा है - जिस प्रकार पुस्तक के पन्ने के दो पृष्ठ आपाततः एक दूसरे के विरुद्ध दिखते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। उसी प्रकार सभ्यता और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है।[१८]

<u>भारतीय संस्कृति</u>

मनुष्य की श्रेष्ठ साधना संस्कृति है।[१९] भारत में कई विदेशी जातियां आईं और बस गयीं। भारतीयों के आचार-विचार, रहन-सहन आदि पर उनका कुछ प्रभाव भी पड़ा पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय संस्कृति का आधार ही बदल गया। भारतीय संस्कृति वह है जिसके मूलस्रोत वेदादि-शास्त्र हैं। अतएव लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक उन्नति का वेदादिशास्त्र सम्मत मार्ग ही भारतीय संस्कृति है।[२०] इसके सभी अंगों पर वेदादिशास्त्र-मूलक सिद्धान्तों की ही छाप है। बाहरी प्रभाव इसमें कम ही दिखाई पड़ता है।

इसी प्रकार भारतदेश में यूनानी-सीथियन-शक, कुषाण हूण आदि ऐसी अनेक विदेशी जातियां जिनकी भाषा संस्कृति धर्म रीतिरिवाज, सोचने के ढंग सभी भिन्न थे और जिन्होंने भारतीय राजनैतिक परिवेश को अस्त-व्यस्त भी किया परन्तु भारत में बस जाने पर कतिपय पीढ़ियों के बाद रहन-सहन, आचार-विचार आदि में वे हिन्दू हो गये और कालान्तर में ये विदेशी हिन्दू समाज में घुल मिल गए। परन्तु मुसलमान जो ऐसे प्रथम आक्रान्ता थे जो हिन्दू समाज का अंग न बन सके, उनका इस्लाम धर्म दृढ़ एकेश्वरवादी धर्म होने के कारण मुसलमान

से घनिष्ठ न कर सका । वह अनेक देवताओं का बाहुल्य स्वीकार न कर सका । इसके अतिरिक्त दूसरे धर्मों को निगल कर उसे अपने रक्त , मांस व मज्जा में मिश्रित कर अपना अंग बना लेने की हिन्दू धर्म में जो प्राचीन विलक्षण शक्ति थी वह मुसलमानों के आगमन काल तक प्राय: क्षीण हो चुकी थी फलत: इन मुसलमानों के साथ भारत में विभिन्न सामाजिक और धार्मिक विचार प्रवेश कर गये जिनका सम्पूर्ण स्कीकरण असम्भव था । परन्तु जब कभी दो प्रकार की संस्कृतियां दीर्घकाल तक परस्पर सम्पर्क में आती हैं तो वे परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती है ।

इस प्रकार सुदीर्घ काल के संघर्ष के फलस्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मूलभूत मतभेदों के होने पर भी आक्रमण और विप्लव की अशान्त सतह के नीचे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक आदान-प्रदान की प्रवृत्तियां धीरे-धीरे दृष्टिगोचर होने लगी । परिणामत: मुस्लिम तत्वों को हिन्दू धर्म , हिन्दू कला , हिन्दू साहित्य और हिन्दू विज्ञान ने अपनाया ही नहीं , अपितु हिन्दू संस्कृति की भावना और मनोभाषा की प्रेरणा में भी परिवर्तन हो गया । मुसलमानों ने भी इसी प्रकार जीवन के हर क्षेत्र के लिये हृदय से आदान-प्रदान किया । यदि हिन्दू-मुस्लिम विचारों के समन्वय का हिन्दुओं के धार्मिक नेता और सन्तों ने सफल प्रयत्न किया तो मुसलमानों के सूफी सम्प्रदायों तथा लेखकों , कवियों ने भी हिन्दू सिद्धान्तों और रीति-रिवाजों को अपनाया ।[२१]

भारत में इस्लाम के दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारों के प्रचार के लिए प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान और सन्त कठोर परिश्रम करने लगे । इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं के साधु-सन्तों के प्रति श्रद्धा और भक्ति की भावना रखने लगे । हिन्दुओं ने उदारतापूर्वक मुस्लिम पीरों और मजारों का पूजन प्रारम्भ किया । पंजाब में अब्दुल कादिर जिलानी के मुरीदों में रावलपिण्डी के ब्राह्मणों और बहराइच में सैयद सालार मसूद के मजार के उपासक हिन्दुओं का उल्लेख मिलता है ।

इसी प्रकार अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के भक्तों में बहुसंख्यक हिन्दू ही थे । इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दू धर्म की ओर झुके । मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी होने पर भी बंगाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं के शीतला, काली, धर्मराज, वैद्यनाथ आदि देवी देवताओं की पूजा को अपना लिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने सरिताओं के अधिष्ठाता ख्वाजा खिज्र, सुन्दर सघन वन में सिंह पर सवारी करने वाली देवी के प्रेमी व कारंदाक जिन्दागाजी आदि नये मुस्लिम देवताओं का निर्माण किया । आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप सत्यपीर नामक देवता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही मानते थे । गौड़ नरेश हुसैन शाह को इसका संस्थापक माना जाता है । सम्मिश्रण और सामीप्य की इस मंगल-कारिणी भावना के फलस्वरूप ही सूफी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस सम्प्रदाय के सन्तों को मानने लगे । दोनों सम्प्रदायों के लिए उनकी समाधियाँ तीर्थ स्थान बन गयीं । " ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जो अफगानिस्तान से सन् ११९२ ई० में भारत आयेथे और (११९५ ई०) में अजमेर को अपना केन्द्र स्थान बना लिया था ऐसे ही सूफी सन्त थे ।[22] उनकी समाधि ख्वाजा साहब के नाम से आज भी अजमेर में प्रसिद्ध है । वहाँ पर प्रत्येक वर्ष हिन्दू और मुसलमान काफी संख्या में "उर्स" के मेले पर आज भी आते हैं । निजामुद्दीन औलिया और शेख सलीम चिश्ती सूफी सम्प्रदाय के अन्य प्रसिद्ध सन्त थे । इन सम्प्रदायों के प्रभाव के कारण इस्लाम ने अपने भारतीय वातावरण में सन्तपूजा को ग्रहण किया ।

हिन्दू मुसलमानों के परस्पर मेल और सामीप्य के कारण सत्यपीर, सतनामी, नारायण आदि ऐसे पंथों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे ।

काश्मीर के जैनुल आब्दीन और बंगाल के हुसैन शाह जैसे मुस्लिम शासकों की राजसभाओं में हिन्दू मुसलमानों की परस्पर समझने की भावना ने मुसलमानों को हिन्दुओं के संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया ।

रामायण व महाभारत का बंगाल के मुस्लिम शासकों ने संस्कृत से बंगला में जो उनको बोलचाल की भाषा थी, अनुवाद करने के लिए विद्वान नियुक्त किये थे। मुस्लिम प्रभाव हिन्दी पर भी पड़ा, जो हिन्दी के शब्द-भण्डार, रूपक, छन्द और शैली में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

"मुस्लिम राजकुमारें, मुस्लिम धर्मोपदेशक एवं अन्य हिन्दुओं के योग, वेदान्त, चिकित्साशास्त्र तथा ज्योतिष विज्ञान का अध्ययन करने लगे। इसी प्रकार हिन्दू ज्योतिषियों ने भी मुसलमानों से कुछ वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, अक्षांशों और देशान्तरों को मुस्लिम गणना कैलेण्डर के कुछ अंग और जन्म-कुण्डली का कुछ भाग जिसे 'ताजिक' कहते हैं, चिकित्साशास्त्र में धातु-क्षार का ज्ञान और रसायन शास्त्र की कुछ क्रियाएं ले लीं।"[23]

मीनाकारी का काम तथा धातुओं में जड़ाऊ कार्य भी मुसलमानों की ही देन है।

दोनों समुदायों के शासकीय वर्ग के सदस्यों में हुए परस्पर अन्तर्जातीय विवाहों ने इस प्रक्रिया और भी आगे बढ़ाया "जो तुर्क सर्वप्रथम भारत में आये थे अपने साथ अपनी स्त्रियों को नहीं लाये थे, उन्होंने यहाँ विवाह कर लिया।"[24] और एक दूसरे के रीति-रिवाज को अपनाने में सहयोग दिया।

परस्पर सामंजस्य और सहयोग की यह भावना राजनीतिक क्षेत्र में भी दिखाई दी। मुस्लिम राजा ने स्थानीय शासन की हिन्दू प्रणाली को स्थिर रखने के अतिरिक्त हिन्दुओं को शासन सेवा में नियुक्त किया। उदाहरणतया मालवा में माण्डू के सुल्तान के यहाँ चन्देरी के मेदिनीराय और उसके मित्र उच्च पदों पर थे। बंगाल में हुसैनशाह ने पुरन्दर, रूप और सनातन जैसे हिन्दुओं को नियुक्त किया, गोलकुण्डा के सुल्तानों ने कतिपय हिन्दुओं को अपना मन्त्री बनाया, बीजापुर के यूसुफ आदिलशाह ने हिन्दुओं को उत्तरदायित्व के उच्च पदों पर नियुक्त किया और राज्य के अभिलेख व वृत्तान्त मराठी भाषा में रखे। मुस्लिम शासकों

और नरेशों द्वारा हिन्दू-मन्दिरों और धार्मिक समाधियों को अनेक प्रकार के अनुदान दिये जाते थे। काश्मीर का सुल्तान प्राय: अमरनाथ और शारदादेवी के दर्शनार्थ जाता था और यात्रियों की सुख-सुविधा के हेतु उसने वहां विश्राम-स्थल बनवाये थे। इसके अतिरिक्त एकेश्वरवाद को प्रधानता देकर मुसलमानों ने हिन्दुओं में एक नवीन भावना उत्पन्न कर दी। हिन्दुओं में निम्न श्रेणी के लोगों को इस्लाम में उन्नति तथा सामाजिक समानता तथा न्याय की एक नवीन आशा दिखाई पड़ने लगी। इसके साथ उत्तरी भारत में पाक पटन के फकीर शकरगंज तथा दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया और दक्षिणी भारत में गैसूदराज जैसे फकीरों का प्रभाव पड़ रहा था उनके उपदेश भी जाति-पांति तथा ऊंच-नीच के बिना किसी भेद-भाव के सबके हृदय को प्रभावित कर रहे थे। परिणामस्वरूप नामदेव, रामानन्द कबीर, नानक, प्राणनाथ बाबा फरीद आदि सन्त अत्याधिक प्रभावित हुए और उन्होंने भी मूर्ति-पूजा और जाति-पांति का पूर्णत: विरोध किया और उपदेश दिया कि कर्मकाण्ड तथा निरर्थक पूजाविधियों में सच्चा धर्म नहीं है। नामदेव, कबीर और नानक आदि सन्त भी इस्लाम धर्म की सादगी और केवल एक ही ईश्वर के प्रति उनकी निष्ठा से प्रभावित होकर सदाचार और जीवन की पवित्रता को ही सच्चा धर्म मानने लगे। उनके अनुसार हिन्दू और मुसलमान सब का ईश्वर एक है उसके सामने सभी बराबर हैं।

इसी प्रकार मेवाड़ के राजा संग्राम सिंह भी पराजित शत्रु मालवा के महमूद द्वितीय की स्वतन्त्रता का सम्मान करते थे, सन्तूर के राणा जयपाल के यहां कुतलुग खां ने शरण ली थी, रणथम्भोर के राणा हम्मीर ने यह जानते हुए भी कि अलाउद्दीन सुल्तान की क्रोधाग्नि भड़क उठेगी, सुल्तान के विद्रोही सरदार को आश्रय दिया था और राणा संग्राम सिंह के पास बाबर से युद्ध करते समय मुसलमान सैनिकों का एक दल था। विजयनगर के हिन्दू सम्राट भी अपनी सैनिक सेवा में मुसलमानों को नियुक्त करते थे और उन्होंने अपनी राजधानी में और उसके बाहर इस्लाम को संरक्षण दिया था।

साहित्यिक आदान-प्रदान के क्षेत्र में अकबर के शासन काल में ही हिन्दू और मुसलमान विद्वान निस्सन्देह रूप से एक दूसरे के अधिक घनिष्ठ सम्पर्क में आये और इसलिए १६ वीं सदी से हिन्दू साहित्यकार और सुधारक इस्लामी विचारों से प्रभावित होने लगे।

लेकिन शाहजहाँ के काल १६२८-५८ ई० में ही सम्भव हुआ कि हिन्दू विद्वान फारसी में स्वतंत्र रचना करने लगे। सुप्रसिद्ध राजपूत चन्द्रभान ब्राह्मण फारसी के प्रारम्भिक हिन्दू लेखकों में था।

औरंगजेब के शासनकाल में १६५८-१७०७ ई० में दो हिन्दुओं ने उसके काल का सवारोह लिखा। अठारहवीं सदी में हिन्दुओं ने फारसी में सूफी धर्म और इतिहास पर अनेक ग्रन्थ लिखे।

भारतीय भाषाओं पर भी फारसी, अरबी और तुर्की भाषाओं का प्रभाव पड़ा और इन भाषाओं के बहुत से शब्द हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, राजस्थानी और अन्य उत्तरी भारत की भाषाओं में अपना लिये गये।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि हिन्दू और मुसलमानों के सम्मिलित प्रयास से उर्दू का जन्म हुआ।[२५]

पारस्परिक आदान प्रदान का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव भारतीय ललित कला विशेषकर स्थापत्य कला के क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। हिन्दुओं को जो कुछ भी उपयोगी और सुन्दर लगा उसे अपनाने में उन्होंने कभी भी उपेक्षा नहीं दिखायी उनकी यह प्रवृत्ति १७ वीं तथा १८ वीं सदी की निर्मित हिन्दू इमारतों में झलकती है। राजपूत राजाओं ने तत्परता से मुगल स्थापत्य कला के अंगों को अपना लिया और उन्हें अपने महलों में स्थान दिया। हिन्दू मन्दिर मुगल स्थापत्य कला के अंगों से नहीं बच सके। उदाहरण के लिए वृन्दावन के कई मन्दिरों में मुगल स्थापत्य कला की शैली अपनायी गयी है।

हिन्दू राजाओं के महलों पर मुगल निर्माण शैली का काफी प्रभाव पड़ा। इसके उनके सुन्दर नमूने "आमेर के इमामी नगर" की इमारतें, बीकानेर के राजमहल जोधपुर और ओरछे के महलो किले तथा दतिया के महल और डोग के भवन हैं। "ऐसी इमारतों में यह देख लेना कठिन नहीं है कि कैसे प्रारम्भिक मुगलों की पत्थरी इमारतों में दांतीदार मेहराब, कांच के मोचक, रंगीन पलस्तर, गुलम्बेदार बुर्ज को पृष्ठभूमि जोड़कर उन्हें हिन्दू राजाओं की अधिक रंगीली आवश्यकताओं के अनुकूल बना लिया गया है।"[26]

इसी प्रकार मुगलों की चित्रकला शैली ने हिन्दू चित्रकला के विषयों, तकनीक और विविध रंगों को प्रभावित किया। मुगल मूल रूप से चीनी और ईरानी मिश्रित चित्रकला शैली अपने साथ लाये थे इसका समन्वय जब भारतीय शैली से हुआ तो उससे भारतीय चित्रकारों के सामने नये रास्ते खुले और हिन्दू चित्रकला शैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। परिणाम स्वरूप भारतीय चित्रकारों ने आकृति चित्रण और भित्ति चित्रों को अंकित करने की कला में श्रेष्ठतम प्रतिभा प्रदर्शित की।

मुगलों ने मध्ययुगीन भारतीय उद्यान कला को भी बहुत संवारा। उन्होंने अपने बाग-बगीचों में ज्यामिति की सुन्दर डिजायनों के निकुंज और मण्डप बनवाये। जिससे लोगों में सौन्दर्य की अनुभूति और विकसित हो उठी तथा लोगों में बाग-बगीचों के प्रति शौक बढ़ा।

इसी प्रकार मुसलमानी त्योहार भी भारत के हिन्दुओं के त्योहारों की तरह ठाटबाट से मनाये जाने लगे। "शबे बरात का त्योहार शिवरात्रि के हिन्दू त्योहार की तरह रात्रिभर जागरण करके हास उल्लास के साथ मनाया जाने लगा। अकीका और बिस्मिल्लाह के उत्सव हिन्दुओं के मुण्डन और विद्यारम्भ के संस्कारों जैसे मनाये जाने लगे। इसी तरह हिन्दुओं के विवाहों के संस्कारों ने मुसलमानी निकाहों को प्रभावित किया। इस प्रकार प्रारम्भिक आकान्ता जैसे यूनानी शक हूण

आदि भारतीयों में पूर्णरूपेण मिल-जुल गये और अपनी अनन्यता को पूर्णतया खो बैठे, परन्तु मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ ऐसा नहीं हुआ। दूसरों का धर्म परिवर्तन करने की उनमें दृढ़भावना थी न कि दूसरों के धर्म में विलुप्त हो जाने की। अतः इनका सम्पूर्ण एकीकरण सम्भव न हो सका। परन्तु जब कभी दो तरह की संस्कृतियां काफी समय तक साथ-साथ रहती हैं तो एक दूसरे से प्रभावित होती हैं।

मुस्लिम विजेता हिन्दुओं के मौलिक विचारों से भिन्न अपने साथ निर्दिष्ट सामाजिक और धार्मिक विचार लेकर आए थे किन्तु दीर्घकाल के सम्पर्क के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के दो विभिन्न समुदाय परस्पर अधिक समीप आ गये फलस्वरूप हिन्दू संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ा परन्तु हिन्दू संस्कृति भी मुसलमानी तत्वों को प्रभावित किये बिना न रही।

इस्लाम की प्रतिक्रिया विविध रूप में हिन्दू धर्म पर परिलक्षित होती है। हिन्दू समाज के अनुदार सनातनी तत्वों ने जाति नियमों को जटिल और परिवर्तनशील बनाकर अपनी धार्मिक और सामाजिक प्रणालियों को सुदृढ़ कर लिया किन्तु कुछ उदार तत्वों ने इस्लाम के अनेक लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया। ये सिद्धान्त रामानन्द, कबीर, नानक, दादू और चैतन्य जैसे सन्तों के उपदेशों और मतों में अभिव्यक्त हुए हैं। इसी प्रकार बंगाल में वैष्णव धर्म और महाराष्ट्र में भक्ति सम्प्रदाय का विकास हिन्दू धर्म व इस्लाम के सम्पर्क की देन मानी जाती है।

इस संसर्ग की अन्य देन सूफी सन्तों के विचारों और मुस्लिम सन्तों के प्रति हिन्दुओं की श्रद्धा की भावना में अभिव्यक्त हुई है। प्रादेशिक भाषाओं और उर्दू के विकास में इस संसर्ग का अन्य महत्वपूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वैष्णवों की कविता हिन्दू धर्म और इस्लाम के समन्वय का सर्वोत्कृष्ट विलक्षण उदाहरण है।

कला के क्षेत्र में मेहराब गुम्बद और मीनारों की विदेशी कल्पनाएं हिन्दू कला की परम्पराओं के साथ घुल-मिल गयीं ।

हिन्दू और मुस्लिम तत्वों के पारस्परिक समन्वय के फलस्वरूप भवन निर्माण कला की एक नवीन शैली का विकास हुआ । मुस्लिम वास्तुकला की सादगी और कठोरता कम हो गई और हिन्दुओं की अत्यधिक लालित्यपूर्ण अलंकारिता को कम कर दिया गया ।

वास्तुकला में मुसलमानों की रचना कृति हिन्दुओं की भव्यता और अलंकरण में घुल-मिल गये । परिणाम स्वरूप विशाल आंगन वाली मस्जिदें, भव्य सभा मण्डप वाले मन्दिर, विशाल भवन कलापूर्ण अलंकरणों के साथ बनने लगे । गुम्बद व मेहराब जो मुसलमानी भवनों व मस्जिदों में समुचित अनुपात के साथ बनाये जाते थे हिन्दू कला में प्रविष्ट हो गये ।

सन्दर्भ - सारिणी

अध्याय - २

क्रमसं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
१-		कल्याण	२४
२-		वही	३५
३-		वही	४३
४-	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	कला और संस्कृति	१
५-	डा० ईश्वरी प्रसाद	प्राचीन भारतीय संस्कृति	१
६-	वही	" "	३
७-	डा० कमला श्री पाकरी	हिन्दी कविता इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में	३
८-	प्रो० हुमायूं कबीर	दि इण्डियन हेरिटेज	४५
९-	टी० एस० इलियट	नोट्स टुवर्ड्स द डेफिनेशन आफ-कल्चर	१६१
१०-	E.B.Taller	Culture is that Complex whole, which includes knowledge, beliefs art, moral laws customs and other Capacities acquired by man as a member of Society. Primitive Culture, Page 1	
११-		हिन्दी साहित्य कोश भाग-१	८६८
१२-		इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल-साइन्सेज वाल्यूम ३,४	६२१
१३-	बाबू गुलाबराय	भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	१
१४-	रामधारीसिंह "दिनकर"	संस्कृति के चार अध्याय	४६३

क्रम०सं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
१५-	डा० ईश्वरी प्रसाद	प्राचीन भारतीय संस्कृति	६
१६-	डा० एस० एल० नागोरी	भारतीय संस्कृति	३
१७-	प्रो० हुमायूं कबीर	दि इंडियन हेरिटेज	४५
१८-	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	सभ्यता और संस्कृति	४
१९-	वही	अशोक के फूल	७५
२०-	स्वामी करपात्री जी	राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और- हिन्दू धर्म	१२४
२१-	संगम चौहान	भारत की संस्कृति तथा सभ्यता	३०१
२२-	बी० एन० लूनिया	भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति- का विकास	३४२
२३-	वही	,, ,,	३४२-४३
२४-	डा० ईश्वरी प्रसाद	मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास	२५५
२५-	डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव	मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	२४८
२६-	ब्राऊन	कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग-४	५५८

अध्याय - ३

सूफी संस्कृति : एक अनुशीलन

इस्लाम के सिद्धान्तों को मानने वाला ही सूफी नाम से अभिहित किया गया। इस्लाम का अर्थ शान्ति की स्थापना है।

अरबी भाषा का `अस्लामा` (सलामा) शब्द जिससे `इस्लाम` शब्द बना है, व्यक्त करता है कि धैर्य रखना, विश्रान्त रहना, अपना कर्तव्य पालन करना, पूर्णतया अक्षुब्ध रहना और परममित्र को अपने को समर्पित कर देना इस्लाम है। और उससे बनी संज्ञा का अर्थ होता है शान्ति, सुरक्षा और मोक्ष।[१]

अतः इस्लाम धर्म के अनुयायी ही सूफी कहलाते हैं और कुरान इनका मूल एवं पवित्र ग्रन्थ है। इसके अनुसार ईश्वर एक है, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रचयिता भी वही ईश्वर है और उसी का उस पर नियंत्रण भी है। उसका (ईश्वर) न कोई आदि है और न अन्त है। वह सर्व शक्तिमान सर्वद्रष्टा एवं अत्यन्त दयालु है।[२]

सर्वप्रथम इस्लाम धर्म का प्रचार व प्रसार पैगम्बर मोहम्मद साहब ने छठीं शताब्दी में अरब में किया। पैगम्बर मोहम्मद साहब को खुदा ने फरिश्ते जिब्राइल के माध्यम से समय-समय पर दैवी सन्देश भेजा जिसे मोहम्मद साहब ने जनता तक पहुंचाया।

इस्लाम के मुख्य सिद्धान्त

इस्लाम को भली-भांति समझने के लिए इसके निम्नलिखित सिद्धान्तों को जान लेना अत्यन्त आवश्यक है -

१- खुदा का अस्तित्व

खुदा के अस्तित्व में विश्वास करना ही इस्लाम का मूल सिद्धान्त है। ईश्वर विद्यमान है तथा सर्वशक्तिमान है। वह असीमित ज्ञान वाला तथा सर्वोच्च

विधायिनी-शक्ति सम्पन्न है । उसी ने मानव संसार की रचना की तथा जगत की समस्त वस्तुओं को मानव जाति के कल्याणार्थ बनाया ।

२- एकेश्वरवाद (तौहीद)

इस्लाम ईश्वर की एकता में विश्वास करता है तथा " खुदा एक है " के अखण्ड अमर तथा अमर सिद्धान्त में आस्था व्यक्त करता है ।

'लाइलाह-इल-अल्लाहु-मुहम्मद उर-रसूल इल्लाह' तौहीद की आधार शिला है और सूफियों के दीन का मूल मंत्र है । इस्लाम में तौहीद के अतिरिक्त बहुदेववाद को स्वीकार करना वर्जित है । कुरान में प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हुए तौहीद पर विश्वास करना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है ।

३- मोहम्मद साहब खुदा के पैगम्बर हैं

इस्लाम का सर्व प्रमुख सिद्धान्त यह है कि हजरत मोहम्मद खुदा के पैगम्बर हैं तथा उनके उपदेश खुदा के उपदेश हैं ।

पैगम्बर के पूर्व अरब की सामाजिक , धार्मिक , सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । चारों ओर अनैतिकता , बुराई , अन्याय और शोषण का दबदबा था । बालहत्या तथा अतिक्रमण द्वारा मानवीय अधिकारों की अवहेलना साधारण बात थी । ईश्वर में लोगों को विश्वास नहीं था । पाशुविक हिंसा , क्रूरता तथा धार्मिक अन्ध-विश्वासों से लोग बुरी तरह जकड़े हुए थे । धार्मिक सत्यता तथा ईश्वरीय विश्वास लुप्त होते जा रहे थे ऐसे ही धार्मिक , सामाजिक और राजनैतिक अराजकता के समय में ही मोहम्मद साहब ने जनता को कर्ममय धर्म का सन्देश दिया जो इस्लाम धर्म के नाम से विख्यात हुआ[३] , जिसका मुख्य उद्देश्य ईश्वर एक है , सम्पूर्ण सृष्टमान जगत उसी की अभिव्यक्ति है और मोहम्मद.साहब उसके रसूल हैं ।

इस्लाम धर्म में ईश्वर विषयक धारणा अत्यन्त व्यापक एवं प्रौढ़ है। वह (अल्लाह) ज़ात (सत्ता) सिफत (गुण) और कर्म में अद्वितीय है। सम्पूर्ण दृश्यमान जगत को प्रकाशमान करने वाले उसी में अन्तर्निहित है। जामी के विचारानुसार "वह अद्वितीय पदार्थ जो निरपेक्ष है, अगोचर है, अपरिमित है और नानात्व से परे है वही अल-हक (परमतत्व) है दूसरी तरफ अपने नानात्व और अनेकत्व में जब वह सभी गोचर वस्तुओं में अपने आपको प्रकट करता है तब वह सम्पूर्ण रचा हुई सृष्टि वही है।"[4]

कुरान के अनुसार - "ईश्वर सृष्टि का कर्ता है।"[5] "वह एक है और उसके अतिरिक्त अन्य परमात्मा नहीं।"[6] विश्व का कण-कण उसी का परिचायक है, न उसका आदि है और न अन्त, वही सर्वोच्च सत्ता है। सम्पूर्ण संसार उसी प्रकाश पुंज की एक रश्मि का प्रतिबिम्ब है। शिबली ने भी कहा है कि - "मैं परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता हूं।"[7]

इस्लाम धर्म के अनुसार प्रत्येक मुसलमान के पांच परम कर्तव्य हैं -

१- <u>कलमा</u>

ईश्वर और उसके पैगम्बर मोहम्मद साहब में विश्वास करना।

२- <u>नमाज</u>

नमाज इस्लाम के मूल स्तम्भों में से एक है तथा इस्लाम की रीढ़, दीन का स्तम्भ, मोक्ष की शर्त, ईमान का रक्षक और पवित्रता की नींव है।[8] यह दिन में पांच बार पढ़ी जाती है, इनको फज्र (प्रातःकाल), ज़ोहर (मध्याह्न), अस्र (दोपहर के पश्चात्) मग़रिब (सूर्यास्त के समय) तथा इशा (रात्रि में) की नमाजों के नाम से सम्बोधित किया जाता है।[9]

नमाज ईश्वर के नाम स्मरण का एक ऐसा धार्मिक कृत्य है जिसके द्वारा व्यक्ति दिन में पांच बार ईश्वर के सामने उपस्थित होता है। हजरत मोहम्मद के

एक हदीस में कहा है - " सबसे पहली चीज जिसका कयामत के रोज बन्दे से हिसाब-किताब लिया जायेगा वह नमाज है[10]।" यह एक ऐसा मूलमंत्र है जिसके द्वारा मनुष्य सच्चाई के मार्ग पर अग्रसर होता है। नमाज ईश्वर की "इबादत" का विधान है। यह प्रत्येक वयस्क व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। चाहे वह दरिद्र हो या धनवान, रोगी हो या निरोग सब पर प्रत्येक परिस्थिति में अनिवार्य है। विशेष परिस्थितियों में " कजा[11]" द्वारा नमाज पूरी की जा सकती है जैसे मैदान - ए - जंग में भी नमाज फर्ज है —

> आ गया ऐन लड़ाई में अगर वक्त - ए - नमाज।
> एक ही सफ में खड़े हो गए महमूद - ओ - अयाज[12]।

दिन में पांच बार नमाज के अतिरिक्त ईद, बकरीद के अलावा विपत्ति और जन्म-मरण आदि के समय भी नमाज कायम की जाती है। नमाज के बिना न कयामत में अल्लाह की रहमत मिल सकती है और न दुनिया में इज्जत हासिल हो सकती है।

जकात (दान)

इस्लाम में चालीस अंश में से एक अंश दान देने का विधान है। लगभग प्रत्येक सूफी कवि ने दान महिमा का उल्लेख अपने काव्य में भी किया है। जायसी के अनुसार - उसी मनुष्य का जीवन सार्थक है जिसने इस जगत में दान दिया हो। जितना मनुष्य दान करता है प्रतिफल स्वरूप उसे उससे दस गुना लाभ होता है[13]। कासिमशाह भी दान के महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहते हैं - इस संसार में बिना दान दिये किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इस भव सागर को पार करने के लिये दान ही सबसे महत्त्वपूर्ण नाव है। दान देने से मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों ही में सुख प्राप्त करता है[14]। उसमान दान को इस संसार में सबसे बड़ा सिद्ध समझते हैं। इस भव समुद्र में डूबते को केवल दान का ही सहारा है। दान की मझधार में खेवक का कार्य करता है। इस जगत में दान का एक अंश परलोक में दस अंश का देने वाला होता है[15]।

इस प्रकार सूफियों में दान का महत्वपूर्ण स्थान है। दान द्वारा वो सूफी समर्पण की भावना ग्रहण करते हैं तथा अहं का त्याग भी वे इस मार्ग द्वारा करते हैं। वर्ष में एक बार दान देना प्रत्येक मुसलमान के लिए फर्ज है।

निःसन्देह दान विभिन्न प्रकार की बुराइयों से मुक्ति एवं मन मस्तिष्क की शुद्धि का एक साधन है।

रोजा (उपवास)

रोजा एक प्रकार का तप है जो आत्मा को परिष्कृत करता है। रमजान के महीने में प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है कि वह रोजा रखे, इसका समय सूर्योदय से सूर्यास्त तक होता है। कुरआन शरीफ में भी मुसलमानों पर रोजा फर्ज किया गया है। इसका उद्देश्य मनुष्य के आध्यात्मिक और नैतिक विकास के साथ हृदय और आत्मा की शुद्धि है। यह मनुष्य को धर्म परायण और संयमी बनाता है। "सहर" के समय से सूर्यास्त तक अन्न, जल, तेल, प्रत्येक ऐसी वस्तु जो तरावट और ताजगी प्रदान करती है, त्याज्य है।

इस्लाम में रोजा ३६५ दिन में केवल २९ या ३० दिन का होता है। रोजा चांद की पहली तिथि से अर्थात चांद देखकर आरम्भ होता है और दूसरे महीने में चांद देखकर समाप्त होता है। रोजे का अधिक से अधिक समय १६ घण्टे का और कम से कम १२ घण्टे का होता है[१६]।

रोजा केवल उन्हीं के लिये निषेध है जो वृद्ध, रोगी, दुर्बल, गर्भवती महिला एवं बच्चों को दूध पिलाने वाली हो।

इस प्रकार रोजा मनुष्य को पापों से सुरक्षित रखता है तथा आत्मा को शुद्ध एवं पवित्र रखने का मुख्य स्रोत है।

हज्ज (तीर्थयात्रा)

`हज्ज' का अर्थ है तीर्थयात्रा करना । `हज्ज' एक `इबादत' है जिसमें मनुष्य अल्लाह के घर अर्थात् `काबा' के दर्शन करने की इच्छा से मक्के जाता है । हज्ज के दौरान सारे भेद मिट जाते हैं एवं हज्ज साधक को हृदय शुद्धि में भी सहायक होता है[८७] ।

प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन काल में मक्का की तीर्थ-यात्रा करे ।

भौतोपासक सूफियों में `मजार' एवं दरगाह का अत्यन्त महत्व है । उनका पूर्ण विश्वास है कि हिन्दू हो या मुसलमान चित्त की शान्ति और मन की मुराद पूरी करने के लिए अल्लाह के काबा: अर्थात घर - जो कि अल्लाह की इबादत का केन्द्र और शान्ति का स्थान है " के दर्शन करने की इच्छा से हज्ज को जाता है ।

इन्हीं पाँच कर्तव्यों को इस्लाम के मूल स्तम्भों की संज्ञा से विभूषित किया गया है ।

दार्शनिक मान्यताएं

इतना तो सर्वमान्य है ही कि सूफीवाद का जन्म इस्लाम के हृदय से हुआ और कुरान को ही मूल रूप में ग्रहण किया । उसकी चिन्तन पद्धति का स्वरूप इस्लाम पर ही आधारित रहा है । यही कारण है कि सूफियों के समस्त सिद्धान्त कुरान में कथित तथ्यों पर ही आश्रित है । इस्लाम के `तौहीद' के अनुसार वह ईश्वर को ही सृष्टिकर्ता , संहारक और रक्षक सभी मानती हैं ।

`हुवल्ला हुल्लज़ीव लाइलाहा इल्लाहु आलमुल ग़ैबवश शहादती हुवर्रह मानुर्रहीम'[८८] अर्थात अल्लाह वह है जिसके अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं वह अदृश्य है । वही एक है जो इस सृष्टि का सृजनकर्ता , संहारने वाला और रक्षक है ।

वह प्रत्येक दृष्टिगोचर होने वाला ज्योतिपुंज की भाँति प्रकाशमान है। एक होते हुए अनेकत्व के रूप में व्याप्त है उस एक के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं।

जहाँ तक सृष्टि का सम्बन्ध है सभी इस्लामी चिन्तक यह स्वीकार करते है कि परमात्मा ही सृष्टि निर्माणकर्ता है।

वास्तव में विश्व ईश्वर का एक स्वच्छ दर्पण है इस तरह विश्व की सृष्टि ईश्वर के स्वतः स्फूर्त एवं अपरिमेय आनन्द का एक पूर्ण विकासमात्र है।

इन्सान के सम्बन्ध में सूफियों का विचार है कि वह परमात्मा का प्रतिरूप है।[19] वह उस परमात्मा और प्रकृति दोनों के बीच की कड़ी है उनकी धारणा है कि मनुष्य उसके पहला आकार है जिसमें परमात्मा ने अपने आपको प्रतिबिम्बित किया है।[20] सूफियों के अनुसार इन्सान चार तत्वों से मिलकर बना है - नफ्स (इन्द्रियां), रूह (चित्त), कल्ब (हृदय) और अक्ल (बुद्धि)। सूफियों का विश्वास है कि कल्ब ही ईश्वर का सिंहासन है।

'जगत' के सम्बन्ध में सूफियों के एक वर्ग की धारणा है कि संसार अल्लाह की छाया है। इसी से मिलता जुलता सिद्धान्त 'तजल्लियात अभिव्यक्तिवाद' का है। इसके अनुसार जगत उसकी छाया नहीं, उसकी ही अभिव्यक्ति है। उनका कहना है कि यह जगत उसके ज्ञात गुणों की तजल्ली (अभिव्यक्ति) है।[21] इसके विपरीत 'बौली शाहब' के मतानुसार परमात्मा का स्वरूप इतना विराट है कि उनकी तुलना में सृष्टि के समस्त पदार्थ अस्तित्वहीन हो जाते हैं। उनका कहना है कि उसका ज्ञात स्वरूप ही जगत के रूप में अभिव्यक्त है किन्तु उसके स्वरूप के विकृत गुण इसी प्रकार अनभिव्यक्त रहते हैं जिस प्रकार उपकारों में उपकार भाव छिपे रहते हैं।[22]

जगत की सत्ता के सम्बन्ध में सूफियों का विचार है कि यह जगत असत् अव्यक्त और नश्वर है। 'कश्फुल महजूब' में हुज्वेरी ने सूफियों के एक वर्ग के

मत का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह संसार को क्षणभंगुर और मिथ्या मानता था।[23] यह मत क़ुरान के इस कथन से कि 'इस जीवन का सुख केवल भ्रम मात्र है।'[24] बहुत साम्य रखता है।

शैतान की धारणा भी सूफियों में मान्य रही है। इस शैतान से सदा बचा रहना ही सूफी साधक का लक्ष्य रहा है।[25] सूफी क्यावोद ने ठीक ही लिखा है कि 'जब हृदय शैतानिक विकारों से मुक्त हो जाता है तो वह ठीक उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार चोर से रहित मकान भयहीन हो जाता है।'[26] सूफी कवि जायसी शैतान में विश्वास करते हैं और वह उसे विघ्न रूप मानते हैं 'राघव दूत सोई शैतानू'[27] कह कर राघव चेतन को शैतान कहा है।

सूफी लोगों ने सारे पापों की जड़ 'नफ़्स' या 'अहं' को माना है। उस अहं का विनाश करना ही उनका प्रधान लक्ष्य रहा है। सूफियों के अनुसार यह साधक को परमात्मा के मार्ग में नहीं चलने देता है।[28] नफ़्स के नष्ट हो जाने पर जीव साधक और साध्य एक हो जाते हैं।

इसी प्रकार 'अल-बिस्तामी' ने एक स्थल पर लिखा है 'सांप जिस प्रकार केंचुल छोड़ता है उसी प्रकार से मैंने 'अहं' को छोड़कर अपनी ओर देखा और पाया कि मैं और वह एक ही हैं।'[29]

अतः सूफियों की साधना का प्रमुख लक्ष्य नफ़्स, अहं या इच्छा का विनाश करना था इसके लिये ही उन्होंने प्रेम मार्ग का निर्माण किया।

त्योहार

मुस्लिम त्योहार प्रायः ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित हैं तथा इन त्योहारों की तिथि भी चांद पर निर्भर करती है।

ईद (ईद-उल-फितर)

ईद का त्योहार रमजान माह के बाद जिस दिन चांद निकलता है मनाया जाता है। जैसे ही ईद का चांद दिखाई देता है वैसे ही मुस्लिम समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है।

कई दिन पूर्व ही ईद की तैयारी आरम्भ हो जाती है किन्तु ईद की रात में बाजारों एवं घरों में बड़ी धूमधाम होती है। प्रातः खजूर अथवा मीठा खाकर व्रत समाप्त किया जाता है। तत्पश्चात् लोग स्नान करते हैं और उत्तम से उत्तम वस्त्र पहनते हैं। ईद की नमाज पढ़ने के लिए लोग अधिक से अधिक संख्या में ईदगाह और ईदगाह के बाहर पंक्तिबद्ध होकर ईमाम के पीछे नमाज पढ़ते हैं और बाद में एक दूसरे को बधाई देते हैं और गले मिलते हुए धूमधाम कर सेवइयां खाते हैं।

बकरीद (ईद-उल-जुहा)

बकरीद भी ईद की भांति एक लोकप्रिय त्योहार है। बकरीद हजरत इब्राहीम की स्मृति का एक रूप है। उन्होंने आज से कई हजार वर्ष पूर्व स्वप्न में अल्लाह की ओर से आदेश पाया था कि अपनी सबसे प्रिय वस्तु को अल्लाह की राह में कुर्बान करें। उन्हें अपना पुत्र इस्माईल सबसे अधिक प्रिय था, पर अल्लाह की इच्छा उस प्रिय पुत्र से कहीं अधिक महत्व रखती थी। इसी को दृष्टि में रखकर हजरत इब्राहीम ने अपने पुत्र की कुर्बानी अल्लाह के मार्ग में करना उचित समझा जब उन्होंने अपने प्रिय पुत्र की कुर्बानी करने के लिए अपनी आंखों पर पट्टी बांधी और पुत्र की गर्दन पर जैसे ही छुरी चलायी वैसे ही अल्लाह ने पुत्र के स्थान पर एक दुम्बा भेज दिया। वास्तव में हजरत इब्राहीम की यह परीक्षा थी जिसमें वह खरे उतरे। इसी दृष्टि से अल्लाह ने उनकी कुर्बानी को सदैव के लिए एक स्मृति बनाया।[30] प्रत्येक वर्ष उसी दिन पशु बलि के रूप में हजरत इब्राहीम की इस त्यागपूर्ण भावना को मनाया जाता है। उसमें जो पशु बलि होता है उसके मांस को तीन भागों में बांट दिया जाता है। एक भाग घर के लिए रखा जाता है, एक भाग मित्रों के लिए और एक भाग निर्धन एवं असहायों में बांट दिया जाता है।

बारह वफात (ईद-मीला-दुन्नबी)

इस्लामी मास के अनुसार तीसरे मास की बारहवीं तिथि को मनायी जाती है। मुस्लिम लोक जीवन में बारहवफात को बड़ा आदर दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसी दिन हजरत मुहम्मद साहब का जन्म अल्लाह से भेंट और स्वर्गवास भी हुआ था परन्तु जन्म को ही अधिक महत्व दिया जाता है।

मुहर्रम

मुहर्रम इस्लामी वर्ष का पहला मास है। हजरत इमाम हसन और हुसैन के संस्मरण के रूप में मनाया जाता है जो कर्बला के युद्ध में सत्य के लिए शहीद हो गये थे।

वास्तव में मुहर्रम प्रसन्नता का त्योहार नहीं है फिर भी मुसलमानों में कुछ व्यवहार करने की परम्परा के कारण यह एक त्योहार जैसा प्रतीत होता है।

शब-ए-बरात

इस्लामी मास के आठवें मास में चांद की चौदहवीं रात को यह त्योहार मनाया जाता है। इसी दिन 'हजरत अली करमो रज्जल्ला अहेह का देहान्त हुआ था। घरों मस्जिदों एवं गलियों को मोमबत्तियों एवं बिजली के प्रकाश से ऐसा सुसज्जित किया जाता है मानों चारों ओर चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है।

मुस्लिम संस्कार

इस्लाम धर्म के अन्तर्गत मुख्य रूप से पांच संस्कार स्वीकार किये गये हैं -

१- जन्म संस्कार

२- अकीक

३- खतना

४- विवाह

५- मृत्यु

१- जन्म-संस्कार

जन्म संस्कार आरम्भिक संस्कार है जो गर्भाधान से आरम्भ होता है और जन्म के समय पूर्ण होता है । जब किसी मुस्लिम परिवार में कोई बच्चा होता है , तब सर्वप्रथम उसके कानों में अजान का शब्द सुनाया जाता है जिससे पृथ्वी पर बच्चे को अल्लाह के एकेश्वरवाद की ध्वनि सुनाई पड़े और उस पालनकर्ता के प्रति आरम्भ से ही दृढ़ विश्वास की भावना प्रवेश कर सके । इसके पश्चात् किसी श्रेष्ठ पुरुष से खजूर अथवा छुहारा का कुछ अंश मुख में चबा कर बच्चे के मुख में डालने की भी परम्परा है[३१] ।

इस प्रकार की परम्परा का अभिप्राय यह है कि बालक इस्लाम के सिद्धान्तों को उसी प्रकार शिरोधार्य करे जैसे उस श्रेष्ठ पुरुष ने अपने जीवन में व्यवहृत किया है ।

२- अकीक

इस्लामी संस्कारों में अकीक का द्वितीय स्थान है । अकीक का शाब्दिक अर्थ है मुसलमान बच्चों का मुण्डन एवं नामकरण संस्कार । इस अवसर पर बकरी , भेड़ी या दुम्बे की कुर्बानी की जाती है । हदीसों से यह स्पष्ट होता है कि यदि बच्चों के जन्म के सातवें , चौदहवें , इक्कीसवें और अट्ठाइसवें दिन अकीक कर दिया जाय तो बच्चा बहुत सी आपत्तियों से छुटकारा पा जाता है[३२] । यदि इस बीच में अकीक करना सम्भव न हो तो जब भी सम्भव हो सम्पन्न करना अनिवार्य है जिससे बालक सत्पथ का अनुगामी बन सके ।

यदि बालक है तो उसके लिए दो बकरा या भेड़ा अकीक होता है यदि बालिका हो तो उसके लिए एक बकरी या भेड़ी अकीक होता है ।

बिना अकीक के बालक इस्लामी वातावरण में अल्लाह द्वारा प्रदान की गयी सुविधाओं एवं पवित्रताओं से वंचित रहता है ।

अकीक संस्कार एक प्रकार से भोज का संस्कार है । इस अवसर पर बालक एवं बालिका का नामकरण किया जाता है । उसी नामकरण के साथ एक या दो कुर्बानी की जाती है । कुर्बानी के मांस को या तो बांट दिया जाता है अथवा उसे पकाकर भोज का आयोजन किया जाता है । इसमें सभी सम्बन्धियों को निमन्त्रित किया जाता है परन्तु उस पके हुए मांस को बालक , माता-पिता , नाना-नानी तथा दादा-दादी के अलावा परिवार के सभी सदस्य खाते हैं ।

अतः अकीक वास्तव में मन की शुद्धता , नाम की सार्थकता और ईश्वर भक्ति पर विश्वास का एक दृढ़ रूप है , जो प्रत्येक मुसलमान के लिए एक अनिवार्य विधा है ।

३-<u>खतना या मुसलमानी</u>

इस्लाम में खतना एक संस्कार है जिसे मुसलमानी भी कहते हैं । तौरात के अनुसार-हजरत इब्राहीम की अवस्था जब निन्यानवे वर्ष की हुई तब उनमें और ईश्वर में जो बातचीत हुई उसका विषय खतना था । ईश्वर ने उनसे प्रतिज्ञा करायी और अत्यन्त ही कठोरता के साथ ह० इब्राहीम को आदेश दिया कि तुम्हारे परिवार के प्रत्येक सदस्य को खतना कराना अनिवार्य है अन्यथा कठोर यातना सहनी पड़ेगी[33] ।

सामान्यतः यह संस्कार ७ वर्ष से १२ वर्ष के बीच सम्पन्न करना चाहिए । मुस्लिम समाज में यह संस्कार बड़ी धूमधाम से किया जाता है । खतना होने के बाद " शीरनी " बाँटी जाती है और भोज का भी आयोजन होता है ।

इस प्रकार मुस्लिम लोक जीवन में खतना अन्य संस्कारों की भाँति ही महत्वपूर्ण संस्कार है ।

४- <u>विवाह</u> (निकाह)

इस्लामी वातावरण में विवाह को "निकाह" कहते हैं । "निकाह" (विवाह) का अर्थ होता है "एक होना" या "संयुक्त होना"[34] । निकाह चूँकि

के लिए काजी होता है वह दो साक्षियों के साथ पहले कन्या से निकाह पढ़ाने की स्वीकृति लेता है तदुपरान्त सभा के मध्य में वर के पास जाकर यह घोषणा करता है कि अमुक की कन्या , अमुक ने अपना निकाह आपसे पढ़ाने हेतु भेजा है। इसके पश्चात् कुरान की आयत पढ़ता है और अन्त में समझौते के रूप में कुछ धनराशि की स्वीकृति लेकर निकाह सम्पन्न करता है।

निकाह में जो धनराशि कही जाती है उसे "मेहर" कहते हैं।[35] यह इसलिए होती है कि यदि भविष्य में पुरुष को और से स्त्री को छोड़ने की इच्छा हुई तब स्त्री उस धनराशि मेहर से अपना भरण पोषण कर सके।

मुस्लिम विवाह में मान्य विवाह के लिए स्त्री , पुरुष दोनों की एक दूसरे के प्रति अपनी स्वीकृति दो साक्षियों के साथ काजी को देनी होती है , उस समय स्त्री कहे कि मैंने अपने आपको पातत्व में लिया , पुरुष कहे कि मैंने इसे स्वीकार किया तब विवाह सम्पन्न समझा जायेगा। इसमें से किसी एक ने भी इस प्रकार की शब्दावली का व्यवहार नहीं किया तब विवाह सम्पन्न नहीं समझा जायेगा। प्रस्ताव को "इजब" तथा स्वीकृति को "कुबूल" कहा जाता है।[36]

५- मृत्यु

मृत्यु मनुष्य का अन्तिम संस्कार है। लौकिक जीवन में अन्य संस्कारों की भाँति इसे भी सम्पन्न किया जाता है। शव को दफन करने से पूर्व उसको अनेक प्रकार से सुसज्जित किया जाता है तथा कब्र की सेज को भी सांसारिक सेज जहाँ उत्तम विधि से सुसज्जित किया जाता है।

इसके अतिरिक्त मुस्लिम लोक जीवन में " क्यामत के दिन " को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। वास्तव में वह दिन न्याय का दिन होता है। उस दिन प्रत्येक प्राणी से उसके सांसारिक कार्यों का हिसाब लिया जाता है तथा प्रत्येक को अपनी कमीकी में लिखित विवरणों का उत्तर देना होता है जैसे -

" ऊपर वाली कचहरिया में न्याय होता ।
केहू जनि के केहून नवाब होता ।।
रत्ती-रत्ती का उनके हिसाब होता ।
नाहीं तनिको एकहू पल अन्याय होता "।।[37]

महर

महर वह धनराशि या सम्पत्ति का अन्य रूप है, जिसे पत्नी विवाह के प्रतिफल के रूप में पति से प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है[38]। महर की धनराशि विवाह के पहले या विवाह के समय ही निश्चित की जाती है। मुस्लिम समाज में पति किसी भी समय जब चाहे बिना कारण बताये पत्नी को तलाक दे सकता है किन्तु तलाक देने के तुरन्त बाद पति को अपनी तलाक शुदा पत्नी को महर में तय की गई धनराशि देनी पड़ती है। अतः महर विवाह का आवश्यक तत्व है।

महर का उद्देश्य बहुपत्नी प्रथा को भी रोकना है क्योंकि मुस्लिम समाज ने पुरुष को एक साथ चार पत्नियां रखने का अधिकार देकर बहु पत्नी प्रथा को प्रोत्साहित किया है, किन्तु एक पुरुष द्वारा एक से अधिक पत्नियों के साथ न्याय तथा समानता का व्यवहार कर पाना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। अतः इस बुराई को रोकने में भी महर का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि जैसे ही पुरुष दूसरा विवाह करता है, वैसे ही उसे दूसरी पत्नी को महर देना पड़ता है। सामान्यतया दूसरे विवाह के अवसर पर महर की धनराशि काफी अधिक निश्चित की जाती है।

तलाक

सामान्यतया तलाक का अर्थ पत्नी का परित्याग करना या उसे वैवाहिक-बन्धन से स्वतन्त्र करना है। मुस्लिम समाज में पति अपनी पत्नी को बिना कारण बताये जब चाहे तब तलाक दे सकता है।

तलाक अथवा विवाह-विच्छेद होते ही पत्नी महेर प्राप्त करने की हकदार हो जाती है। यदि विवाह का सम्भोग हुआ है और महेर की धनराशि निश्चित है तो वह निश्चित महेर की सम्पूर्ण धनराशि प्राप्त करने की हकदार हो जाती है परन्तु विवाह सम्भोग न होने की दशा में वह निश्चित महेर की आधी धनराशि पाने की हकदार होती है।[३९] परन्तु यदि पति अपनी तलाकशुदा पत्नी के साथ पुनः विवाह करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि "तलाकशुदा पत्नी का किसी अन्य मुस्लिम पुरुष के साथ वैध विवाह हो गया हो",[४०] या फिर "दूसरा पति स्वेच्छा से तलाक दे या उसकी मृत्यु हो जाय"[४१]।

वक्फ

वक्फ के अन्तर्गत ऐसी संस्थायें आती हैं जिनका उद्देश्य सर्व-साधारण को धार्मिक या परोपकारी रूप में लाभ पहुंचाना होता है।[४२] उदाहरण के लिए मस्जिद, तकिया, दरगाह, इमामबाड़ा, खानकाह, कब्रिस्तान आदि।

मस्जिद

मस्जिद एक प्रकार का सार्वजनिक वक्फ है जहां प्रत्येक मुसलमान समूह में या अकेले नमाज पढ़ता है अथवा इबादत करता है। सार्वजनिक मस्जिद में किसी भी सम्प्रदाय का मुसलमान प्रवेश करने तथा नमाज पढ़ने का अधिकारी होता है किन्तु व्यक्तिगत मस्जिद में जन-साधारण को प्रवेश करने तथा नमाज पढ़ने का हक नहीं होता है। सामान्यतः व्यक्तिगत मस्जिद की स्थापना घर के अन्दर की जाती है जिसमें प्रवेश के लिए बाहरी कोई रास्ता नहीं होता है। मस्जिद की देखरेख करने वाला "मुजाविर" कहलाता है। कभी-कभी वह फातिहा पढ़ता है और "अजान" भी देता है।

खानकाह

खानकाह वह मठ या धार्मिक संस्था होती है जहां दरवेश (साधु) और सत्य की खोज करने वाले धार्मिक शिक्षा और उपासना के अभ्यास के लिए इकट्ठे

होते हैं । यह एक ऐसी संस्था है जहाँ दीन-इस्लाम की शिक्षा (तालीम) दी जाती है । यह उस समय स्थापित की जाती है जब कि विशिष्ट पवित्रता का कोई दरवेश या सूफी किसी स्थान पर रहने लगता है और वहाँ इस्लाम के अनुसार धार्मिक शिक्षाएं या उपदेश देने लगता है । जब तक उसे पर्याप्त महत्व नहीं प्राप्त होता तब तक लोगों की दृष्टि में उसकी स्थिति को देखते हुए उसके निवास स्थान को "तकिया" कहते हैं।[43] धीरे-धीरे लोग उसकी शिक्षाओं के प्रति आकर्षित होने लगते हैं और शिष्यगण उसके चारों ओर एकत्रित होने लगते हैं ऐसी स्थिति में उसके रहने के लिए एक निवास स्थान बना दिया जाता है और इस प्रकार "तकिया" "खानकाह" में विकसित हो जाता है । उसकी (सूफी) की मृत्यु के बाद उसकी कब्र "मजार" या "समाधि" हो जाती है जो उसके शिष्यों के लिए ही नहीं बल्कि दूर-दूर के हिन्दू और मुसलमान लोगों के लिए तीर्थस्थान बन जाता है ।

खानकाह के मुखिया या प्रधान को "सज्जादानशीन" कहते हैं जो खानकाह में दरी या चटाई (जानमाज) पर सबसे आगे बैठकर धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा देता है । वह धर्म उपदेशक के अतिरिक्त खानकाह का प्रबन्धक भी होता है ।

दरगाह

भारतवर्ष में "दरगाह" शब्द का प्रयोग किसी मुस्लिम संत या सूफी की समाधि या मकबरे के लिए किया जाता है और इस प्रकार यह आश्रय या प्रार्थना का स्थल होता है । किसी दरवेश या सूफी का निवास स्थान जब तक पर्याप्त महत्व नहीं प्राप्त करता है तब तक "तकिया" और लोगों की दृष्टि में पर्याप्त महत्व प्राप्त करने के बाद "खानकाह" कहलाता है । ऐसे दरवेश या सूफी की मृत्यु हो जाने पर उसे जहाँ दफनाया जाता है वह स्थान "दरगाह" के नाम से जाना जाता है।[44] अतः दरगाह एक पवित्र स्थान है जहाँ पर मृतक सूफी के शिष्य फातिहा तथा नमाज पढ़ते हैं और दूर-दूर से लोग प्रार्थना भी करते हैं । भारत में "ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती" का अजमेर तथा "हजरत निजामुद्दीन" दिल्ली के दरगाह अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ।

इमामबाड़ा

इमामबाड़ा किसी व्यक्तिगत मकान का वह अलग भाग है जहाँ पर घर के सदस्य प्रार्थना तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान किया करते हैं। कभी-कभी पूरा मकान ही इमाम बाड़े के लिए सुरक्षित कर दिया जाता है। प्रायः शिया मुसलमान मुहर्रम और अन्य अवसरों पर धार्मिक अनुष्ठान सम्पादित करने के लिए व्यक्तिगत मकान या व्यक्तिगत मकान के किसी हिस्से को इमामबाड़े के लिए सुरक्षित कर देते हैं।

कब्रिस्तान

कब्रिस्तान वह स्थान है जहाँ मुसलमानों के शव दफनाये जाते हैं। प्रायः ये दो प्रकार के होते हैं, सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत।

सार्वजनिक कब्रिस्तान में सभी मुसलमानों को मृत शरीर दफनाने का अधिकार होता है। इसके विपरीत व्यक्तिगत कब्रिस्तान में केवल संस्थापक उसके वंशज तथा सम्बन्धियों के शव को ही दफनाया जा सकता है। जन-साधारण को व्यक्तिगत कब्रिस्तान में शव दफनाने का हक नहीं होता है किन्तु यदि व्यक्तिगत कब्रिस्तान में संस्थापक के वंशज तथा सम्बन्धियों के अलावा जन-साधारण को भी शव दफनाने की अनुमति दे दी जाती है तो ऐसा कब्रिस्तान धीरे-धीरे सार्वजनिक कब्रिस्तान हो जाता है।

एक बार कब्रिस्तान का प्रयोग हो जाने के बाद वह भूमि सदैव कब्रिस्तान बनी रहती है चाहे वहाँ शव या हड्डियों के अवशेष का पता भी न चले।

सूफी साधना के विभिन्न सोपान

सूफीमत के अनुसार सालिक (साधक) को अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इश्क रूपी मार्ग पर चलना पड़ता है, क्योंकि तसव्वुफ रूपी महल इश्क (प्रेम)

पर ही आधारित है । अतः सूफी "इश्कयाबी" के साथ ही साथ "हुस्न परस्ती" का भी समर्थन करते हैं, यहाँ तक कि सूफी व्यक्ति विशेष के प्रेम में पड़कर "ईश्वरीय प्रेम" (इश्क खुदा) का अनुभव तथा सौन्दर्य पूजा में "अल्लाह के जमाल" (ईश्वर के सौन्दर्य) का साक्षात्कार करते हैं ।

इस प्रकार "इश्क" के मार्ग पर चलकर विभिन्न "अहवाल" (अवस्थाओं) एवं विभिन्न "मुकामात" (ठिकानों) को पार करते हुए, उन्हें अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।[४५]

उबूदियत

यह मनुष्य की साधारण अवस्था होती है । इस अवस्था में सालिक साधक में सभी मानवीय गुण एवं अवगुण विद्यमान रहते हैं । मनुष्य स्वभाव से ही कामी, क्रोधी और लालची रहा है साथ ही साथ सांसारिक बन्धनों में जकड़ा रहा है अतः साधक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह इन दुर्गुणों को नष्ट करने का प्रयास करें क्योंकि बिना इनसे मुक्त हुये अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है, अतः सांसारिकता से छुटकारा पाने के लिये साधक को विभिन्न सोपानों से गुजरना पड़ता है ।

शरीयत

मनुष्यत्व की अवस्था में साधक का सर्वप्रथम कर्तव्य होता है कि वह अपने सभी पापों (गुनाहों) से तौबा करें ।[४६] तत्पश्चात् उसको "शरीयत" के अनुसार अन्य आज्ञाओं - नमाज (सलात), रोजा (सौम), जकात (दान), और मक्का की तीर्थ यात्रा (हज्ज) का पालन करना पड़ता है । जिसके द्वारा स्वतः ही बुराइयाँ अर्थात अहंकार आदि का नाश हो जाता है और वह "इश्क खुदा" (ईश्वर के प्रेम) में पड़ जाता है ।

इस प्रकार जब साधक शरीयत में पूर्णतया अनुशासित हो जाता है तो वह अन्य अवस्था "तरीकत" में प्रविष्ट करता है ।

तरीकत

इस अवस्था में साधक को गुरु (पीर या शेख) की आवश्यकता होती है जैसा कि प्रसिद्ध सूफी बाबा फरीदगंज शकर कहते हैं -

> " इश्क का रस्ता न्यारा है ,
> कुछ मदद पीर के नाचारा है ।[४७] "

गुरु (पीर) के निर्देशों के द्वारा ही ईश्वर की अनुभूति सम्भव है क्योंकि यदि व्यक्ति का कोई शिक्षक नहीं है तो उसका शिक्षक शैतान हो जाता है अतः साधक का यह कर्तव्य है कि वह पीर की सेवा में सदैव लीन रहे और उसके बताये मार्ग का अनुसरण करे । साधक को चाहिये कि वह सदैव अपने पीर (गुरु) को ध्यान में रखे जिससे वह मानसिक रूप से उसमें (पीर में) लीन हो जाय । जब शिष्य तरीकत के सभी नियमों के पालन से पीर को सन्तुष्ट कर देता है , तो पीर उसको "खिरका" अर्थात सूफी वस्त्र प्रदान करता है[४८] ।

तृतीय अवस्था "हकीकत" कहलाती है , जिसमें साधक को सात्विक ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और वह ईश्वरीय सत्ता की वास्तविकता को समझने लगता है । अन्तिम अवस्था "मारिफत" की होती है जहां पहुंच कर साधक को ईश्वर के सत्यरूप का ज्ञान हो जाता है , जिसे हम साधक की सिद्धावस्था कहते हैं । इस अवस्था में साधक प्रियतम के "वस्ल" (मिलाप) में डूब जाता है और वह " फना " (लय) की दशा (स्वतः के विनाश की अवस्था अथवा सांसारिक प्रवृत्तियों के विनाश की अवस्था) में पहुंच जाता है अबुल्कासिम कुशैरी के अनुसार " यह अवस्था ईश्वर सत्ता की प्राप्ति की प्रारम्भिक अवस्था है[४९] । उस अवस्था को "फनाफिल्लाह" अर्थात ईश्वर में लीन होना कहते हैं ।

"फना" की अवस्था के बाद अन्तिम अवस्था "बका" की अवस्था कहलाती है इस अवस्था में प्रिय एवं प्रियतमा के बीच के सभी अन्तर समाप्त हो जाते हैं ,

उसकी सत्ता का लय परमसत्ता में हो जाता है और वह द्वन्द्व से मुक्त हो "एक" सत्य बन जाता है।[50] जैसा कि मंसूर अलहल्लाज ने कहा है कि ,"मैं वह हूं जिसको मैं प्रेम करता हूं , और वह जिसको मैं प्रेम करता हूं वह मैं हूं।" "मैं ईश्वर हूं" (अनलहक)। यही शान्तावस्था है जिसमें आत्मा मानों परमात्मा में वास करने लगता है। इस प्रकार से आत्मभाव का पूर्णतः विनाश हो जाता है और ईश्वर से ऐक्य स्थापित हो जाता है।

इस प्रकार सूफीमत में अनेक सोपानों का विधान है उन सबके द्वारा अन्त में आत्ममिलन की स्थिति आती है जिसे `फना` लौकिक जीवन की समाप्ति और `बका` (अलौकिक जीवन की प्राप्ति) कहते हैं। इसके लिये सूफियों ने "प्रेम" को एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति माना है जो साधक को आध्यात्मिक मार्ग की ओर ले जाती है और वह साधना में लीन हो जाता है उसका इश्क-ए-मजाजी (लौकिक प्रेम) साधना द्वारा उन्नत होकर इश्क-ए-हकीकी (अलौकिक प्रेम) में परिणत हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक को अन्तर्जगत की आनन्दानुभूति होने लगती है।

संक्षेप में सूफियों की आध्यात्मिक विचारधारा और सूफीमत के अनुयायी "मुसलमान" और उनकी संस्कृति "सूफी संस्कृति" कहलाती है।

सूफी संस्कृति से तात्पर्य ऐसे समाज की जीवन पद्धति से है जिसका रहन-सहन , खान-पान , वेशभूषा , आचार-विचार , रीति-नीति , धर्म तथा दार्शनिक विचार आदि कुरान और हदीस द्वारा निर्दिष्ट हो।

विश्व में सूफीमत आगे चलकर एक ऐसा प्रकृति मूलक धर्म प्रमाणित हुआ जिसके अन्तर्गत जीवन के आध्यात्मिक परिष्कार के साथ , सांसारिक जीवन में भी शुद्धचित्तपूर्ण आचरण पर बल दिया गया। इसके अतिरिक्त संयमित और संतुलित जीवन ही उनके जीवन का आधार रहा है। इन्हीं विशिष्टताओं के आधार पर सूफियों ने अपनी संस्कृति को विकसित किया।

उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्र में सूफियों के महत्व को झुठलाया नहीं जा सकता । यही क्यों उनकी संस्कृति विश्व की अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कृति कही जा सकती है ।

सन्दर्भ - सारिणी

(अध्याय - ३)

क्रमसं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
१-	प्रो० पी० डी० जैन	(विधि विभाग) से वार्तालाप	
२-	सईद अहमद	भारतीय मध्यकालीन संस्कृति	२
३-	डा० शौकती अखिया निगार	(उर्दू विभाग) से वार्तालाप	
४-	जय बहादुर लाल	सूफी संत साहित्य का उद्भव और विकास	१०६

५- Allah is the Creator of all things and he is the one the almighty.

(The Glorious Qurans. 13,16)

६- Allah there is no God save. the Alive, the Eternal

(The Glorious Qurans.3,2)

७- Shibli Says ' I never see any thing but God.

A.M.A.Shustery,Outlines of Islamic Culture

Page 598

८-	डा० जमीला बानो जाफरी	हिन्दी कविता इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में	६१
९-	सईद अहमद	भारतीय मध्यकालीन संस्कृति	३
१०-	डा० जमीला बानो जाफरी	हिन्दी कविता इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में	६३

११- परिस्थितिवश यदि नमाज का निर्धारित समय व्यतीत हो जाए तो इस्लाम में 'कजा' नमाज पढ़ने की छूट दी गई है।

१२- डा० जमीला बानो जाफरी — हिन्दी कविता इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में — ६२

१३- धनि जीव और ताकर छाया , ऊँच कमल मंह बाकर दीया ।
दिया जो तप तप सब उपराहीं , दिया बराबर जग किछु नाहीं ।
एक दिया ते दसगुन लहा , दिया देखि सब जग मुख चहा ।

(जायसी पदमावत)

१४- दान दियो नहिं होइ उधारा , दान बिना को मंझधारा ।
दान सुपथ ऊपर पति होई , दान सुख पावै सब कोई ।
दान देइ दोऊ जग केरा , जिन दीना तिन कीन उबेरा ।
नीचहु दान द्रव्य ते पावै , दियौ दान विधि पार लगावै ।

(कासिम शाह हंस जवाहिर पृष्ठ १६८)

क्रमसं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
१५-	दुहुं जग छिन्नु दान सम नाहीं, कुल दधि काढ़े मधि अहीं । देवक दान छोड़ मंकनोरा, मधि पुन देउ लावै सोरा । एक देय दस पावहिं लाहू, दे दीजहु जौ ना पतियाहु । (उसमान चित्रावली पृष्ठ ८८)		
१६-	डा० श्रीमती अफिया निसार (उर्दू विभाग) से वार्तालाप		
१७-	पीछे जन्म हरम का कीजै, जो कुछ करै सो यह फल लीजै । (शेख रहीम प्रेमरस)		
१८-	उद्धृत डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	३१
१९-	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन	१३८
२०-	वही	,, ,,	,,
२१-	रामपूजन तिवारी	सूफीमत साधना और साहित्य	२५६
२२-	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन	१४२
२३-	रामपूजन तिवारी	सूफीमत साधना और साहित्य	२३०
२४-		कुरान ३।१८५	
२५-	रामपूजन तिवारी	सूफीमत साधना और साहित्य	१६१
२६-	वही	,, ,,	९८
२७-	जायसी	ग्रन्थावली	३०१
२८-	रामपूजन तिवारी	सूफीमत साधना और साहित्य	२५६
२९-	वही	,, ,,	२३३
३०-	डा० श्रीमती अफिया निसार से (उर्दू विभाग) वार्तालाप		
३१-	,, ,,	,, ,,	
३२-	,, ,,	,, ,,	
३३-	,, ,,	,, ,,	
३४-	,, ,,	,, ,,	
३५-	,, ,,	,, ,,	
३६-	डा० श्रीमती अफिया निसार (उर्दू विभाग) से वार्तालाप		

क्रमसं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
३७-	डा० इरशाद अली	मुस्लिम लोक गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन	६७
३८-	प्रो० पी० डी० जैन	विधि विभाग से वार्तालाप	
३९-	,,	,, ,,	
४०-	,,	,, ,,	
४१-	,,	,, ,,	
४२-	,,	,, ,,	
४३-	,,	,, ,,	
४४-	,,	,, ,,	
४५-	प्रो० ए० अहमद	स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन दि इण्डियन इन्वायरमेन्ट	१२२
४६-	डे० निकोलसन	दि मिस्टिक्स आफ इस्लाम	५८
४७-	लईक अहमद	भारतीय मध्यकालीन संस्कृति	९४
४८-	,,	,, ,,	१५
४९-	डे० निकोलसन	स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म	२१८
५०-	चन्द्रबली पाण्डेय	तसव्वुफ अथवा सूफीमत	६०

अध्याय - ४

प्रमुख कृतियाँ और रचनाकार

चन्दायन -

सूफी काव्य की रचना चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर बीसवीं सदी तक अबाध गति से चलती रही है।[1] जिसमें अधिकांश रचनाएँ प्रेमाख्यानकों के रूप में उपलब्ध हैं। अब तक के प्राप्त सूफी प्रेमाख्यानों में " चन्दायन " प्रथम प्रेमाख्यान : सन् १३७९ ई० : है जिसके रचयिता " मौलाना दाऊद " हैं। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने इसका सम्पादन १९६४ ई० में पहली बार किया[2] जिसमें ४५२ कड़वक संकलित हैं। इसके बाद डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित " चाँदायन " प्रकाशित हुआ[3], जिसमें ३१७ कड़वक हैं।

कथावस्तु -

चन्दायन की कथावस्तु संक्षिप्त है। आधिकारिक कथावस्तु का सम्बन्ध चन्दा और लोरक से है। राजा रूपचन्द द्वारा गोवर्धन पर आक्रमण के सन्दर्भ में लोरक और चन्दा एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, दोनों ही परस्पर आसक्त हो जाते हैं। चन्दा की सखी बिरस्पति की सहायता से शिव मन्दिर में दोनों का मिलन सम्पन्न होता है, दोनों ही एक दिन योजना बनाकर गोवर्धन से हरदीपाटन भाग जाते हैं।

इस आधिकारिक कथावस्तु के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ जुड़ी हुई हैं जो कि कथा को उत्कर्षित कर उसे रोचकता प्रदान करती हैं।

उल्लेखनीय है कि चन्दा और लोरक दोनों ही इस प्रेम प्रसंग से पूर्व विवाहित जीवन यापन कर चुके हैं। चन्दा बीरबावन की पत्नी है और लोरक की पत्नी है मैना।

प्राचीन परम्परा के अनुसार चन्दा का विवाह चार वर्ष की अवस्था में ही बीरबावन से हुआ था । युवती होने पर चन्दा का रूप सौन्दर्य विशेष निखार प्राप्त करता है और वह अप्रतिम सुन्दरी हो जाती है । उसके सौन्दर्य की छवि भिक्षुक बाजुर को अन्तरंग स्तर पर कुछ ऐसा छू जाती है कि बाजुर अपनी सुध बुध खो बैठता है । हीन भावना से ग्रसित बाजुर चन्दा की रूप छवि की प्रशंसा रावरूपचन्द से करता है , उस रूप वर्णन को सुनकर रावरूपचन्द इतना अधिक उत्तेजित हो जाता है कि वह गोबरगढ़ पर आक्रमण कर देता है , किन्तु रावरूपचन्द को विफलता ही हाथ लगती है । कारण गोबरगढ़ नरेश बीरलोरिक की सहायता से रावरूपचन्द को पराजित कर देते हैं ।

इन दो प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त चन्दायन में रचना के समापन से पूर्व नियति का उपयोग मिलता है । हरदीपाटन में लोरिक को एक व्यापारी द्वारा मैना की विरह व्यथा की सूचना मिलती है । इस सूचना का लोरिक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । वह चन्दा को साथ लेकर गोबरगढ़ वापस लौट आता है और मैना तथा चन्दा के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है । कहना न होगा कि समूची कथावस्तु सामान्य है ।

मुल्लादाऊद ने कथावस्तु का रूप शृंगार पूरे मनोयोग के साथ किया है तथा रचना में कौतूहल , संयोग , आकस्मिकता , अन्तर्द्वन्द्व , बहिर्द्वन्द्व , रहस्यात्मकता आदि का सफल प्रयोग किया है ।

वस्तु विश्लेषण -

डा० अस्करी के अनुसार काव्य का आधार एक लोक कथा है जो भागलपुर के अनेक स्थानों में प्रचलित है ।[1] चन्दायन की कथा , लोक जीवन में प्रचलित कथा का ही साहित्यिक रूप है ।

इसका संगठन भारतीय चरित-काव्यों की सर्ग-बद्ध शैली पर न होकर फारसी मसनवियों के ढंग पर हुआ है तथा इसके प्रत्येक प्रसंग को फारसी शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है। जैसे :-

१- <u>ईश्वर-महिमा</u> -

पहिले गावउं सिरजन हारा। जिन सिरजा यह देस अपारा ।।[५]

२- <u>पैगम्बर एवं उसके चार मित्रों की महिमा</u> -

पुरुष एक सिरजसि उजियारा। नांउ मुहम्मद जगत पियारा ।।[६]
अबाबकर उमर उसमान , अली सिंघ ये चारि ।।[७]

३- <u>शाहेवक्त फीरोजशाह तुगलक की प्रशंसा</u> -

साहि फिरोज दिल्ली बड़ राजा। छात पाट औ टोपी छाजा ।।[८]

४- <u>गुरु वन्दना</u> -

सेख जैनदी हौं पथिलावा। धरम पन्थ जिंह पाप गंवावा ।।
पाप दीन्ह मैं गांग बहाई। धरम नाव हौं लीन्ह चढ़ाई ।।[९]

५- <u>ग्रन्थ रचनाकाल का उल्लेख</u> -

बरिस सात सै होइ इक्यासी। तिहि जाह कवि सरसेउ भाखी ।।[१०]
साहि फिरोज दिल्ली सुलतानू जौनासाहि वजीर बखानू ।।

६- <u>इसके उपरान्त दाऊद ने मलिक मुबारिक की राजधानी की भौगोलिकता का वर्णन किया है जिससे लोरिक और चन्दा का सम्बन्ध है</u> -

डलमऊ नगर बसै नवरंगा। ऊपर कोट तले बहि गंगा ।।
धरमी लोग बसहिं भगवन्ता। गुनगाहक नागर जसवन्ता ।।
मलिक बयां पूत उधरन धीरू। मलिक मुबारिक तहाँ के मीरू ।।[११]

कथा का आरम्भ उद्धारणी कहुवक से होता है।[12] नायक-नायिका के मिलन के पश्चात् कथा का अन्त नहीं होता अपितु कथा आगे बढ़ती है, जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

चन्दायन की कथा के अनुशीलन से स्पष्ट व्यंजित है कि दाऊद का चन्दायन आध्यात्मिकता और दार्शनिकता के बोझ से सर्वथा मुक्त है। इसमें कहीं भी परवर्ती प्रेमाख्यानकारों की भाँति आत्मा-परमात्मा साधक और साधना की परिकल्पना नहीं मिलती। फिर भी, चन्दायन सूफी साधकों को आकृष्ट करता रहा है।

प्रमुख पात्र और चरित्रांकन

लोरक -

लोरक वस्तुत: प्रेमकथा का नायक है वह अहीर है और गोवर ग्राम में रहता है। उसी नगर में ' बावन ' नाम का एक अन्य अहीर है, जिसका विवाह उस नगर के एक सम्पन्न अहीर राजा ' सहदेव ' की कन्या ' चांद ' से हुआ है। एक बार जब चांद पति के घर से नैहर जा रही थी, तो मार्ग में वीर बाठुवा नामक चमार ने उसका सतीत्व हरण करना चाहा परन्तु लोरक वीर बाठुवा की अभिलाषा को निष्फल कर देता है। फलत: चांद लोरक की वीरता से प्रभावित होकर उसके प्रति आकृष्ट ही नहीं होती वरन् उससे प्रेम भी करने लगती है।

चांद -

काव्य की नायिका ' चांद ' ' वीर बावन ' की पत्नी और गोवर नरेश ' सहदेव ' की कन्या है। चांद का जन्म होने पर धरती और आकाश में उजाला सा हो जाता है। सहदेव मंदिर चांद औतारी। धरती सरग भई उजियारी॥[13]

उत्प्रेक्षा -

चांद के शृंगार-वर्णन में मौलाना दाऊद ने स्थान-स्थान पर उत्प्रेक्षाएं की हैं, ऐसी कुछ उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं -

फटंह कंचुक जनु दुइ कर लाने ।[५०]
भौंहें मानों दोनों हाथों से तानि हुए धनुष हैं ।

बदनु पसेउ बुंद जो आवहिं । चांद मांझ जनु नखत दिखावहिं ।
कबहुं दिय छांह न देखो जाई । सरग टूक जनु उडिगत जाई ।।[५१]

मुख पर जो प्रस्वेद बिन्दु आते हैं, वे चन्द्र में मानों नक्षत्र दिखते हैं। वह मुख ऐसा लगता है मानों दिव्य : तथा तीव्र : हो, इसलिए छाया से वह देखा नहीं जाता है अथवा वह ऐसा लगता है मानों आकाश में उदित होकर छूट गया हो ।

अतिशयोक्ति -

चन्दायन में अतिशयोक्ति अलंकार के मनोरम उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

मौंति पुरोइ जउ सिर संवारा । सगरें देस होइ उजियारा ।[५२]

जब उस मांगपर मोती पूर कर सिंगार करती है तब समस्त देश में प्रकाश हो जाता है ।

अधर बिहरि जउ संवक गुमारी । बिजुरी लौकि रैनि अंधियारी ।।[५३]

वह ग्वालिन अधरों को एक दूसरे से अलग कर जब हंसती है, तब मानों अंधेरी रात में बिजली कौंध जाती है ।

उपर्युक्त उदाहरणों में लोकोत्तर कल्पनाएं की गई हैं, जिनसे अतिशयोक्ति अलंकार की पुष्टि होती है ।

मृगावती

मृगावती की रचना कवि कुतुबन द्वारा सन् १५०३ ई० में हुई । यह उल्लेखनीय है कि ' चन्दायन ' की रचना के बाद दूसरी प्रेमाख्यानक काव्य कृति यही है जो उपलब्ध है । ' मृगावती ' का प्रथम सम्पादन डा० शिवगोपाल मिश्र ने सन् १९६४ ई० में किया ।[१] इधर डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने इसका एक संस्करण प्रकाशित किया है ।[२] इसमें कुल ४३२ कड़वक हैं ।

कथावस्तु

चन्द्रगिरि के राजा गणपति देव के पुत्र राजकुंवर को शिकार का बड़ा शौक था । एक दिन वन में एक सतरंगी मृगी को देख उसने अपना घोड़ा उसके पीछे दौड़ाया , मृगी भी वन में स्थित सरोवर में कूद पड़ी और अन्तर्धान हो गयी । राजकुंवर ने मृगी की बहुत खोज की , पर मृगी का कहीं पता नहीं चला ।

मृगी अर्थात् मृगावती पुनः अप्सराओं के साथ सरोवर पर स्नान करने आयी तब राजकुंवर ने उसके वस्त्र चुरा लिये । वस्त्र मांगने पर कुंवर ने उसे सादे वस्त्र दे दिये । दोनों महल में आये और विवाह कर सुखपूर्वक रहने लगे । मृगावती उड़ने की कला जानती थी । एक दिन राजकुंवर के न रहने पर उसने अपने वस्त्र खोज लिये और उड़ गयी । कुंवर वापस आया । मृगावती को न पाकर वह मूर्च्छित हो गया । एक दिन योगी का वेश धारण करके वह उसकी खोज में निकल पड़ा । रास्ते में उसने रुक्मिणी नामक सुन्दरी का उद्धार किया । रुक्मिणी के पिता ने प्रसन्न होकर राजकुंवर से उसकी शादी कर दी । अन्त में राजकुंवर उस नगर में पहुंचा जहाँ अपने पिता की मृत्यु के बाद मृगावती राज्य कर रही थी । राजकुंवर मृगावती के नगर में १२ वर्षों तक रहा । बाद में पिता द्वारा बुलाए जाने पर वह मृगावती को साथ चन्द्रगिरि वापस लौट आया । मार्ग में उसने रुक्मिणी को भी ले लिया । अन्त में सुखपूर्वक रहने के पश्चात् एक दिन आखेट के समय राजकुंवर हाथी से गिर कर मर गया । उसकी दोनों रानियाँ भी उसके साथ सती हो गयीं ।

इस प्रकार अन्तिम समय कथा समाप्त हो जाती है -

मिरगावति औ रुकमिनि दोऊ , जरि कुंवर के साथ ।
मदन मई जर तिल केक , किन्ह रहा न गात ।।[3]

<u>वस्तु विश्लेषण -</u>

मृगावती का कथानक लोकप्रसिद्ध प्रेम कथा पर ही आधारित है ।[4] कवि कुतुबन ने स्वयं इस बात की ओर संकेत करते हुए कहा है कि यह कथा पहले हिन्दुओं में प्रचलित थी और फिर उन (हिन्दुओं) से तुर्कों में प्रचलित हुई । इस रूपान्तरित कथा को लेकर मैंने मृगावती में शृंगार और वीर रसों के योग से यह कथा कही है -

पहले हिन्दुइ कथा अहै , फिन रे गान तुरकन ले गहर ।
फिन हम खोल अरथ सब कहा , जोग सिंगार वीर रस अहा ।।[5]

मृगावती का भी प्रारम्भ चार मित्रों , गुरु तथा राजा की प्रशंसा से हुआ है ।[6] कथा का संगठन सर्गबद्ध न होकर प्रसंगानुकूल शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है । राजकुंवर का घर छोड़ना , योगी वेश धारण करना , नाना संकटों का सामना करना , लक्ष्य प्राप्ति तथा मृत्यु आदि विभिन्न ऐसी अवस्थाएं हैं जिनसे होकर कथा एवं कथानक की गति मिलती है ।

काव्य में राजकुंवर का बहुपत्नीत्व दिखाने वाला है । राजकुंवर की अनिच्छा होते हुए भी रुक्मिणी के साथ उसका विवाह होता है किन्तु अन्त तक राजकुंवर ' मृगावती ' को ही सर्वोपरि मानता है और उसी से कनेराय तथा राजमन दो पुत्र भी होते हैं ।

कुतुबन ने ' मृगावती ' की रचना विधान में अनेक पौराणिक कथा प्रसंगों का उपयोग किया है , जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में उन कथाओं का अत्यधिक प्रचार था -

सागर मंथन - जहाँ सौ जस थिंह सागर मंथा ।[7]
नृसिंहावतार - जसै सिंह हरनाकुस मारा ।[8]
श्रवण तथा उसके माता-पिता - जस अन्धा अन्धी बिनु सरवन , कौकरि मुए बिललाइ ।[9]

कुतुबन ने मृगावती में रामायण की घटनाओं का भी स्पष्ट उल्लेख किया है । कुछ उदाहरण देखिये -

आनि मई जस राम कही का ।[10]
राम लखन जस सीता ठाऊँ ।[11]
जस बनिबास्त राम कै आवा ।[12]

दशरथ पुत्र वियोग - पुत्र वियोग दशरथ जस कीन्हा ।[13]
सीता हरण - रावन हरी राम घर सीता ।[14]
बाली वध - जसै राम मैं मारेउ बारी ।[15]
लंका दहन - हनुमंत जिय लागि जारहि लंका ।[16]
रावण वध - रावन मार लिय है आवा ।[17]

और अन्त में दोनों रानियों का सती हो जाना तत्कालीन प्रथा की ओर संकेत करता है ।

कुतुबन ने " मृगावती " में परीक्षा-कथा की ओर संकेत करते हुए उसकी मार्ग की सात मंजिलों का भी उल्लेख किया है ।

आधिकारिक कथा नायक राजकुंवर तथा नायिका मृगावती से सम्बन्धित है । राजकुंवर तथा रुक्मिणी की कथा काव्य में प्रसंग रूप में आई है । इसके अतिरिक्त षड्ऋतु वर्णन , मृगावती का नखशिख वर्णन , मानव सौन्दर्य-वर्णन आदि काव्य के ऐसे अंग हैं जिनके समावेश से काव्य में विविधता आ गई है जो मसनवी की प्रबन्धात्मक शैली के अनुरूप है ।

प्रमुख पात्र और चरित्रांकन

उपलब्ध सामग्री के आधार पर " मृगावती " में निम्न पात्रों का उल्लेख मिलता है -

१- चन्द्रगिरि का राजा " गणपतिदेव " ।
२- राजा का पुत्र " राजकुंवर " ।
३- राजकुंवर को पालने वाली मातृ तुल्य " धाय " ।
४- कंचन नगर के राजा रूपमुरारी की पुत्री " मृगावती " ।
५- सुबुध्या के राजा देवराय की कन्या " रुक्मिणी " ।
६- बंकर बरवाला " गड़रिया " जो छल करके योगी वेश में राजकुंवर को मारना चाहता है ।
७- दूत " जंगम " जो राजकुंवर को कंचनपुर की राह बताता है ।
८- " राक्षस " जो राजकुंवर को आकाश में ले जाकर मार डालना चाहता है ।
९- " दुर्लभ " ब्राह्मण जिसे राजकुंवर के पिता ने राजकुंवर को कंचनपुर से लिवा लाने के लिये भेजा था ।
१०- " कनकराय " और " राजकानार " राजकुंवर के दो पुत्र ।
११- " दैत्य " जो रुक्मिणी को बंदी बना लेता है ।

परन्तु नायक रूप में " राजकुंवर " और नायिका रूप में " मृगावती " को दो मुख्य रूप से चित्रित किया गया है ।

राजकुंवर -

ईश्वर की कृपा से राजा गणपति देव को राजकुंवर नामक पुत्र उत्पन्न होता है तो राजा के हर्ष का पारावार नहीं रहता । वयस्क होने पर एक दिन राजकुंवर हरिणी रूप में " मृगावती " को देखकर उस पर मोहित हो उससे अगाध प्रेम करने लगता है परन्तु जब राजकुंवर को छोड़कर मृगावती उड़ जाती है तो राजकुंवर

की चमत्कार और फंदों जानवरों का भी भय नहीं रह जाता । वह निर्भय होकर योगी रूप धारण कर " मृगावती " की खोज में तत्पर हो जाता है । मृगावती को पाने के लिये वह सारी [illegible] सहने के लिये तैयार हो जाता है ।

मृगावती से राजकुंवर का मिलन होने पर उससे अपनी प्रेमकथा सुनाते हुए कहता है , " मैं अहर्निश तेरा ही स्मरण करता रहा । तेरे गुण मेरे हृदय में इस प्रकार से घर कर गये जिस प्रकार बनाया हुआ चित्र अमिट हो जाता है । तेरे नाम की माला में रात दिन जपता रहा । तेरे लिये ही मैं भिखारी बनकर निकला ।"[९८]

एक बार मृगावती से मिलन होने पर पुनः " मृगावती " के उड़ जाने पर राजकुंवर रुदन करता हुआ यही कहता है कि " हे ईश्वर ! मेरे साथी को इस प्रकार मुझसे क्यों बिलग किया । हे ईश्वर ! मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था ।" जब समुद्र में राजकुंवर की नाव मझधार लहरों में फंस जाती है तो रक्षा हेतु ईश्वर का स्मरण करते हुए योगी राजकुंवर कहता है - " हे विधाता ! तुम्हें छोड़कर और किससे प्रार्थना करूं । जो तुम्हें छोड़कर दूसरे का पूजा करता है , कोटि जन्म तक गति नहीं पाता ।"[९९]

इस प्रकार राजकुंवर विभिन्न कठिनाइयों को झेलता हुआ अन्त में अपनी प्रेयसी (मृगावती) से मिलकर सुखमय जीवन व्यतीत करता है ।

मृगावती -

कंचन नगर के राजा रूपमुरारी की पुत्री मृगावती राजकुंवर से अगाध प्रेम करती है । जब योगी रूप में कुंवर मृगावती के दरबार में पहुंचता है तो प्रथम दृष्टि पर ही वह राजकुंवर को पहचान लेती है , किन्तु वह अपनी कोमल भावना को प्रकट नहीं होने देती , जो मृगावती के विवेक तथा चतुराई का व्यावहारिक प्रमाण है ।

कवि ने नारी के आदर्श रूप में रुक्मिणी का भी उल्लेख किया है । यद्यपि राजकुंवर मृगावती के प्रेम के आगे रुक्मिणी को उतनी मान्यता नहीं देता फिर भी रुक्मिणी राजकुंवर को ही अपना सर्वस्व मानती है । मृगावती की खोज में राजकुंवर के योगी हो जाने पर रुक्मिणी उसके वियोग में संतप्त रहती है । और अपने खिन्न मन की परित्यक्ता होने के कारण , अकुलाती हुई कहती है कि " न जाने मेरे पिता को क्या सूझा कि मुझे जोगिया कुंए में गिरा दिया । जोगी जो मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया । मैं अब पति के ऊपर अपने प्राण दे दूंगी ।[20] इतना ही नहीं " सौत " किसी भी स्त्री को नहीं भाती , फिर भी वह मृगावती के साथ हिलमिल रहकर जीवन बिताती है । और अन्त में राजकुंवर की मृत्यु होने पर उसी के साथ जल जाती है ।

<u>रस-तत्व -</u>

शृंगार रस ही सभी प्रेमाख्यानकों का प्राण है । " मृगावती " में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सम्यक् निरूपण मिलता है ।

<u>संयोग शृंगार -</u>

" मृगावती " में संयोग शृंगार का वर्णन सर्वप्रथम उस समय होता है जब कि मृगावती राजकुंवर के समक्ष पूर्ण आत्म-समर्पण करती है , " मैं तुम्हारी सभी प्रकार से दासी हूं , तुम्हारी सभी आज्ञाओं की पालिका हूं । तुम वैद्य हो तो मैं रोगी , तुम गुरु गोरखनाथ , तो मैं चेला ।[21] दूसरी बार संयोग की अभिव्यंजना उस समय होती है जब कंचनपुर में राजकुंवर मृगावती के साथ विवाह कर आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है ।

कुंवर कहा अब और न मानूं , सोइ जोग हूं आपन जानूं ।[22]

इसके बाद संयोग का जो वर्णन कुतुबन ने किया है , वह वर्णनातीत है -

शान्त रस

कुंअर की मृत्यु पर संसार की असारता

> जौ सिरजा मरिबै कहुं आवा । सो कछु जो नहिं काल खावा ।
> मुये बाजु कोई ना रहई । सो झूठा जो बोलन कहई ।
> कहाँ सो कलौ निधि सायर भया । कहं सो कुंअराव है गया ॥

प्रेम की निन्दा -

> प्रेम किये दुख पाइये , प्रेम न करियो कोइ ।
> जो सुख चाहै प्रेम कर , दुखिया करियै सोइ ॥[४२]

इस प्रकार मृगावती शृंगार प्रधान प्रेमकाव्य होते हुए भी उसमें अन्य रसों का सुन्दर परिपाक मिलता है ।

अलंकरण-शिल्प -

कवि कुतुबन ने स्वरूप-बोधन हेतु तथा भावाभिव्यंजना को अधिक तीव्र बनाने के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है ।

शब्दालंकारों में विशेषतः ' अनुप्रास ' मृगावती में अपने चरम वैभव पर द्रष्टव्य है -

> कुंवरि कहो कस तोरिन मानी ।[४३]

आध्यात्मिकता -

सूफी प्रेमाख्यान मृगावती में मृगावती को ब्रह्म का , राजकुंवर को भक्तात्मा का प्रतीक मानकर दोनों के मिलन को आत्मा-परमात्मा का मिलन बताया है ।

सूफी प्रेम साधना की आध्यात्मिक यात्रा में नासूत[1], मलकूत[2], जबरूत[4] और लाहूत सामान्यतः चार सोपान माने जाते हैं।

राजकुंवर तथा मृगावती की भेंट " नासूत " की स्थिति, मृगावती के दर्शन के उपरान्त राजकुंवर के जीवन में एक निष्ठा, त्याग तथा संयम का समावेश हो जाता है और वह योगी हो जाता है। साधना की यह स्थिति " मलकूत " कहलाती है और " जबरूत " की स्थिति तब कही जा सकती है, जब राजकुंवर मृगावती की खोज में कंचनपुर पहुंच जाता है तथा सिंहासनारूढ़ मृगावती से मिलन आध्यात्मिक यात्रा की अन्तिम अवस्था " लाहूत " कहलाती है।

इसी प्रकार रामपूजन तिवारी ने " सातौं पवंरि नांघि जौ आवा। फेरि फेरि सातउ भावा। " पंक्ति में सूफी मार्ग की सात मंजिलों : उबूदियत, इश्क, जुहद, मारिफत, वज्द, हकीकत और वस्ल : का उल्लेख किया है।

पद्मावत -

प्रेमाख्यानों की परम्परा में पद्मावत सर्वाधिक प्रौढ़ और सरस काव्य है। इसकी रचना मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा १५४० ई० में हुई। पद्मावत को हम केवल एक सफल प्रेमाख्यान मात्र ही नहीं कह सकते, इसे एक उत्कृष्ट महाकाव्य तक ठहरा सकते हैं। इसमें न केवल कथोपकथन सांगोपांग वर्णन और प्रेमात्मक इतिवृत्त की रोचकता है, अपितु गम्भीर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति, उदात्त चरित्रों का विशद् चित्रण तथा एक आदर्श रचना की सोद्देश्यता भी कम नहीं है।[1]

पद्मावत में रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम कथा वर्णित है। नागमती प्रधान नायिका होकर भी उपनायिका बन जाती है।

रत्नसेन और पद्मावती के माध्यम से जायसी ने उस आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया है जो सूफी साधना का प्राण है।

प्रेमाख्यानकों में पद्मावत की कथावस्तु उसकी वर्णन शैली तथा अनुभूति मात्रा अनूठी है। अपनी काव्य ग्रन्थों में जो आदर तुलसीकृत " रामचरित मानस " का है उससे कम आदर जायसी कृत पद्मावत का नहीं। " पद्मावत " केवल प्रेमकथा ही नहीं वह सूफी साधना-परक अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ भी है।

कथावस्तु -

जायसी के शब्दों में पद्मावत की कथावस्तु निम्नलिखित है -

सिंहलदीप पदुमिनी रानी। रतनसेनि चितउर गढ़ आनी।
अलाउदी दिल्ली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू।।
सुना साहि गढ़ छेका आई। हिन्दू तुरुकहिं भई लराई।।
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै।।[2]

पद्मावत में कथावस्तु का सुन्दर संगठन पाया जाता है। सम्पूर्ण कथावस्तु दो घटना चक्रों में विभाजित है। कथा का पूर्वार्द्ध राजा रत्नसेन द्वारा पद्मावती के लिये योगी बनकर यात्रा करने से आरम्भ होकर उसे प्राप्त कर चित्तौड़ लौटने तथा उसके साथ भोग-विलास करने लगने तक समाप्त हो जाता है, जहाँ कथा के उत्तरार्द्ध भाग का आरम्भ सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा उस रूपवती के लिये युद्ध छेड़ने से होता है और अन्त तक उसे न पा सकने एवं उसके अपने पति के साथ जलकर भस्म हो जाने तक की घटनाओं के साथ सुल्तान के पश्चाताप से समाप्त हो जाता है। रचना का वास्तविक उद्देश्य प्रेम एवं विरह का सूफी मतानुसार निरूपण तथा उसी प्रकार प्रेम-साधना का सम्यक् प्रतिपादन करना जान पड़ता है, जिसके लिए जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम-कहानी को माध्यम बनाकर उसे अपने ढंग से कहा है।

कवि की निश्छल भावुकता, सहृदयता और समन्वयात्मक प्रवृत्ति के कारण इसके अनेक स्थल अत्यन्त आकर्षक बन गये हैं। उसकी प्रबोधात्मक वर्णन शैली ने इसमें एक विचित्र रोचकता ला दी है। इसके अतिरिक्त रूपवर्णन, प्रकृति-चित्रण, हिन्दू त्योहारों, विवाह, प्रचलित प्रथाओं तथा नख-शिख आदि का वर्णन कवि ने बड़ी सफलता से किया है।

<u>वस्तु विश्लेषण</u> -

जायसी ने अपनी प्रेम-कहानी का कथानक राजस्थान के इतिहास से लिया है।[3] ग्रन्थ के प्रारम्भ में मसनवी परम्परा के अनुसार कवि ने -

१- <u>संसार की उत्पत्ति</u> - संवरौं आदि एक करतारू। जेइं जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।

२- <u>उनके चारों मित्रों</u> - अबूबक्र, उमर, उस्मान और अली की प्रशंसा -

अबाबकर सिद्दीक सयाने। पहिलें सिदिक दीन ओइ आने।
पुनि सो 'उमर' खिताब सुहाए। भा जग अदल दीन जो आए।।
पुनि उसमान पंडित बड़ गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी।
चौथे अली सिंघ बरियारू। सौंह न कोउ रहा जुझारू।।[4]

३- <u>शाहेवक्त का गुणगान</u> -

सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।[6]

४- <u>गुरु परम्परा की चर्चा एवं स्तुति</u> -

सैयद असरफ पीर पियारा। जिन्ह मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।[7]

साथ ही साथ कवि अपना वंश-परिचय देते हुए अन्त में अपने चारों मित्रों की प्रशंसा करता है और ग्रन्थ का रचनाकाल भी बताता है -

एक नैन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ बिमोहा जेइं कवि सुनी।[8]

चारि मीत कवि मुहम्मद पाए । जोरि मिताई सरि पहुँचाए ।
यूसुफ मलिक पंडित औ ग्यानी । पहिलैं भेद बात उन्ह जानी ।
पुनि सलार कादिर मति माहाँ । खाँडै दान उभै निति बाहाँ ।
मियाँ सलोने सिंघ अपारू । बीर खेत रन खरग जुझारू ।
सेख बड़े बड़ सिद्ध बखाने । कह अदेस सिद्धन्ह बड़ माने ।[9]
सन नौ सै सैंतालिस अहै । कथा अरंभ बैन कवि कहै ।[10]

मसनवी शैली के प्रभाव के कारण पद्मावत की कथा सर्गबद्ध न होकर घटनाओं , घटनास्थलों एवं पात्रों के आधार पर ५८ खण्डों में विभक्त है ।

रत्नसेन और पद्मावती की कथा आधिकारिक कथा है । अनेक प्रासंगिक कथाएं कथा को गति प्रदान करती हैं । जायसी ने सम्पूर्ण कथा को आध्यात्मिक रूप में ढाला है । चौदह भुवन मनुष्य के शरीर में ही हैं अतः पिंड में ही ब्रह्माण्ड है । कथा में चित्तौड़ शरीर है , एवं रत्नसेन मन , सिंहल हृदय , पद्मावती बुद्धि हीरामन तोता गुरु , नागमती प्रपंच राघव चेतन शैतान और अलाउद्दीन माया है -

मैं यह अरथ पंडितन्ह बूझा । कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ।
चौदह भुवन जो तर उपराहीं । ते सब मानुष के घट माहीं ।
तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल बुधि पदुमिनि चीन्हा ।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।
नागमती यह दुनिया धंधा । बाँचा सोइ न एहि चित बंधा ।
राघव दूत सोइ सैतानू । माया अलाउदीं सुलतानू ।[11]

रत्नसेन पद्मावती तक पहुंचने वाला प्रेम मार्ग जीवात्मा को परमात्मा में ही मिलाने वाला प्रेम पंथ का लौकिक रूप है । प्रेम मार्ग की कठिनाइयां साधारणतः नायक के लौकिक बन्धन हैं । उनसे मुक्ति पाने पर ही नायक रूपी जीव और नायिका रूपी ब्रह्म का एकीकरण सम्भव है ।

राघव चेतन के रूप में शैतान की कल्पना सूफी सिद्धान्तों के पूर्णत: अनुरूप है । हठ योगियों , रसायनी सिद्धों तथा नाथ योगियों की साधना का भी काव्य में पूर्ण समावेश मिलता है ।[१२]

<u>प्रमुख पात्र और चरित्रांकन -</u>

पद्मावत नायिका प्रधान काव्य है । नायिका की प्राप्ति के लिये किये गये कार्यों का कर्ता रत्नसेन काव्य का नायक है । इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण पात्रों में नागमती , अलाउद्दीन गोरा-बादल तथा राघवचेतन आदि हैं । तथा गौण पात्रों के रूप में रत्नसेन और बादल की माता , बादल की पत्नी , देवपाल और उसकी कुटनी आदि का उल्लेख मिलता है ।

<u>रत्नसेन -</u>

पद्मावत का नायक राजा रत्नसेन धीरोदात्त नायक होने के साथ ही एक सच्चा प्रेमी भी है । हीरामन तोते के द्वारा पद्मावती के अप्रतिम रूप का गुणगान सुनते ही वह मूर्च्छित हो जाता है । और उसकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय करके राजपाट घरणि , धन , धाम सभी छोड़कर चल पड़ता है । कठिन परिस्थितियों और महान विपदाओं का सामना करता हुआ वह दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है ।

अलाउद्दीन जैसे शत्रु की चालों के विरुद्ध गोरा-बादल द्वारा सचेत किये जाने पर भी वह अलाउद्दीन पर शंका नहीं करता और उसे स्वागतार्थ गढ़ के बाहर पहुंचाने जाता है । काव्य के उत्तरार्ध में रत्नसेन का चरित्र चारित्रिक विशिष्टताओं को लिए हुए है । क्षत्रिय राजाओं में प्रतिशोध की भावना प्रबल होती है , वह अपना अपमान कभी सहन नहीं कर पाते । यही गुण रत्नसेन में भी पाया जाता है । देवपाल की दुष्टता को सुनकर वह तत्काल प्रतिशोध लेने के लिए उतावला हो जाता

है । और उस पर आक्रमण करता है । यहाँ रत्नसेन का चरित्र मनोविज्ञान की भूमिका स्पष्ट करता है ।[23] यह एक सच्चे राजपूत की भाँति आन की रक्षा के लिए मर मिटने के लिए तैयार होना भी जानता है ।

इस प्रकार ग्रन्थ के अन्त में रत्नसेन का चरित्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है और अन्त में एक महान योद्धा की भाँति युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दे देता है ।

<u>पद्मावती</u> -

प्रथमतः रत्नसेन की प्रिया तत्पश्चात् उसकी पत्नी पद्मावती सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री है । सम्पूर्ण संसार में उसी परम सौन्दर्य का ही सौन्दर्य व्याप्त है -

उन्ह बानन्ह अस को न मारा । बेधि रहा सगरौं संसारा ।
गगन नखत जस जाहिं न गने । ई सब बान ओहि के हने ।।[24]

उसके इस अनुपम सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा सुनकर जम्बूद्वीप के वर उसके लिए आते हैं किन्तु निराश होकर लौट जाते हैं । तदनुसार हीरामन तोते के मुख उसके नख-शिख का वर्णन सुनते ही राजा रत्नसेन भी मूर्च्छित हो जाता है । दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देखकर उसकी ज्योति द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसकी प्राप्ति के लिए भीषण युद्ध तक छेड़ता है ।

पद्मावती एक आदर्श प्रेमिका भी है , जो अपने पति का वियोग न सह सकने के कारण दुःखिनी बन जाती है । रत्नसेन के लिए सूली की आज्ञा सुना दिये जाने पर वह उसे सन्देशा भेजती है , " मत समझना कि मैं तुमसे दूर हूं , जब सूली मेरे

पद्मावती एक राजपूत महिला होने के कारण " सती रूप में वह प्रज्वलित हो पति के शव के साथ सती हो जाती है , जो उसके चरित्र की उज्ज्वलता , महानता , शुद्धाचरण और पति परायणता का पूर्ण प्रमाण है ।

नागमती -

नागमती काव्य की उपनायिका है । उपनायिका होने के कारण सुए के मुख से सिंहल की रानी पद्मावती की प्रशंसा स्वभावतः उसे अच्छी नहीं लगती और उसे डर है कि कहीं वह पक्षी उसके पति से ऐसी बातें कहकर उसका चित्त फेरे और दे फेर न दे , वह उस सुए का नाश कर देने पर तुल जाती है । पति रत्नसेन जब पद्मावती की खोज में योगी रूप धारण कर घर से निकल पड़ता है तो नागमती भी साथ चलने का आग्रह करती है । पति को योगी बना देख उसका पातिव्रत्य जाग उठता है , वह भी पति के साथ योगिनी बनना चाहती है -

रोवहिं नागमती रनिवासू । केइ तुम्ह कन्त दीन्ह बनवासू ।
अब को हमहिं करिहि भोगिनी । हमहुं साथ होब जोगिनी ।[६८]

किन्तु वह साथ नहीं जा पाती और विरह में भी अपने को सम्भाली रहती है परन्तु वह यह कहना नहीं भूलती कि " चाहे पद्मिनी रूप में कितनी ही सुन्दर हो हमसे बढ़कर और कोई भी रूपवती नहीं है " और वह अन्यत्र स्वयं पद्मावती से भी कहती है " मैं सारे संसार का सिंगार मांग चुकी हूं । मैं रानी हूं और मेरे प्रियतम : रत्नसेन : राजा हैं तेरे लिए तो वह केवल योगी और नाथ ही हैं ।"[६९]

नागमती पति परायणा हिन्दू रमणी है यह बात उसके रोम-रोम से फूट निकलती प्रतीत होती है , जब वह एक विरहिणी के रूप में सभी मनुष्यों से पूछकर हार जाती है । और उसे प्रियतम का कोई पता नहीं चलता तो वह विक्षिप्त सी होकर पशु पक्षियों तक से अपने पति के विषय में पूछने लगती है और निरन्तर उसके शुभ कल्याण की कामना करती रहती है ।

नागमती सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव भी मन में लिए हुए है। जैसा कि निम्न पंक्ति से स्पष्ट होता है -

" रहु आपनि तू बारी, मोसौं जूझु न बाजु " ।[31]

अन्त में नागमती पति राजा रत्नसेन की मृत्यु हो जाने पर सपत्नी पद्मावती के प्रति भेदभाव भुलाकर उसके साथ बैठ कर सती हो जाती है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में " पति परायणा नागमती यावत्काल में अपनी प्रेम ज्योति से गृह को आलोकित करके अन्त में सती की दिव्य-व्यापिनी प्रभा से चमक कर इस लोक से अदृश्य हो जाती है।"[32]

<u>अलाउद्दीन -</u>

पद्मावत में अलाउद्दीन को एक लोभी, कामी, युद्ध प्रवीण व कपटी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वह दिल्ली का बादशाह है और विलासिता का जीवन व्यतीत करता है। राघवचेतन द्वारा उस परम सुन्दरी पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य की प्रशंसा सुनते ही उसे मूर्च्छा आ जाती है, वह पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चित्तौड़ में दूत भेज देता है। और एक पत्र में लिख भेजता है " सिंहल की जो पद्मिनी तुम्हारे पास है, उसे मैं शीघ्र यहाँ चाहता हूं।"[33] राजा रत्नसेन के उसे अस्वीकार कर देने पर वह चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर देता है किन्तु जब वह चित्तौड़ देखते समय पद्मावती का प्रतिबिम्ब दर्पण में देख लेता है और बेसुध हो जाता है तो उसे छल करने की सूझती है और वहाँ से चलते समय पहुंचाने आये रत्नसेन को दुर्ग के द्वार पर ही बन्दी कर लेता है। और उसे अपने यहाँ लाकर उसे लोहे की बेड़िया तक पहना देता है। वह अपनी दासी द्वारा पद्मावती को बहकाने की भी चेष्टा करता

है किन्तु सफल नहीं हो पाता। अन्त में रत्नसेन की मृत्यु हो जाने पर चित्तौड़ पहुंचता है तो देखता है कि वह रानी पद्मावती सती हो चुकी है और वहां की राख ही हाथ लगती है। इस प्रकार पद्मावत में जायसी ने अलाउद्दीन को ऐश्वर्यशाली किन्तु परनारी लोलुप के रूप में चित्रित किया है।

गोरा-बादल

गोरा और बादल राजा रत्नसेन के दरबार के प्रमुख वीरों में से हैं और राजा की दोनों भुजाओं के समान थे। सन्धि करने आये बादशाह अलाउद्दीन के व्यवहार में उन्हें छल-कपट का सन्देह होता है और वे रत्नसेन से भी कहते हैं किन्तु रत्नसेन उनकी बात नहीं सुनते और शिष्टाचार की बातें करने लगते हैं। इससे उनके मान को ठेस लगती है। और वे दरबार छोड़कर चले जाते हैं किन्तु जब राजा के बन्दी हो जाने पर दुःखित हो पद्मावती उनके द्वार पर स्वयं पहुंची तो उन्होंने श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका स्वागत किया और कहने लगे " आज गंगा की धार उलटी बहने लगी है, सेवक के द्वार पर कभी रानी नहीं आया करती। ऐसा कष्ट क्यों किया। शीघ्र ही आज्ञा करें, हमारे प्राण आपके कार्य के लिए समर्पित हैं।"[२४] पद्मावती की बातें सुनकर दोनों ही क्रुद्ध हो उठते हैं -

गोरा बादल दोउ पसीजे, रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे।[२५]

राजा के छुड़ाने का इतना दृढ़ संकल्प कर लेते हैं कि बादल अपनी मां के अनुरोध की कुछ भी परवाह नहीं करता। अपनी गौने में आयी हुई नव-वधू के आग्रह को भी अनसुनी कर देता है। उसका स्पर्श तक नहीं करता। उसके जीवन में कर्तव्य की भावना ही प्रधान है, तभी तो बादल की नवागता पत्नी भी उसे रोक नहीं सकती। दोनों वीर एक अनुपम योजना के अनुसार " डोलों की पंक्ति " तैयार करते

हैं। गोरा कन्यागृह के संरक्षक को एक लाख टके भेंट करके अनुमति मंगवा लेता है और राजा मुक्त होकर बादल के साथ चित्तौड़गढ़ पहुंच जाता है। गोरा वृद्ध होने पर भी युद्ध में वीरता दिखाता है और लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त हो जाता है। रत्नसेन की मृत्यु हो जाने पर दोनों रानियों के सती हो जाने पर अलाउद्दीन फिर गढ़ पर धावा बोलता है तो बादल भी चित्तौड़गढ़ की रक्षा में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है।

इस प्रकार गोरा और बादल दोनों में ही वीरता कूट-कूट कर भरी हुई है और दोनों ही के चरित्र में आदर्श क्षत्रिय युवकों के आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है।

<u>राघव चेतन</u> -

राघव चेतन राजा रत्नसेन के दरबार में एक अत्यन्त निपुण पण्डित के रूप में आता दिखाई पड़ता है। एक दिन " अमावस " रहती है। राजा के पूछने पर कि " दोयज कब होगी " राघव के मुख से " आज " है , निकल जाता है और अन्य पण्डित इसके प्रतिवाद में " कल है " कहते हैं। राघव चेतन " इष्ट यक्षिणी " के बल से अपने कथन की पुष्टि कर दिखाता है जो बात पीछे वास्तविक " दोयज " के आ जाने पर असिद्ध ठहर जाती है , फलतः राजा इस पर क्रुद्ध होकर राघव चेतन को देश निकाले की आज्ञा दे देते हैं।

पद्मावत का राघव चेतन एक गुणी व्यक्ति होने के साथ-साथ वह क्रूर प्रकृति का व्यक्ति भी है। किसी भी कार्य को करने से चूकता नहीं है। वह अपनी चाह पाने के लिए वही करता और कहता है जो अन्य व्यक्तियों के प्रतिकूल होता है , जिसके दरबार में रहकर जीवन व्यतीत किया , सुख भोगा , उसी को

वह नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है और करता भी है , यह उसका कुत्सित रूप ही है ।[२६] अपनी प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति के कारण वह राजवंश के नष्ट हो जाने तथा विधर्मियों की शक्ति में वृद्धि आ जाने की ओर तनिक ध्यान नहीं देता ।

वस्तुत: राघव चेतन का चरित्र षडयंत्र , छद्मनीति और कुत्सितता से पूर्ण है ।

<u>रस-तत्व -</u>

पद्मावत शृंगार प्रधान प्रेमकाव्य है जिसमें दांपत्य प्रेम का आविर्भाव रूप , गुण श्रवण से आरम्भ होता है । नायक रत्नसेन एवं नायिका पद्मावती दोनों ही एक दूसरे के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुनकर आकृष्ट होते हैं । शृंगार प्रधान काव्य होने के कारण पद्मावत में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर परिपाक मिलता है ।

<u>संयोग-शृंगार -</u>

पद्मावत में संयोग का चित्रण दो प्रकार के आलम्बनों को लेकर किया गया है - नागमती और रत्नसेन , पद्मावती और रत्नसेन ।

नागमती को रत्नसेन की प्राप्ति हो थी , अत: काव्य में नागमती और रत्नसेन के संयोग का चित्रण कुछ ही स्थलों पर मिलता है - सिंहल द्वीप से लौटने पर दिन भर की व्यस्तता के बाद रात्रि में ही मिलन सम्भव होने पर नागमती मान करती हुई कहती है -

" तु जोगी होइगा बैरागी । हौं जरि छार भइउँ तोहि लागी ।"[२७]

किन्तु इस समय के वर्णन को हम पूर्ण संयोग नहीं कह सकते यह रसाभास मात्र ही है क्योंकि इसमें अधिकांशत: नागमती द्वारा मान-प्रदर्शन और उपालम्भों के प्रति

संयोग शृंगार को उद्दीपन की दृष्टि से षट्ऋतु वर्णन किया गया है, जिसमें संयोग सुख की नाना अनुभूतियों का चित्रण किया गया है। अनुभावों के अन्तर्गत कायिक और मानसिक अनुभावों का समन्वित चित्रण किया गया है। और संचारी भावों के रूप में संयोगानुभूतियों का स्मरण किया गया है।

<u>वियोग-शृंगार -</u>

विरह प्रेम की कसौटी है जिसमें अनुभूति की गहनता का पता चलता है। सूफी कवियों ने भी संयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक महत्त्व दिया है। अतएव विप्रलम्भ शृंगार ही " पद्मावत " में प्रधान है।[32] विप्रलम्भ के अन्तर्गत पद्मावती से मिलने से पूर्व ही हीरामन तोते द्वारा उसके रूप की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन के हृदय में वियोग की भावना का चित्रण उधर पद्मावती में रत्नसेन से मिलने के पूर्व प्रेमभावना का अंकुरित होना " पूर्वानुराग " का सुन्दर उदाहरण है। नागमती का विरह प्रियतम रत्नसेन के " प्रवास " से आरम्भ होता है।

पद्मावत में रत्नसेन पद्मावती और नागमती के विरह-वर्णन में पद्मावती और नागमती के विरह को अधिक महत्त्व दिया गया है, किन्तु उत्कृष्टता नागमती के विरह-वर्णन में ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि, " नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।[33] " नागमती वियोग खण्ड " और षट्ऋतु खण्ड तो मानों विरह का अपार-सागर ही है, जहाँ वेदना की शाश्वत लहरों का अनन्त हाहाकार सुनाई पड़ता है। प्रिय के संयोग में जो प्रेम सब वस्तुओं से आनन्द का संग्रह करता है वही वियोग की दशा में उन्हीं वस्तुओं से दुख का संग्रह करने लगता है।[34] प्रिय के वियोग में सारी ऋतुएं काटने को दौड़ती हैं। नागमती के विरह जन्य दुख और ताप का प्रतिबिम्ब प्रकृति में भी देखने को मिलता है -

कुहुकि कुहुकि जस कोयल रोई। रकत आंसु घुंघची बन बोई।।
जहं जहं ठाढ़ि बनबासी। तहं-तहं होइ घुंघचि के रासी।।[35]

विरह की मार्मिकता से प्रकृति भी दुखी दिखाई पड़ती है । पेड़ पौधे सब मुरझाए पड़े हैं -

रोवहि दुख भर पखारु निपाति । लोहू बूड़ि उठे होइ राती ।।
राती बिंब भीजि तेहि लोहू । परवर पाक फाट हिय गोहूं ।।[34]

नागमती का " बारहमासा " विरह वेदना की प्रभविष्णुता मार्मिकता कोमलता मधुरता , प्रकृति व्यापारों के साथ तादात्म्यता कृत्रिमता प्रांजलता और सर्वोपरि उसकी व्यंजकता के दृष्टिकोणों से हिन्दी साहित्य में एक महार्घ रत्न है -

" बरसै मेह चुवै नैनाहा । छपर-छपर होइ रहि बिनु नाहा । "
" पुष्य नखत सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नाह मंदिर को छावा ।"
" जग जल बूड़ि जहां लगि ताकी । मोरि नाव खेवक बिनु थाकी । "
" कातिक सरद चन्द उजियारी । जग सीतल हौं बिरहै जारी ।[35]" आदि

नागमती के अतिरिक्त काव्य में रत्नसेन और पद्मावती के विरह ताप को भी प्रधानता मिली है ।

पद्मावती से मिलने से पूर्व हीरामन सुए के द्वारा उसके रूप की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन की विरहाग्नि जागने लगती है । सिंहलद्वीप पहुंचने पर उसकी विरहाग्नि और अधिक तीव्र हो जाती है -

राजा रहा तैस तपि झूरा । जा धरि बिरह छार करि कूरा ।[38]

और वह प्रलाप करते हुए कहता है -

औ मछिन्द्र किमनाथो देवा । कहा मैं आय कीन्हि तोरि सेवा ।[39]

ठीक इसी प्रकार पद्मावती भी प्रिय के वियोग में उद्विग्न होती है और नींद भी खो बैठती है । -

नींद न परै रैनि जौं आवा । सेज केवाँछ जानु कोइ लावा ।।[40]

विरहाग्नि के कारण उसका सारा शरीर जल रहा है -

जोबन चांद जो चौदसि करा । विरह के चिनगि चांद पुनि जरा ।।[४१]

भारतीय आचार्यों ने विप्रलम्भ शृंगार की ग्यारह काम दशाएं अभिलाषा , चिन्ता , स्मृति , गुणकथन , उद्वेग , प्रलाप , उन्माद , व्याधि , जड़ता , मूर्च्छा और मरण आदि मानी है । पद्मावत में इसके उदाहरण द्रष्टव्य है -

अभिलाषा -

विरही व्यक्ति अपने प्रिय से मिलन की निशिदिन " अभिलाषा " करता है । नागमती की भी यही दशा है -

रातिहु देवस इहै मन मोरें । लागौं कंत धार जेउं तोरें ।।[४२]

चिन्ता -

विरहावस्था में विरह व्यथित अनेक चिन्ताएं विरही के मन में उत्पन्न होती है । नागमती की " चिन्ता " कितनी स्वाभाविक है -

नागमती चितउर पंथ हेरा । पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा ।[४३]

स्मृति -

विरह व्याकुल हृदय को प्रिय के संयोग की सुखद स्मृतियां व्याकुल करती रहती हैं -

सरवर संवरि हंस चलि आए । सारस कुरलहिं खंजन देखाए ।।[४४]

गुण-कथन -

प्रिय के गुणों की चर्चा द्वारा विरहिणी अपनी मनःस्थिति का उल्लेख करती है ।[४५] : बारहमासा वर्णन :

बिरह का तस लाग न डोला । रकत पसीजि भीजि गई चोला ।।[50]

<u>मरण</u> -

रकत ढरा आंसू गरा, हाड़ भये सब संख ।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख ।।[51]

पद्मावत में विरह के आलम्बन दो प्रकार के हैं -

१- रत्नसेन और पद्मावती ।

२- रत्नसेन और नागमती ।

उद्दीपन रूप में बारहमासा वर्णन किया गया है ।

<u>करुण-रस</u> -

सुआ के उड़ने पर रानी का दुखी होना, रत्नसेन के योगी होने पर माँ का विलाप, समुद्र में बह जाने पर पद्मावती का रुदन, कुमुदिनि से पद्मावती का अपनी व्यथा कहना, गोरा-बादल से पद्मावती का कथन तथा चिता की ओर पद्मावती का प्रस्थान आदि प्रसंगों में करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । कुछ उदाहरण देखिये -

सुआ के उड़ जाने पर पद्मावती का दुखी होना -

सुआ जो उतर देत सा पूछा । उड़िगा पिंजर न बोलै छूंछा ।
रानी सुना सुख सब गयऊ । जनु निसि परी अस्त दिन भयऊ ।
गहने गही चांद कै करा । आंसु गगन जनु नखतन्ह भरा ।
टूट पालि सरवर बहि लागे । कंवल बूड़ मधुकर उड़ि भागे ।[52]

उपर्युक्त पंक्तियों में पक्षी के प्रति प्रिय जन की सी अनुरक्ति दिखाई गई है ।

<u>वात्सल्य-रस -</u>

पद्मावत में वात्सल्य रस के उद्गार रत्नसेन के योगी होकर घर से निकलने के अवसर पर और बादल की युद्ध यात्रा के अवसर पर विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं - रत्नसेन की माता अपने पुत्र के प्रति चिन्तित हो कह उठती है -

कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ । कैसे नींद परिहि भुइँ माँहा ।

कैसे सहब खिनहि खिन भूखा । कैसे खाब कुरकुटा रूखा ।

छोटी सी अवस्था में बादल रणभूमि में जाने के लिए तत्पर है, उस समय माँ के कोमल हृदय में पुत्र के प्रति अनिष्ट के भाव उपस्थित होते हैं -

बादिल राय मोर तुं बारा । का जानसि कस होइ जुझारा ।
बरिसहिं सेल बान घनघोरा । धीरज धीर न बाँधहि तोरा ।।

उपर्युक्त दोनों स्थलों पर माँ के कोमल हृदय की मनोरम झाँकी दिखाई गई है ।

<u>स्थायी भाव</u> - शोक : इष्ट वस्तु की हानि , प्रेमपात्र का चिर वियोग से संबंधित

<u>आलम्बन</u> - बन्धु वियोग , प्रिय-वियोग आदि ।

<u>उद्दीपन</u> - प्रिय वस्तु के प्रेम , यश या गुण का स्मरण , वस्त्र , आभूषण चित्रादि का दर्शन ।

<u>अनुभाव</u> - रुदन , उच्छ्वास , बाल नोचना , छाती पीटना , मूर्च्छा प्रलाप आदि ।

<u>संचारी भाव</u> - मोह , स्मृति , चिन्ता , विषाद आदि ।

वीर-रस -

पद्मावत में चित्तौड़ पर बादशाह का आक्रमण , सेना की सजावट , युद्ध की तैयारी , घोर घमासान युद्ध , अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन तथा गोरा-बादल के शौर्य का प्रदर्शन आदि प्रसंग वीर रस से सम्बन्धित है ।

अष्ट धातु के गोला छूटहिं । गिरि पहार पब्बै सब फूटहिं ।
एक बार सब छूटहिं गोला । गरजै गगन धरति सब डोला ।
फूटे कोट फूट जस सीसा । औदरहिं बुरुज परहिं कौसीसा ।[60]

काव्य में वीर रस के चार भेदों में से " युद्ध वीर " का ही वर्णन मिलता है -

सूर नवाई नवउ खंड मई । धरती दाप छुवो सब मई ।
तंह लगि राज खरग कर लीन्हा । अस्कंदर जुलकरनैं जो कीन्हा ।
हाथ सुलैमा केरि अंगूठी । जग कहं जिंउ दीन्ह तेहि मूठी ।
औ अति गरू पुहुमिपति भारी । टेकि पुहुमि सब सिस्टि संभारी ।।[61]

इसी प्रकार गोरा का वीर रस स्वाभाविक उदाहरण भी दर्शनीय है -

जबहिं कटक मिलि गोरा छेंका । गुंजर सिंघ जाइ नहिं टेका ।
जेहिं दिसि उठै सोइ जनु खावा । पलटि सिंघ तेहिं ठावंन्ह आवा ।।[62]

गोरा के अन्तिम क्षण का वीर रस पूर्ण चित्र तो वीर भी मार्मिक बन पड़ा है -

भांट कहा धनि गोरा तू भोरा रन राउ ।
आंति हँति करि कांधि तुरै देत है पाउ ।।[63]

वीर रस का स्थायी भाव - उत्साह है ।
आलम्बन - शत्रु
उद्दीपन - शत्रु का पराक्रम
अनुभाव - गर्वीली वाणी
संचारी भाव - गर्व , धृति , स्मृति , मति , आवेग आदि ।

<u>बोहित वर्णन -</u>

फिरै लाग बोहित अस आई । जनु कुम्हार धरि चाक फिराई ।।[६८]

<u>राजपक्षी वर्णन -</u>

तेतखन राजपंखि एक आवा । सिखर टूट जस डोलत आवा ।
परा दिस्टि वह राकस खोटा । ताकिसि पैग हस्ति कहँ मोटा ।
आइ ओहि राकस पर टूटा । गहि लै उड़ा भंवर जल छूटा ।
बोहित टूक टूक सब भए । केहु न जानै कहुं कहँ गए ।[६९]

यहाँ राजपक्षी का दीर्घाकार भय उत्पन्न करता है ।

<u>आतंक से भय की उत्पत्ति -</u>

डोलि गढ़ गढ़पति सब कांपे । जीउ न पेट हाथ हिय चांपे ।
कांपा रनथंभउर डरि डोला । नरवर गयउ झुराइ न बोला ।[७०]

अलाउद्दीन के भय से सभी कम्पित हो रहे हैं । अतः आतंक के कारण भय का संचार हो रहा है ।

<u>करुणा तथा जुगुप्सा से मिश्रित भय -</u>

उनिगढ़ ओबरी मांह लै राखा । निति उठि दगध होहिं नौ लाखा ।
ठांउ सो सांकर औ अंधियारा । दोसरि करवट लेइ न पारा ।
बीछी सांप आनि तहं मेले । बांका आनि छुआवहिं हेले ।
धसकहिं संड़सी छूटहिं नारी । राति देवस दुख का मारी ।।[७१]

रत्नसेन को बन्दी बनाकर अलाउद्दीन उसे जिस भांति कष्ट दे रहा है, उससे करुणा उमड़ती है । रत्नसेन की दशा से जुगुप्सा उत्पन्न होती है । और सम्पूर्ण अवस्था देखकर भय उत्पन्न होता है ।

रौद्र रस -

अलाउद्दीन का पत्र रत्नसेन को मिला जिसे पढ़कर राघव के प्रति रत्नसेन का क्रोध प्रकट करना, रौद्र रस की सुन्दर व्यंजना है उल्लेखनीय है।

सिंघल का जो पदुमिनी सो भार्जों यहि बेगि।[७२]
सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानहुं दैव तरपि घन गाजा॥[७३]

क्रोधित हो राजा कहने लगा भले हो यह भारी छत्रपति है, पर कोई दूसरे पुरुष की स्त्री कभी नहीं मांगा करता। यदि वह कहता है तो राज्य उसका है, किन्तु अपना घर प्रत्येक के लिये अपना वैभव है।

यों तो रौद्र रस की दृष्टि से यहां अनुभाव के रूप में डांट-डपट और उग्र वचन है और संचारी भाव के रूप में अमर्ष है।

इसी प्रकार " आत्मावदान कथन में रौद्र रस का सुन्दर परिपाक मिलता है -

हौं रनथम्भउर नाथ हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।
हौं सो रतनसेन सकबंधी। राहु बेधि जीता सैरंधी।
विक्रम धरित कान्ह जेइ ताका। सिंघल दीप लीन्ह जौं ताका॥[७४]

बीभत्स-रस

युद्ध स्थल में बीभत्स रस दिखाई देता है।

टूटहिं सीस अधर धर मारे। लोटहिं कंध कबंध निनारे।
कोई परहिं रुधिर होइ राते। कोइ घायल घूमहिं जस माते।[७५]
मारहिं सांगि पेट महं फेरा। काढ़हिं सुरुकि आंति जुं जैसा॥[७६]

शान्त-रस -

पदमावत में शान्त रस का चित्रण भी अच्छा बन पड़ा है जिसमें संसार की असारता , योग , विरक्ति प्रेम और गर्व न करने आदि का उपदेश दिया गया है ।

माँ से जोगी रत्नसेन का कथन -

मोहि यह लोभ सुनाउ न माया । काकर सुख काकरि यह काया ।
जौं निआन तन होइहि छारा , माटी पोखि मरै को भारा ।। [77]

स्त्री से योग की बड़ाई -

यह संसार सपन कर लेखा । बिछुरि गए जानहुं नहिं देखा ।
राजा भरथरि सुनि रे अयानी । जेहि के घर सोरह सै रानी ।
कुचन्ह लिहैं तरवा सहराई । भा जोगी कोउ साथ न लाई । [78]

विरक्ति -

काकर घर काकर मढ़ माया । ताकर सब जाकर जिउ काया । [79]

प्रेम -

मानुष पेम भएउ बैकुंठी । नाहिं त काह छार एक मूठी । [80]

गर्व न करो -

रावन गरब बिरोधा रामू । ओहि गरब भएउ संग्रामू ।
तेहि रावन अस को बरिबंडा । जेहि दस सीस बीस भुजदंडा ।
सूरुज जेहि के तपै रसोई । बैसंदर नित धोती धोई ।
सुक सोंटिया ससि मसिआरा । पवन करै नित बार बुहारा ।

मांसु लाव के पाटो बांधा । रहा न दोसर जौहि हौं कांधा ।
जी अस अमर टरै नहिं टारा । सोउ मुआ तपसी कर मारा ।
नाती पूत कोटि दस अहा । रोवन हार न एको रहा ॥[81]

गर्व के कारण ही वीर रावण तपस्वी राम द्वारा मार डाला गया ।

अत: -

जौहि जानि कै काहुं जनि कोइ गरब करेइ ।[82]

करुणा -

जो रे उवा सो अंथवा रहा न कोइ संसार ।[83]

नागमती-पद्मावती सती खंड में जिस समय अलाउद्दीन के हाथ पद्मावती नहीं लगती , उसके स्थान पर वहां की छार ही हाथ लगती है । तब वह कह उठता है -

छार उठाय लीन्हि एक मूठी । दीन्हि उड़ाइ पिरिथमी झूठी ।[84]

इस प्रकार श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का निरूपण भी पद्मावत में हुआ है ।

अलंकरण-शिल्प -

काव्य में रमणीयता और उक्ति लाने के लिए अलंकारों की स्थिति अपेक्षित है किन्तु पद्मावत में प्रयुक्त अलंकार स्वत: ही एक के बाद एक उपस्थित होते गये हैं । पद्मावत के अलंकार विधान का निरूपण अपने आप में अध्ययन का एक सुन्दर विषय है ।

पद्मावत में प्रयुक्त अलंकार काव्य की शोभावृद्धि में सहायक हैं । काव्य में शब्दालंकारों के चमत्कार और अर्थालंकारों का सौन्दर्य प्रचुरता से देखने को मिलता है । उपमाओं के प्रयोग द्वारा चमत्कृत करने की प्रवृत्ति भी पद्मावत में देखने को मिलती है ।

शब्दालंकारों में निःसन्देह 'वृत्यानुप्रास' का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रीति से किया गया है -

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोवा ।[85]
भा भादौं दूभर अति भारी ।[86]
पपिहा पीउ पुकारत पावा ।[87]

यमक -

जाति सूर औ खाँड़े सूरा ।[88]
गई सो पूजि मन पूजि न आसा ।[89]
सू हरि लंक हरायर केहरि ।[90]
रतनहिं रतनहिं एकौ भावा ।[91]

उपर्युक्त उदाहरणों में 'सूर' 'पूजि' 'हरि' और 'रतनहिं' शब्दों में यमक अलंकार का सौन्दर्य स्पष्ट है ।

श्लेष -

श्लेष के माध्यम से अनेक अर्थों की निष्पत्ति के कुछ प्रयोग भी पद्मावत में द्रष्टव्य है -

रतन छपा पर भा अंधियारा ।[92]
कंथ जो रहा शरीर महं पांव परागा मागि ।[93]

इन पंक्तियों में 'रतन' (रत्नसेन और रत्न) और कंथ (कंथ और पांव) शब्द श्लिष्ट हैं ।

इसी प्रकार 'दिया' शब्द का दान और दीपक अर्थों में सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है -

धनि जोबन औ ताकर हिया । ऊंच जगत महं जाकर दिया ।
दिया सो जब जप तप उपराहीं । दिया बराबर जग किछु नाहीं ।
एक दिया तें दसगुन लाहा । दिया धरमो मुख चाहा ।

दिया करै आगैं उजियारा । जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा ।
दिया मंदिर निसि करै अँजोरा । दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा ।।[६४]

अर्थालंकारों में उपमा , रूपक , उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से पाया जाता है ।

उपमा -

रूप वर्णन के प्रसंग में उपमाओं का प्रचुर परिमाण में प्रयोग किया गया है । कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं -

कोमल कुटिल केस नग कारे । लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे ।।[६५]

: कोमल कुटिल केश काले नागों की भाँति हैं । वे विषधर भुजंगों की तरह लहरों से भरे हैं । :

कुमर समुंद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग ।[६६]

: दोनों नेत्र जल से भरे समुद्र की भाँति हैं । जिनकी लहरों में माणिक्य भरे हैं । :

उत्प्रेक्षा -

नख-शिख और अन्य रूप-वर्णनों में उत्प्रेक्षाओं का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है । निम्न पंक्ति में उत्प्रेक्षा की सुन्दर योजना द्रष्टव्य है -

भोर साँझ रवि होइ जो राता । ओहिं सो सेंदुर राता गाता ।।[६७]

प्रातः और संध्या के सूर्य की जो लाली है वो उसी सेंदुर से उसका शरीर लाल हो जाने के कारण है ।

वस्तूत्प्रेक्षा -

रत्नसेन के साथ सोलह सहस्र राजकुमार जोगी-जोगिया वेश धारण करके निकल पड़े हैं । वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों टेसू फूला हो -

उपर्युक्त पंक्तियों में भौंरों का श्याम होना, राहु-केतु का दग्ध होकर काला होना, सूर्य का तपना, चन्द्रमा की कला का संक्षिप्त होना, पलाश के फूलों का लाल होना आदि दिखाया गया है जो सत्य है परन्तु ये सब नागमती के विरह ताप के कारण हुए हैं ऐसा प्रतीत होता है।

रूपक -

रूपक के तीनों प्रकारों में से सांगरूपक का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

जोबन जल दिन दिन जस घटा। भंवर छपाई हंस परगटा।[१०२]

जैसे-जैसे यौवन रूपी जल दिन-दिन घटता है, वैसे ही वैसे शरीर रूपी नदी या सरोवर में पानी की बाढ़ के भंवर छिपते जाते हैं और हंस दिखाई पड़ने लगते हैं। इस प्रकार उक्त पंक्ति में उक्त सांग रूपक की सुन्दर योजना की गई है।

अतिशयोक्ति -

नख-शिख वर्णन में इस अलंकार का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

मधुमालती -

मधुमालती नामक प्रेमाख्यान की रचना मंझन द्वारा सन् १५४५ ई० में हुई। मधुमालती में मनोहर तथा मधुमालती की प्रेमकथा वर्णित है तथा बोलचाल की अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है।

कथावस्तु -

मधुमालती की कथावस्तु संक्षेप में निम्न प्रकार से है -

कनेसर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को नृत्य-गीतादि से अत्यधिक प्रेम था। एक दिन नृत्य देखकर सोये हुए राजकुमार को अप्सराएं महारस नगर की

राजकुमारी मधुमालती को चित्रसारी में उठा ले गई । प्रेमालाप के पश्चात् दोनों निद्रा निमग्न हो जाते हैं । अप्सराएं फिर मनोहर को उसके घर पर पहुंचा देती हैं ।

प्रातः जागने पर निशासंगिनी को पास न पाकर मनोहर व्याकुल हो उठा और विरहाग्नि से संतप्त हो योगी-वेश धारण कर मधुमालती की खोज में निकल पड़ा , मार्ग में उसने प्रेमा नामक युवती का राक्षस के चंगुल से उद्धार किया । प्रेमा ने ही यत्नपूर्वक मनोहर और मधुमालती का मिलन चित्रसारी में कराया ।

मनोहर तथा मधुमालती को साथ देखकर रूपमंजरी (मधुमालती की माँ) ने शापवश मधुमालती को पक्षी बना दिया । पक्षी रूप में उड़ती हुई मधुमालती को चितौर मानगढ़ के राजकुंवर ताराचन्द ने पकड़ लिया । मधुमालती से करुण कथा सुनकर ताराचन्द अत्यन्त दुखित हुआ और उसने उसे मनोहर से मिलाने का वचन दिया । वह पिंजड़े में बन्द मधुमालती को लेकर महारस नगर पहुंचा । माता ने प्रसन्न होकर उसे पुनः राजकुमारी रूप प्रदान किया । माता-पिता ने दोनों का विवाह करना चाहा पर भाई-बहन के सम्बन्ध की बात सुनकर वे मौन हो गये । संयोगवश मनोहर भी वहाँ आ पहुंचता है । और दोनों का विवाह हो जाता है । ताराचन्द और प्रेमा का भी विवाह हो जाता है । दोनों मित्र मनोहर एवं मधुमालती तथा ताराचन्द एवं प्रेमा आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगते हैं ।

वस्तु विश्लेषण -

मधुमालती की कथा लोक कथा पर आधारित एक मौलिक कथानक है । कवि ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है -

' आदि कथा द्वापर पनि आई , कलि जुग मंझ भाखा के गाई ।[1] '

प्रस्तुत कथा के साथ-साथ एक और कथा का संयोजन करके कवि ने नायक नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका के चरित्र द्वारा निःस्वार्थ भाव

का सुन्दर चित्र अंकित किया है। एक मुख्य कथा है और दूसरी प्रासंगिक जो मुख्य कथा के विकास में सहायक है।

काव्यारम्भ में कवि ने सृष्टिकर्ता[2], मुहम्मद साहब[3], चारों मित्रों[4] अबूबक्र ~~इस्लामशाह~~[5], उमर, उस्मान और अली, शाहेवक्त के रूप में सलीमशाह[5] दीक्षा गुरु शेख मुहम्मद गौस[6] तथा आश्रयदाता की प्रशंसा[7] के अनन्तर कवि ने वचन का भी गुणगान[8] किया है।

अप्सराओं द्वारा मनोहर और मधुमालती का मिलन कहानी में रोचकता का प्रमुख स्रोत है। इसके अतिरिक्त प्रेमा का राक्षस द्वारा हरण, रूपमंजरी द्वारा मधुमालती को पक्षी बना देना और पुनः स्त्री रूप में परिणत कर देना आदि घटनाएं पाठक को आश्चर्यचकित संसार में ले जाती हैं।

अधिकांश सूफी कवियों ने नायक का निधन कराके नारी का सती होना दिखाया है, परन्तु मंझन ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने अपनी कथा को अन्त तक सुखान्त ही रखा, अतः कथा का अन्त भी मौलिकता एवं नवीनता लिये हुये है।[8] लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिकता का संकेत करना कवि मंझन का अभीष्ट रहा है। काव्य में मधुमालती परमात्मा का और मनोहर आत्मा का प्रतीक है। आत्मा और परमात्मा के मिलन में शैतान के रूप में मां-बाप जैसे स्नेहिल व्यक्ति ही कांटे बो देते हैं यही शैतान मधुमालती को पक्षी बनाकर दो रूप देता है। इसी प्रकार की बाधाओं को पार करके आत्मा-परमात्मा के दो प्रेमी युगल का मिलन हो जाता है। अतः मधुमालती का अन्त मिलन है।

कथानक में रोचकता एवं नाटकीयता के समावेश के लिए भावपूर्ण प्रसंगों एवं सरस संवादों का सुन्दर विधान किया गया है। अतः मधुमालती की कथा सरस एवं गतिशील है। कथानक की सरसता सम्बन्धी निम्नलिखित पंक्तियां उल्लेखनीय है -

अंकित कथा सुरस रस सुनहु कहौं सम गाइ ।[10]
अंकित कथा कहौं अब गाई । रसिक कान दै सुनहु लोगाई ।[11]

<u>प्रमुख पात्र और चरित्रांकन</u> -

नारी पात्रों के रूप में मधुमालती काव्य की प्रधान नायिका और प्रेमा उपनायिका कही जा सकती है । अन्य नारी पात्रों में मनोहर की माता कमलावती मधुमालती की माता रूपमंजरी , प्रेमा की माता मधुरा भी ममता और वात्सल्य की सच्ची प्रतिमाएं हैं ।

मालिन पीना , मनोहर की धाय सहजा तथा मधुमालती और प्रेमा की सखियों के चरित्र भी काव्य में सच्चे स्नेह से संपुष्ट हैं ।

पुरुष पात्रों के रूप में मनोहर काव्य का नायक है जो कनकगिरि के राजा सूरजभान का पुत्र है । ताराचन्द एक कुशल तथा विनयशील पात्र है । मधुमालती के पिता विक्रमराय तथा प्रेमा के पिता चित्रसेन आदि का चरित्र भी विचारणीय है ।

<u>मधुमालती</u> -

मधुमालती प्रेमाख्यानक काव्य की नायिका है । सूफी काव्य में नायिकाएं प्रायः परमसत्ता का प्रतीक मानी जाती हैं । मधुमालती में भी मधुमालती के लौकिक व्यक्तित्व के साथ ही उसे दिव्य एवं अलौकिक गुणों का पुंज तथा सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न चित्रित किया गया है -

उहै रूप सब जेहि छपाना । उहै रूप जग दिस्टि समाना ।।
उहै रूप सबही की लोऊ । उहै रूप त्रिभुवन कर जोऊ ।
उहै रूप परगट बहु भेषा । उहै रूप जग राव नरेसा ।
उहै रूप त्रिभुवन का दीपै मनि प्रकास आगास ।
जोई रूप परगट मैं देखा सुव मांरे परगास ।।[12]

काव्य में मधुमालती का प्रेमिका रूप भी सामने आया है । मनोहर के प्रति उसका प्रेम अडिग है । परिणीता रूप में भी वह मनोहर के प्रेम का परित्याग नहीं करती । अनेक प्रकार की बाधाओं को पार करके अन्त में ताराचन्द की सहायता से वह मनोहर के साथ परिणय-सूत्र में बाँध जाता है , प्रेमा का ताराचन्द से ग्रन्थि बन्धन कराकर उसका प्रत्युपकार भी करती है । उसके इस अनुकरणीय व्यवहार का परिचय निम्न पंक्तियों से होता है -

मधुमालति जोबन कहा भरी । ताराचन्द के पायन्ह परी ।
\+ \+ \+
मधुमालती रोइ-रोइ कह बाता । हौं मोर जनम बोउ कर दाता ।
माइ बाप सौं कामि उबारी । बार मोहि लै तुम्ह प्रतिपारी ।
मिलब के लिय कहं कुशल न आसा । तुम्ह मोहि मेरे दीन्ह घर बासा ।[१७]
रोइ रोइ फिरि कहेसि ताराचन्द के पाइ ।
कुंवर साह गियं लगंदा जस हमहि बहिनि कहं भाइ ।[१८]

इस प्रकार मंझन की मधुमालती लौकिक रूप में सौन्दर्य की साकार प्रतिमूर्ति और अपने अलौकिक व्यक्तित्व की दृष्टि से वह सूफी साधना के परम तत्व परमात्मा के अनन्त ,अकथनीय सौन्दर्य का प्रतीक है ।[१९]

उसके अप्रतिम रूपोत्कर्ष को देखकर मनोहर मूर्च्छित सा हो जाता है । उसके विकल प्राण पक्षी की भाँति उड़ जाते हैं । उसकी माँग को देखकर ऐसा लगता है मानों वह स्वर्गपथ का विकट पड़ाव हो अथवा खड्ग की विकट धार हो जो रक्त से सुशोभित हो अथवा सूर्य की सुहावनी किरण हो जो कमल को छोड़ कर आकाश पर आई हो अथवा वह माँग , माँग न होकर आकाश की बाट और सूर्य चन्द्र के उदय एवं अस्त की बाट हो ।

स्याम रैनि जनु दामिनि स्याम जलद महं होइ ।[२०]
बरन सूरी जनु छिटकी बाट परी जिय होइ ॥

उसे देखकर ऐसा लगता है मानों श्यामल रजनी में श्यामल घनपटल के मध्य दामिनी द्युतिमान हो उठी है । और स्वर्ग से छिटक कर मधुमालती के सिर पर आकर शोभायमान हो रही हो ।

मनोहर -

मनोहर एक पराक्रमी तथा अदम्य साहसी नायक होने के साथ ही एक अनन्य प्रेमी भी है । मधुमालती के रूप सौन्दर्य पर आसक्त हो उसे प्राप्त करने के लिए योगी वेश धारण करता है । वह दृढ़ संकल्पी भी है । सागर में प्रोहित नाश हो जाने पर वह अकेला ही बीहड़ वनों और दुर्गम पर्वतों को पार करता हुआ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है । महावीर होने के कारण वह राक्षस का संहार कर प्रेमा का उद्धार करता है -

सुनत कुंवर राकस कै बाता । रिसन्ह भरउ सिर पालहि ताता ।
कहेसि छाड़ि राकस कदराई । संकट भरउ काल तोर आई ।
तोहि मारि प्रेमहि लै जाऊं । तौ रघुबंसि कहाऊं नाऊं ।
जौ लछमन कइ अस मनुसाई । कथा गगन जानि जाहि बुझाई ।
कहौ भुजा परचारि उपारी । पांचौ पांच काटि कइं डारी ।[21]
जिमि परिहर जरि काटि तन बरबंहि पै निदान ।
तिमि राकस भुइमीं परेउ कथा परिहरि परान ।[22]

मनोहर के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी विनय-शीलता एवं कृतज्ञता है । मधुमालती के उद्धार के लिए वह ताराचन्द के प्रति हार्दिक कृतज्ञता अपना सिर उसके पैरों में डालकर प्रकट करता है । विक्रमराय के प्रति भी उसका व्यवहार सम्मान पूर्ण है ।

मनोहर और मधुमालती की लौकिक प्रेम कथा में मनोहर प्रतीकात्मक पात्र के रूप में आध्यात्मिक प्रेमपथ का पथिक भी है । प्रेम के दुर्गम पथ पर चलने के लिए

वह अपने प्राण तक न्यौछावर करने का पूरा संकल्प कर लेता है। प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का साहस पूर्ण सामना करता हुआ अन्त में सिद्धि प्राप्त करता है।

ताराचन्द -

काव्य में ताराचन्द एक परोपकारी तथा विनयशील पात्र के रूप में सामने आया है। मधुमालती की करुण-कथा सुनकर ताराचन्द पसीज जाता है। और वह मधुमालती को उसके उद्धार का आश्वासन भी देता है। प्रेमा के रूप सौन्दर्य पर आसक्त हो उससे अनन्य प्रेम करने लगता है जो उसके अनुरागी चित्त का परिचायक है।

प्रेमा -

प्रेमा काव्य की उपनायिका कही जा सकती है। अनुपम सुन्दरी होने के कारण मनोहर चौखण्डी में उसे सुप्तावस्था में देखकर उसके रूप सौन्दर्य की मुक्त कंठ से सराहना करता है। ताराचन्द भी चित्रसारी में उसके सौन्दर्य को देखकर मूर्छित हो जाता है। और मधुमालती से उसके कमनीय रूप-लावण्य का वर्णन करते हुए कहता है -

कोटिहि देस मैं फुलवारि ठाढ़ी। परल दिस्टि चित ले गइ काढ़ी।
कहौं कहा नैन उजियारे। जनु नभ उए देखहु दुइ तारे।[23]

मनोहर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते समय उसकी सहृदयता के दर्शन होते हैं -

मकउ बिछोह मोहि तोहि जोरा। मैं केहि देहि करब मनु थोरा।
यह कहि छाड़ि कुंवर कंठ मधुमालति गिवं लागि।
बिछुरत जनम संघातिनि जिय परजरी जो आगि।।[24]

<u>रस-निरूपण -</u>

मंझन कृत मधुमालती के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि मंझन रस-सिद्ध कवि थे । रस को काव्य की आत्मा मानते हुए उन्होंने मधुमालती में रस सृष्टि का पूर्ण निर्वाह किया है -

कथा एक बांधउं रस भाखा ।[25]

काव्य में शृंगार रस प्रमुख रस है । इसके साथ ही वात्सल्य , शान्त , भयानक , अद्भुत , रौद्र , वीर तथा करुण रसों के रंग भी काव्य में जहां-तहां बिखरे उपलब्ध होते हैं । यहां कविवर मंझन की रस-चेतना का आकलन प्रस्तुत किया जा रहा है -

<u>शृंगार रस -</u>

मधुमालती में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सम्यक् चित्रण मिलता है ।

<u>संयोग शृंगार -</u>

संयोग का सर्वप्रथम चित्रण उस समय मिलता है , जब सुप्तावस्था में अप्सराएं मनोहर को उठाकर मधुमालती के शयन-कक्ष में ले जाती हैं , जहां अनिंद्य सुन्दरी मधुमालती का प्रत्यक्ष दर्शन कर उस पर मोहित हो जाता है । अर्धसुप्तावस्था में मधुमालती के दर्शनों से मनोहर के हृदय में प्रेमोदय होता है -

नौ दस बरिस बाला निमरम सोव सुख सेज ।
एक पारिखेउ कुंवर कित सोउ सुधि सेज ।।[26]

देखा सिये सभागी स्यामा । कुंवर सोउ कहिलौ परनामा ।
छूटी सुधी सेज देखि बाला । नख सिख उठी कुंवर के ज्वाला ।।[27]

इस प्रकार मधुमालती में संयोग के अन्तर्गत संभोग के अनेक विशद वर्णन उपलब्ध होते हैं । कहना न होगा कि कतिपय स्थलों पर ऐसे वर्णन अतियथार्थ होते हुये भी सामाजिक दृष्टि से अश्लील हैं तथा सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं । लौकिक श्रृंगार के ऐसे अमर्यादित वर्णनों को अतिशय सहानुभूतिपूर्वक उदार दृष्टि से आध्यात्मिक मानना निश्चय ही भ्रामक है । शास्त्रीय दृष्टि से अवश्य इन वर्णनों में भाव , विभाव , अनुभावगत भरपूर सामग्री है और मनोरम रस परिपाक है ।

वियोग वर्णन -

मधुमालती में वियोग श्रृंगार अपनी सम्पूर्ण रस सामग्री के साथ अभिव्यक्त है । वियोग वर्णन के चारों रूप पूर्वराग , मान , प्रवास तथा करुण के अन्तर्गत नायक-नायिका की शारीरिक मानसिक तथा व्यावहारिक दशाओं का निरूपण अत्यन्त सूक्ष्मता से किया गया है ।

वियोग के उक्त चारों भेदों में से मधुमालती में प्रवास-जन्य वियोग सर्वाधिक सरस एवं सौन्दर्य पूर्ण बन पड़ा है , जिसका चित्रण मनोहर तथा मधुमालती के प्रथम दर्शन तथा चितबिसरामपुर में पुनः मिलन के उपरान्त वियोग की अवस्थाओं में किया गया है ।

प्रथम भेंट के अनन्तर मनोहर और मधुमालती प्रातःकाल जागते हैं , तो प्रथम मधुर मिलन की स्मृति उनकी उद्वेलित मानसिकता को झकझोर देती है । मनोहर की इस विकट विरह वेदना का मोह , जड़ता , विषाद , चिन्ता , स्मृति , अपस्मार , व्याधि तथा उन्माद आदि संचारी भावों एवं रोमांच , अश्रुपात तथा प्रलय आदि सात्विक अनुभावों के माध्यम से वियोग की मार्मिक छवि निम्न-लिखित पंक्तियों में देखिये -

उहाँ कुंवर जौ देश भागा । कहाँ विरह आगि तनु लागो ।
नां वह मंदिर न वह सुखरातो । ना वह राजकुमारि रंगरातो ।
मरुगति परी जौ कहुं दिसि जोवै । दिन दिन जपि ठाढ़ि है रोवै ।
जौ पिउ कैसा न करै संभारो । मन गुनि गुनि सुधि पेम पियारो ।
संवरि-संवरि मधुमालति बाला । विरह अनल व्यापिउ सब गाता ।
कबहु कै चित चिंता करै कबहुं नाह किंमार ।
हाय सुहमि धनि रोवैं असुभि रूप गुन नारि ।[31]

मधुमालती भी जिस प्रकार मनोहर की सुखानुभूतियों से पीड़ित है । निम्नलिखित पंक्तियों में उसकी मानसिकता द्रष्टव्य है -

कहेसि कुंवरहिं यह सखि रोवै । जिया लागि मोहि ठउं यह गोवै ।
कबहुं चकित होइ चहुं दिसि देखा । कबहुं मौन होइ रहै अकेला ।
कबहुं हाथ धरि बैठि सुवाइ । कबहुं आइ पुनि उठै धाई ।
कबहुं कहै दरपन देउं बैना । कबहुं रुधिर भरि आवहिं नैनां ।
कबहुं चकचके देखत चारि जन छांडि कबहुं रोवै दुख गोइ ।
कबहुं बारो बिरह वियाकुलि बदन ढांकि रहै सोइ ।[32]

इसके अतिरिक्त बारहमासा में कवि ने नायिका की तीव्र विरह पीड़ा और मिलन आकांक्षा का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है । भारतीय नारी जिस प्रकार अपने पति पर पूर्ण रूप से आश्रित रहती है और उसके बिना राज-पाट धन-धान्य , यश-ऐश्वर्य , भोग-विलास सभी तुच्छ है । उसके साथ दरिद्रता का जीवन भी सभी सुखों को प्रदान करने वाला है ।

मधुमालती का विरह कम हृदय-विदारक नहीं है । फाल्गुन में वह देखती है कि उसी की तरह सारी प्रकृति भी विरह से दग्ध है । तरुवरों में पत्ते नहीं हैं ।

सारी फुलवारी झाड़-झंखाड़ हो गई है, उसी के समान सभी वृक्ष झौंसे हैं, सभी पक्षीगण वैरागी हो गये हैं। ढाक के सिर पर तो आग लगी है। संसार में ऐसा कोई वृक्ष नहीं जिसके लाकर पत्र न रोई हो।[33]

पक्षी रूप में उसे कौन पहचानता। उसका प्रिय-प्रिय का पुकार भी कौन समझता। एक तो वियोग दूसरा अनवास, फिर समस्त अकेली और उसके पास अपना मानवीय रूप भी तो नहीं है। इस प्रकार चारों ओर से वह मारी हुई है फिर मृत्यु तक भी हाथ नहीं आती है। हृदय का चीत्कार उसमें कितना अधिक मुखर हो उठा है देखिये -

एक वियोग दूजे बनवासा, तापरे कोउ न साथ।
पंछी रूप बिलानी, मरौं तो मृत्यु न हाथ।

इस प्रकार कवि मंझन ने बारहमासा के रूप में विरहिणी मधुमालती की दुखानुभूतियों का संश्लिष्ट चित्र खींचा है।

वात्सल्य -

मधुमालती में संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य के हृदय स्पर्शी वर्णन कई स्थलों पर उपलब्ध होते हैं।

संयोग वात्सल्य -

प्रेमा का सन्देश पाकर माता-पिता का हृदय पुत्री स्नेह से किस प्रकार उमड़ पड़ता है, निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये -

धाय सुनि राजा औ रानी। बिछुरि मीन पावा जनु पानी।[34]
पेमा नाउं सुनत उस धाए। उठि चलि राज दुवारें आए।
राजा उठि धाउ बिसंभारा। औ रानी सिर पा न संभारा।।[35]

मनोहर का मधुमालती सहित चित्रगिरि लौटने पर एक स्थान पर माता-पिता से मिलन संयोग जन्य वात्सल्य का हृदय-स्पर्शी उदाहरण द्रष्टव्य है -

कुंवर पिता पां लागेउ पाई । नैन जोति अंधरै जनु पाई ।
पुनि गै कुंवर जननी पां परा । अंचलि पुत्र कंठ लै धरा ।
रहीं लाइ हियं कुंवरहिं रानी । तपत मान जनु पावा पानी ।
जबरि कंठ लै लावै रानी राजकुमार ।
तब आँखा कै रुधिर जिउं निसरै दूध कै धार ।[36]

वियोग वात्सल्य -

मनोहर के योगी-वेश में प्रस्थान के समय माता-पिता का विलाप वात्सल्य का मार्मिक निदर्शन है -

जियं मरौं जनि करहु पयारा । आहउ मोर दीप उजियारा ।
मोरे जिवका न बिछुरहु मोरे और न कोई ।
हिया फाटि रहि मरिहौं कुंवरि कुंवरि गुन रोइ ।[37]

इसी प्रकार राजा और रानी के पुत्र-स्नेह का वियोग जन्य पीड़ा का वर्णन मधुमालती के पक्षिणी बनकर उड़ जाने के प्रसंग में निम्न प्रकार से किया गया है -

पंखि रूप मधुमालती भई । कोउ न जान कहां उड़ि गई ।

माता पिता तेहि पुत्री कारन रोवत भए अचेत ।
पुतरीं नैन कारि जो धौव कीन्हि दुहुं सेत ।[38]

मधुमालती का विदा प्रसंग वियोग वात्सल्य का अत्यन्त मार्मिक स्थल है -

वीर-रस -

मधुमालती में मनोहर तथा राक्षस के युद्ध प्रसंग में वीर रस की सफल एवं सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। राक्षस का गर्व एवं रोषपूर्ण ललकार सुनकर रघुवंशी वीर राजकुमार मनोहर भी उग्र हो उठता है। मनोहर का वीर रस पूर्ण निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

सुनत कुँवर राकस के बाता। रिसन्ह भएउ सिर पा लहि ताता।
कहेसि छाड़ि राकस कदराई। कंठ भएउ काल तोर आई।
तोहि मारि पैसि लै जाऊँ। तौ रघुबंसि कहाऊँ नाऊँ।
जौ खड्ग भए कर मसुआई। कहा गरब जनि मारि फुराई।
दसौ भुजा पसारि उपारौं। पाँचौं माँथ काटि भुइँ डारौं।
बगिनि किमि मैं रघुबंसी हूँ कह रघु पसार।
निमिष माँह पखारौ दरनि बाहिम करतार।[४४]

अद्भुत-रस -

मधुमालती में मधुमालती का पक्षिणी रूप तथा राक्षस की आत्मा की अमृत वृक्ष में स्थिति आदि अलौकिक कार्यों के माध्यम से अद्भुत रस की व्यंजना की गई है। उदाहरण द्रष्टव्य है -

पी धुंक्रावति रानी हारी। चिहु रस भवन हरप चिहु मारी।

तब पिरथमा पर लैकै पढ़ि छिरकैसि मुख पानि।
लागत छिन मधुमालति पंखी होइ उड़ानि।[४५]

भयानक-रस -

मधुमालती में भय स्थायी भाव पर आधृत भयानक रस का वर्णन भी कतिपय स्थलों पर उपलब्ध होता है। आन्दोलित सागर अन्धकारमय तरंगों के

नश्वरता -

सो कहुँ अंधकार न आवा । जैसे फागुन फाककार न आवा ।
रवि पूनिवं नहिं उवसि अकासा । जौ रे आपकु कहं न किआसा ।[५४]

प्रेम जो अमर है -

अमर न होत कोउ जग हारे । मार जो मरै तेहि मांचु न मारे ।
प्रेम के आगि सही जेहं आंचा । सो जग जनमि काल सों बांचा ।[५५]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मधुमालती में विविध रसों का सुन्दर विधान हुआ है ।

अलंकरण शिल्प -

मंझन के काव्य में उपमा , उत्प्रेक्षा , सन्देह , प्रतीप , दृष्टान्त , उल्लेख , रूपक , अपन्हुति , परिकरांकुर , लोकोक्ति , अर्थान्तरन्यास , उन्मीलित , वक्रोक्ति , अनुप्रास , यमक , पर्यायोक्ति आदि अलंकारों का सौन्दर्य पूर्ण विधान देखने को मिलता है ।

चित्रावली -

उस्मान कृत " चित्रावली " की रचना सन् १६१३ ई० में हुई । इसमें नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावली के असीम प्रेम की कथा वर्णित है ।

कथावस्तु -

निःसन्तान नेपाल नरेश धरनीधर को भगवान शिव की कृपा से सुजान नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई । शीघ्र ही उसने सभी विद्याएं सीख लीं । एक दिन शिकार

ऐसे ही समय वह रास्ता भूल गया और देवमढ़ी में जाकर सो गया। देव ने शरणागत समझ कर उसकी रक्षा की। इसी बीच देव का एक अन्य मित्र के साथ रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की ग्यारहवीं वर्ष गांठ का उत्सव देखने जाना था। दोनों देव सोते हुए सुजान को भी अपने साथ ले गए और ले जाकर चित्रावली की चित्रसारी में सुला दिया। नींद खुलने पर सुजान चित्रावली के चित्र को देखकर उस पर मोहित हो अपना भी एक चित्र बनाकर चित्रावली के चित्र के बगल में टांग कर सो गया। देव उसे पुनः उठाकर अपनी मढ़ी में ले आए। जागने पर सुजान चित्रावली के प्रेम में विह्वल हो उठा। उधर चित्रावली भी सुजान के चित्र को देखकर उस पर आसक्त हो गई तथा प्रेम विह्वल रहने लगी।

एक दिन चित्रावली की माँ हीरा ने कुटीचर के कहने पर सुजान का वह चित्र धुलवा दिया। इस पर चित्रावली ने उस कुटीचर का सिर मुड़वा कर घर से निकाल दिया। कुटीचर ने सुजान को अन्धा करके एक गुफा में डलवा दिया जहां उसे एक अजगर निगल गया। किन्तु अजगर राजकुमार के विरह ताप को सहन न कर सका और उसने सुजान को तुरन्त उगल दिया।

राजकुमार सुजान मार्ग की भीषण कठिनाइयों को पार करता हुआ समुद्र तट पर जा गिरा। जब सुजान एक फुलवारी में विश्राम कर रहा था, सागरगढ़ की राजकुमारी कौलावती संयोगवश वहां आ पहुंची। कौलावती सुजान के रूप सौन्दर्य पर आसक्त हो उससे प्रेम करने लगी। इसी बीच सोहिल नामक राजा ने कौलावती को प्राप्त करने के लिए सागरगढ़ पर चढ़ाई कर दी परन्तु सुजान ने अपने पराक्रम से उसे मार भगाया। सुजान तथा कौलावती का परिणय हो गया किन्तु सुजान ने चित्रावली की प्राप्ति तक संयम रखने की प्रतिज्ञा की।

रूपनगर पहुंचने पर राजा ने प्रसन्न होकर पुत्री चित्रावली का विवाह सुजान से कर दिया। चित्रावली के साथ स्वदेश लौटते समय मार्ग में उसने कौलावती को भी ले लिया और दोनों पत्नियों के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगा।

<u>वस्तु विश्लेषण -</u>

चित्रावली का कथानक पूर्णतः उत्पाद्य (काल्पनिक) है । इसका कोई ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आधार नहीं है ।[1] कथा आरम्भ करने से पहले कवि ने सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर की महत्ता एक निराकार के रूप में प्रकट की है । इसके बाद मुहम्मद साहब उनके चार ' मीत ' अर्थात् प्रथम चार खलीफाओं तथा शाहेवक्त की प्रशंसा की है ।

पुरुष एक जिन्ह जग अवतारा , रचेन्हि सरीर सार संसारा ।
आपन अंस कीन्ह दुइ ठाऊँ , एक क धरा मुहम्मद नाऊँ ।[2]
पहिले अबूबकर अबाबादी , दूज जान जो भौ अबादी ।
दूजे उमर न्याउ प्रतिपारा , जे जिय कारन पुत्रहि संघारा ।
तीजे उसमाँ पंडित ग्यानी , जे करि ग्यान कथा विधि ग्यानी ।
चौथे अली सिंह रन सूरा , दान खड्ग जे तिहुं जग पूरा ।[3]
नूरुद्दीन महीपति भारी , जाकर आन मही महं चारी ।
पातिउ छूंट नवाई डाढ़ि , गजपति रहा न कोउ बिनु डाढ़े ।[4]

तदनन्तर पीर शाह निजाम चिश्ती का स्मरण कर उसमान ने अपने गुरु बाबा हाजी की भी प्रशंसा की है -

शाह निजाम पीर जिउदाता , दिस्ट देख जिमि रवि परभाता ।
नारनौल भीतर अस्थाना , उदै अस्त लग सब कोउ जाना ।[5]
बाबा हाजी पीर अपारा , जिन्ह दैत भेंटि लाग न बारा ।
जे मुख देखा ते सुख पावा , परसि पाय तन पाप गंवावा ।[6]

और फिर अपने निवास-स्थान गाजीपुर , पाँचों भाइयों का उल्लेख तथा रूप , प्रेम और विरह के वर्णन के बाद प्रस्तावना और तब कवि ने कथारम्भ की है । जायसी के ' पद्मावत ' में जिस प्रकार हीरामन शुक मार्ग प्रदर्शक का काम करता है , उसी प्रकार ' चित्रावली ' में परेवा मार्ग-प्रदर्शन का काम करता है ।

मध्ययुगीन सन्तों की परम्परा का अनुसरण करते हुए उस्मान ने मूर्ति पूजा का पूर्णतः विरोध किया है -

जो न आपु आपहि पहिचाना , आन क फेर कहाँ भुला जाना ।
जैसे कुकुर जानि कै देवा , बहुत करहिं पाहन कै सेवा ।
पाहन पूजि सिद्धि जिन पाई , ते नर देख हुआ पछिताई ।[7]

तत्कालीन सूफी कवियों की भाँति नख-शिख षट्ऋतु , बारहमासा का वर्णन करते हुए भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों तथा निवासियों की विशेषताओं का उल्लेख कवि ने बड़े रोचक ढंग से किया है । उस्मान ने बारहदीप के लोगों का भी वर्णन किया है । बंगाल और बंगालियों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कवि लिखता है -

सब कहँ अमिरित पांच हैं , बंगाली कहँ सात ।[8]
केला कांजी पान रस , साग माछरी भात ।

शुरू से अन्त तक कथा में काव्यरूढ़ियों और परम्पराओं का निर्वाह करते हुए कवि कुछ घटनाओं तथा चमत्कारपूर्ण तत्वों की संयोजना नवीन ढंग से करता है जैसे - गुटका मुंह लगाने से लोगों की दृष्टि से अदृश्य होना , अजगर द्वारा सुजान का निगलना , विरह ताप की न सहन करके पुनः उगल देना आदि ।

<u>प्रमुख पात्र और चरित्रांकन -</u>

प्रमुख पात्रों में नायक रूप में सुजान और नायिका रूप में चित्रावली के अतिरिक्त काव्य में नेपाल नरेश राजा धरनीधर , चित्रावली की माँ हीरा , सागरगढ़ की राजकुमारी कौलावती , देव , गुरु-पुत्र सुबुद्धि नामक ब्राह्मण , परेवा (दूत) , कुटीचर , सोहिल नामक राजा जैसे गौण पात्रों का भी उल्लेख मिलता है ।

सुजान -

चित्रावली का नायक सुजान समस्त गुणों से बाल्यावस्था में ही पारंगत हो गया था । व्याकरण , संगीत , ज्योतिष , भूगोल आदि विद्याओं में तथा व्यायाम कुश्ती , धनुर्विद्या , अश्वारोहण , आखेट आदि में वह चौदह वर्ष की अवस्था में ही निपुण हो गया था । इसी अवस्था में उसने प्रेम-पथ में पग रखा ।

चित्रावली के चित्र दर्शन से सुजान के हृदय में प्रेम की चिनगारी उमड़ पड़ी , स्वयं भी एक कुशल चित्रकार होने के कारण उसने चित्रावली की चित्रसारी में अपना भी चित्र बनाकर रख दिया ।

काव्य में सुजान की चारित्रिक दृढ़ता और चित्रावली के प्रति उसके प्रेम की एकता अद्वितीय है । कौलावती से विवाह करके भी वह अपने प्रेम को तब तक के लिए सुरक्षित रखता , जब तक उसे चित्रावली न मिल जाये । वह कौलावती से स्पष्ट शब्दों में कहता है -

जस तुम मानहिं सबै रस , पहँ लहु प्रेम सुभाउ ।
एक प्रेम रस होइ तब , जब चित्रावलि पाउ ॥[११]

चित्रावली के दर्शन के पश्चात् उसके हृदय में किसी अन्य के लिए स्थान नहीं रहता । नवविवाहिता का प्रेम और राज्य सुख भी उसे अपने मार्ग से विरत नहीं कर सके । प्रेम की पुकार के पीछे वह सर्वस्व त्याग कर चल देता है ।

चित्रावली -

काव्य की नायिका चित्रावली अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है । चित्रसारी में नायक सुजान उसके रूप सौन्दर्य को देखकर उस पर आसक्त हो सहसा कह उठता है -

भौंह धनुष बरुनी विषबाना , देखि मदन धनु गयउ लजाना ।
बरुनी बान गड़े बेधि होये । बहुरि न निकसे जब लहुँ जीये ।[१२]

सुजान के प्रति उसका प्रेम एक आदर्श प्रेम है । वह सुजान के चित्र को देखकर उस पर मोहित हो जाता है । और चित्रकार से वो आत्म सन्तोष करता है । माता द्वारा चित्र धो देने पर वह और भी विह्वल हो उठता है । एक ओर तो वह विरह में दुख होता जाता है दूसरी ओर सुजान की खोज में भी तत्पर रहता है ।

कौतुकी -

प्रतीकात्मक रूप में कौतुकी माया का अविद्याजनित रूप है ।

रस निरूपण -

रसपूर्ण कथा मनोहारी होती है अतः उसमान ने भी रसात्मकता को काव्य का शोभा मानते हुए चित्रावली में रसदृष्टि का पूर्ण निर्वाह किया है ।

चित्रावली में प्रमुख रूप से श्रृंगार रस विद्यमान है । इसके अतिरिक्त वीर , वात्सल्य , भयानक आदि अन्य रसों का भी वर्णन है ।

संयोग वर्णन -

अन्य सूफी कवियों की अपेक्षा चित्रावली के संयोग वर्णन में यथार्थ परक खुलापन अधिक है , जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है -

कुंवर रूपक कामिनि मन माना , सिंधु रूपति बाचा परमाना ।
रही अंक ईश्वर मुसुकाई , ले सुजान तब अंक में लाई ।
घूंघट खोलि रूप जब देखा , सो देखा जेहि होय सुरेखा ।
अधर घूंट दो अमिरित पीवा , जेहि के पिअत अमर भा जीवा ।
राहु गरास कलानिधि कांपा , लोचन पले जानहु पट झांपा ।
पुनि मन्मथ रति फागु संभारी , खोलि कुच कनक पिचकारी ।
रंग गुलाल दोऊ ले भरे , रोम रोम तन भीतर करे ।

स्वेद कंप रोमांच तन , आंसु फरन सुरभंग ।
प्रथम समागम जो कियो , शिथिल भा सब अंग ।[13]

कहना न होगा कि यह वर्णन भारतीय दृष्टि से अमर्यादित और अश्लील है । शास्त्रीय दृष्टि से इसमें संचारियों , उद्दीपनों और अनुभावों का भरपूर उपयोग हुआ है ।

<u>वियोग वर्णन -</u>

कवि उसमान ने नायक एवं नायिका दोनों का विरह वर्णित किया है । मूर्छा में जागने पर सुजान की मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कवि कहता है -

देखहिं कुंवर परा बिकरारा , हाथ पांव सिर कछु न संभारा ।
उभ उसास लेइ जो रोवा , देखत सैन प्रान जनु खोवा ।
लेइ मसारि से बैठे तीरा , रोवै कटक देखि मुख औरा ।
पूछे बातन उतर न देई , छिन छिन ऊंच सांस पै लेई ।

अरुन बदन पियराइ गा , रुधिर सुखि गा गात ।
रहा कांपि लोचन दोउ कहै न पूछे बात ।[14]

उपर्युक्त प्रिय के चित्र की उपस्थिति में जो चित्रशाला चित्रावली को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी , वही उसकी अनुपस्थिति में काली नागिन के समान प्रतीत होती है -

चित्रावलि कहं सो चित्रसारी , जानहु भई भुअंगिनि कारी ।[15]

पर्वों एवं त्योहारों पर चित्रावली का विरह और भी तीव्र हो जाता है । कार्तिक मास में दीपावली के अवसर पर लोग आनन्दित होते हैं , किन्तु विरहिणी की विरहाग्नि और प्रज्वलित होती है -

मानहिं परब देवारी लोगू , पूजहि गाइ करहिं रस भोगू ।
का हेरान रहि उमग सोहाई , हम तन दीन्ह दवा जु लाई ।

परम्परानुसार कवि ने ' बारहमासा ' के आधार पर वियोग श्रृंगार का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है ।

वात्सल्य रस -

सुजान की व्याधि देखकर माता का विलाप वात्सल्य रस सुन्दर निदर्शन है -

उठि अकुलाइ माता दुख भरी , कुंवर पास आई दुखारी ।
ओढ़ि ताउ के बैठी चीरा , पूछै बात देखि मुख पीरा ।
नैन उघारु पूत कछु बोरा , केहि कारन भा कौन अरोरा ।
काहि बात भयौ मुख राता , कछु बात बतिआरो माता ।
कहाँ एक दिन मनि दुख फेरा , नैन मूंदि कस करहि अंधेरा ।
तन छन घट हुइ बाढ़ कसेरो , कछु कुम्हिलाइ देखि मुख देरो ।
पूत पीर कछु कहु किउ तोरा , नैन खोलु करु जात अंजोरा ।
तोरि पीर कि औषध , जौ रहि जग महं होइ ।
कहौ दुख्य किउ दइ के बेगि मंगावौं सोइ ।[96]

वीर रस -

सोनिल नरेश के सागरगढ़ पर आक्रमण के फलस्वरूप सुजान ने अपने पराक्रम से उसे मार भगाया अतः सोनिल खण्ड में वीर रस का पूर्ण परिपाक मिलता है ।

भयानक रस -

सुजान के पराक्रम को सुनकर विद्रोहन का भय भयानक रस का सुन्दर निदर्शन है -
सुनि के राजा थकि रहा , रुधिर सुखि गा गात ।[97]
हिएं थरथरी पेट डर , मुख नहिं आवै बात ।

अलंकरण-शिल्प -

काव्य में अधिकांशतः उपमा , रूपक , उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारों का ही प्रयोग हुआ है ।

ज्ञानदीप -

जहाँगीर के शासनकाल में सन् १६१८ ई० में शेखनबी ने ज्ञानदीप नामक प्रेमाख्यान की रचना की, जिसमें राजा ज्ञानदीप और देवयानी की प्रेमकथा वर्णित है।

कथावस्तु -

नैमिषार के राजा शिरोमनि के पुत्र ज्ञानदीप को शिकार का बड़ा शौक था। एक दिन शिकार खेलते समय उसकी भेंट सिद्धनाथ योगी से हुई जिसने उसे संसार से विमुख करना चाहा। शिष्य बनाकर उसने उसे योग की ओर आकृष्ट करने के लिये संगीत की शिक्षा दी। तदनुसार ज्ञानदीप योगी के रूप में विचरण करने लगा।

विद्यानगर का राजा सुरदेव संगीत प्रेमी था और वह अक्सर संगीत का आयोजन किया करता था। राजा के देवयानी नाम की एक कन्या थी। संगीत आयोजन के योगी वेश में आये ज्ञानदीप को देखकर सुरज्ञानी उस पर मोहित हो जाती है और अपनी सखी देवयानी से जाकर सारा वृत्तान्त कहती है। सुरज्ञानी द्वारा उसके सौन्दर्य का वर्णन सुन देवयानी उस पर आसक्त हो विरह सहने लगती है, परन्तु सुरज्ञानी की मदद से ज्ञानदीप भी देवयानी के प्रति आकर्षित हो जाता है। इस प्रकार नित्य ही ज्ञानदीप और देवयानी का मिलन होने लगता है। राजा सुरदेव को इसकी सूचना मिलने पर राजा ने ज्ञानदीप को एक पेटी में बन्द करके नदी में बहा दिया। बहती-बहती ज्ञानदीप मानराय की राजधानी मानपुर पहुंचा। सारा वृत्तान्त जानकर निःसंतान राजा मानराय ने उसे पुत्रवत् रख लिया। उधर देवयानी ज्ञानदीप के विरह में तिल-तिल जलने लगी। ज्ञानदीप की पुनः प्राप्ति के लिये राजा सुरदेव ने स्वयंवर का आयोजन किया। सूचना पाकर मानराय भी ज्ञानदीप के साथ

वहाँ पहुँचा। देवयानी ने ज्ञानदीप का वरण किया। दोनों का विवाह हो गया। ज्ञानदीप के अत्याधिक विरह से पीड़ित होकर राजा मानराय की मृत्यु हो गई। ज्ञानदीप को मानराय का अन्तिम संस्कार करने मानपुर जाना पड़ा। देवयानी पुनः विरहाग्नि में जलने लगी। योगिन का वेश धारण कर सुरज्ञानी मानपुर पहुँची और ज्ञानदीप को साथ ले विजयनगर लौट आई। देवयानी को साथ ले स्वदेश लौटते समय मार्ग में ज्ञानदीप ने सुन्दरसेन पर आक्रमण किया जो छलपूर्वक देवयानी को अपनाना चाहता था। सुन्दरसेन को पराजित कर ज्ञानदीप देवयानी के साथ अपने माता-पिता के पास पहुँचा। ज्ञानदीप और देवयानी को साथ देखकर माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इस प्रकार ज्ञानदीप एक कामदा कही गई है।

<u>वस्तु विश्लेषण -</u>

अन्य कथाओं के समान ग्रन्थारम्भ में कवि ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना, मुहम्मद साहब की वन्दना, शाहेवक्त के रूप में जहाँगीर की भूरि-भूरि प्रशंसा और अन्त में ग्रन्थ रचना के उद्देश्य का उल्लेख किया है -

> पोथी बाँध नयी कवि कही। जो कुछ सुनी कहूं से रही।
> एक रस पाइ लिखेउ समाना। जो आनन्द किय होइ निदाना।
> किनतो एक लिखेउ विधि पाही। मिटै पाप, पुन्नि उपजै माहीं।[1]

अन्य कथाओं की अपेक्षा ज्ञानदीप में प्रेमोत्पत्ति के मूल में प्रत्यक्ष दर्शन को माध्यम बनाया गया है। और इस प्रत्यक्ष-दर्शन का माध्यम गुरु सिद्धनाथ हैं। कथानक को गति देने के लिये शंकर की कृपा को अधिक अपनाया गया है। नायक की उत्पत्ति एवं नायिका मिलन दोनों ही अवसरों पर शंकर जी की कृपा ही अभीष्ट सिद्ध करती है।[2] कथा में आकस्मिक तत्वों की योजना भी कम नहीं है। मन्त्र-अभिमंत्रित अक्षत, मन्त्र-सिद्धि, शिव-कृपा, वनस्पतिरानी आदि आकस्मिक

तत्वों द्वारा कथा में कौतूहल-वृद्धि हुई है ।

कवि ने तत्कालीन समाज में प्रचलित शकुनों का भी वर्णन किया है , इसके अतिरिक्त कवि ने गठबन्धन , कोहबर आदि वैवाहिक संस्कारों का उल्लेख किया है । कोहबर के लिये जाते हुए वर-कन्या का मार्गावरोध , उस कन्या को कूटी सुपारी से युक्त पान खिलाना आदि क्रियाओं का उल्लेख करना भी कवि नहीं भूला है ।

प्रमुख पात्र और चरित्रांकन -

ज्ञानदीप -

काव्य में प्रमुख पात्र के रूप में ज्ञानदीप का चरित्र विशेष रूप से उभरा है । प्रथम दर्शन के अनन्तर ही देवयानी उस पर आसक्त हो प्रेम विह्वल हो उठती है । इससे पूर्व देवयानी सखी सुरज्ञानी के मुख से ज्ञानदीप के गुणों का श्रवण कर सुध-बुध खो बैठती है और स्वयंबर के समय ज्ञानदीप का ही वरण कर दाम्पत्य सूत्र में बंध जाती है ।

कर्तव्य परायण होने के कारण देवयानी से विवाह करके भी ज्ञानदीप अपना कर्तव्य नहीं भूलता और भानराय के परलोक सिधारने पर उनका अन्तिम संस्कार करने भानपुर जाता है । भानराय को तीन सौ साठ रानियों के सती हो जाने पर पुत्री दामावती का योग्य वर से विवाह कर स्वयं उनका शासन भार संभालता है ।

इसी प्रकार राजा सुरसेन ने जब ज्ञानदीप को बन्दी बनाकर उससे उसी के बारे में पूछा तो उसने युक्तिपूर्वक यही कहा कि वह योग बल से इन्द्र की सभा में उड़कर जा रहा था । उसने अपने प्रेमोन्माद का वर्णन नहीं किया और शान्ति पूर्वक दण्ड सहन किया ।

रस-निरूपण -

काव्य में शृंगार रस का प्रधान रहा है। शृंगार रस के अन्तर्गत वियोग को चर्चा सर्वाधिक मिलता है।

संयोग वर्णन -

संयोग वर्णन के अन्तर्गत नायक-नायिका के मिलन का वर्णन मात्र उपलब्ध होता है -

कुल को दीपक कमल पियारो , परबल काम कोन्ह अधिकारी ।
मदन बाँधि कुछ सकुच न आनी , अंग-अंग जाँपि चलो देवजानी ।
सनिक सो तन अंग होय उघारो , चन्द्र जुरति प्रगटे उजियारो ।
मोह बचन मधि सोभित अंग , सोहो मरो काक जस संग ।
धाय चलाधि जिम दामिनि कैसो , कुरल मुरत अधिकारी तैसो ।

एक स्थान पर संयोग सुख की सुखद स्मृति का मनोरम दृश्य निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

कनक भेष रचि रहा कुराई , निश पति निका नहीं देखराई ।
हरियर फुलनों पर बहुं बौरा , राजहि सखा बिराजि हिंडोरा ।
फुलहिं औ मलार रस गावहिं , रोमि कंत सो रोकि झुलावहिं ।
दंपति मदन चढहिं संग्रामा , रति संतोष चाहि बर बामा ।
मानिनि तिय किय मुख अनुसारो , ताय बोध नहिं मानिहिं हारो ।
मुख सकेत सब रैन बिताई , बैन चाउ रस भाउ बढाई ।
सारंग मोर पपीहा , विरह मरे सुख बैन ।
सुनि सुनि सुख संयोगिनि , देखि-देखि पिय नैन ।

वियोग वर्णन -

वियोग वर्णन के अन्तर्गत ज्ञानदीप के सौन्दर्य पर मुग्ध हो देवजानी की व्यथा " पूर्वराग " का सुन्दर चित्रण है -

पुहुपावती रचनाकाल सन् १७२५ ई०

कथानक -

काशीपुर के राजा बालादित्य का पुत्र मानिकचन्द न्यायप्रिय और कुशल प्रशासक था । एक दिन राजसभा में पद्मिनी स्त्रियों की चर्चा चली । सिंहलद्वीप की पदमावती की भी चर्चा हुई । एक ब्राह्मण ने कहा कि पद्मिनी स्त्रियों का उत्पत्ति स्थान केवल सिंहलद्वीप ही है , इस पर एक मालिन ने कहा कि जम्बूद्वीप में रूपनगर के राजा रूपसेन और रानी कौशिल्या की पुत्री पुहुपावती देवी ही पद्मिनी है । मालिन द्वारा वर्णित पुहुपावती के रूप सौन्दर्य को सुनकर मानिकचन्द अत्यन्त प्रभावित हुआ ।

एक दिन एक चित्र बेचने वाली मालिन पुहुपावती के पास चित्र बेचने आयी । पुहुपावती उसके पास मानिक चन्द का चित्र देखकर मुग्ध हो गई और जुगीत के मन्दिर में जाकर चित्र के अनुरूप ही वर पाने की कामना करने लगी । जब वह मन्दिर से लौटकर रात को घर में आकर सो गई तो स्वप्न में उसने मानिक चन्द के दर्शन किये । एकाएक नींद उचट जाने पर प्रेमाकुल पुहुपावती ने मालिन से उस चित्र के विषय में पूछा । मालिन ने मानिक चन्द का पूरा परिचय दिया । पुहुपावती और मानिकचन्द दोनों का मिलन हुआ । विवाह के अनन्तर दोनों सुखपूर्वक रहने लगे । उनके देवनाथ नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ ।

वस्तु विश्लेषण -

पुहुपावती की कथा पूर्ण काल्पनिक है , अन्य प्रेमाख्यानों की अपेक्षा इसमें नायक-नायिका के मिलने में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती । ग्रन्थारम्भ में कवि ने निर्गुण ब्रह्म की महिमा हजरत मुहम्मद तथा उनके चार मित्रों की प्रशंसा तथा शाहेवक्त का गुणगान किया है । कथा के मध्य कवि ने काशीपुर नगर वर्णन , रूपनगर वर्णन तथा रनिवास वर्णन विस्तार से किया गया है । कथा सुखान्त है ।

दुहुं एक होहि सुन्दर सोई , जस रूपवंत चाहि कछु होई ।[3]

पुहुपावती के " अलौकिक " रूप सौन्दर्य के सम्मुख अनेक राजाओं ने योग का धारण कर लिया -

महाराज यह ऐसी नारी । जेहि कारन बहु भये भिखारी ।[4]

पुहुपावती के अतिरिक्त काव्य में मानिकचन्द का उल्लेख भी प्रमुख पात्र के रूप में किया गया है । मानिकचन्द न्याय प्रिय एवं कुशल शासक था । एक दिन राजदरबार में एक ब्राह्मण द्वारा पुहुपावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुन उस पर आसक्त हो उसे प्राप्त करने के लिये विकल हो उठा ।

प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त काव्य में गौण पात्रों के रूप में मानिकचन्द का पिता तालसाहि , पुहुपावती का पिता पद्मसेन और माता कौशल्या , ब्राह्मण , मालिन (कुटनी) एवं पुत्र देवीनाथ का उल्लेख मिलता है ।

<u>रस-निरूपण -</u>

काव्य में शृंगार रस ही प्रधान है । शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन मिलता है ।

<u>संयोग वर्णन -</u>

अन्य सूफी प्रेमाख्यानों की भांति संयोग वर्णन अश्लील नहीं है बल्कि उसमें काव्य चमत्कार विशेष दर्शनीय है -

विरह विदग्ध जो परे फफोला, है उस लखै अंकुर कोला ।
रस गमक बहु करहिं बनाई , सोत संयोग स कहे न जाई ।
कुचि मलयागिर भी कलगारि , भी उपरि घट लाग है धारि ।

कासिमशाह कृत हंस जवाहिर रचनाकाल सन् १७३६ ई०

कथावस्तु -

बलखनगर के राजा बुरहान को ख्वाजा खिज्र के आशीर्वाद से पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई , जिसका नाम हंस था । कुछ समय पश्चात् राजा बुरहानशाह का देहावसान हो जाने पर देश में अवैध अशान्ति फैल गई । अल्पवयस्क होने के कारण हंस बन्दी बना लिया गया । किन्तु माँ किसी प्रकार उसे बचाकर बाहर ले आई और बलख छोड़ कर रूम देश चली गई और आनन्द रहने लगी ।

एक दिन हंस ने स्वप्न में एक सुन्दरी को देखा जिसके सौन्दर्य पर वह विमोहित हो गया । उधर चीन देश के राजा आलमशाह की रानी मुबारकार ने जवाहिर नाम की एक पुत्री को जन्म दिया । यथासमय उसके पिता आलमशाह ने सुल्तान भोलाशाह के पुत्र दिनौर से उसका विवाह निश्चित कर दिया । जवाहिर को " शब्द " नामक सखी को दिनौर बिल्कुल पसन्द नहीं था , वह पंछी रूप में उसके लिये योग्य वर की तलाश में उड़ गयी । रूम पहुंचकर उसने हंस के ही समीप बैठकर अन्य पंछियों से जवाहिर के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया जिसे सुनकर हंस बहुत अधिक प्रभावित हुआ और जवाहिर को ही अपनी स्वप्न सुन्दरी मानकर विरहाग्नि में जलने लगा और योगी वेश धारण कर उसे प्राप्त करने के लिये प्रेम पथ पर अग्रसर होने को तैयार हो गया । किन्तु " शब्द " ने उसे धीरज रखने को कहा और स्वयं जवाहिर के पास उड़ कर चली गई । और जाकर सारी बात बताई । किन्तु पिता के शिकायत कर देने पर रानी ने " शब्द " को बंदिनी बना लिया । इसी बीच जवाहिर का विवाह दिनौर के साथ हो होने की तैयारियां होने लगीं परन्तु परियों ने दिनौर को सोते समय बरात से उठाकर हंस को उसके स्थान पर बैठा दिया । इस प्रकार हंस और जवाहिर का विवाह हो गया । आनन्दकेलि के पश्चात् दोनों सो गये तो परियां फिर हंस को वहाँ से उठाकर ले गई और हंस की जगह दिनौर को लिटा आईं ।

जवाहिर के छिनीर को पति रूप में स्वीकार न किए जाने पर छिनीर प्रतिशोध हेतु गुरु मंछनाथ से जा मिला । उधर हंस और जवाहिर दोनों विरह व्यथित रहने लगे । जवाहिर की माता की आज्ञा से " शब्द " पुनः उड़कर हंस के पास गई । शब्द द्वारा जवाहिर का वृत्तान्त सुनके हंस मार्ग की अनेक बाधाओं को पार कर हंस जवाहिर से मिलकर आनन्दमय जीवन बिताने लगा । कुछ समय पश्चात् हंस जवाहिर के साथ अपने देश की ओर चल पड़ा । मार्ग में अवसर पाकर गुरु मोरनाथ के शिष्य ने उन्हें पुनः अलग कर दिया । हंस योगी वेश में भटकता हुआ भोलाशाह के यहाँ पहुंचा , जहाँ उसकी पुत्री (छिनीर की बहन) से उसका विवाह हो गया । " शब्द " के प्रयत्न से जवाहिर भी उसे मिल गयी । इस प्रकार हंस दोनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा । जवाहिर से उसे " स्थोन " नामक पुत्र भी प्राप्त हुआ ।

अन्त में मारदीला के आक्रमण के फलस्वरूप हंस मार डाला गया । उसकी दोनों पत्नियों ने भी प्राण त्याग दिये ।

<u>वस्तु विश्लेषण -</u>

हंस जवाहिर का कथानक लोक प्रचलित कथानक पर आधारित है । शाहेवक्त की प्रशंसा करते हुए कवि ने दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के रूप-सौन्दर्य , ऐश्वर्य एवं वीरता का गुणगान किया गया है -

रूपवन्त दरसन सुठराता , भागवन्त वह कीन्ह विधाता ।
द्रव्यवन्त धर्म सुख पूरा , ज्ञानवन्त अरु गर्व सूरा ।
शील बलवन्त कटक बड़ि भीरा , देसवन्त जिमि बहुं बीरा ।

बैठा आप सुपाट पर , राय करैं सुख चैन ।
सुखी भई सब पिरथमी , राय रंक धन लेन ।[1]

'स्तुति खण्ड' के अन्तर्गत कवि ने पीर करामतशाह की वन्दना की है। तत्पश्चात् पीर मुहम्मद और पीर अशरफ का उल्लेख किया गया है -

सुमिरौं नाम करीम सो पीरा। जेहि का नाव चढ़ि पहि तीरा।

\+ + +

ते हि का ज्योति में दीपक बारा। पीर मुहम्मद जग उजियारा।

\+ + +

फकीन्हा निरमल गुरु, अरब पुकारे पीर।
तिन पर दीपक मुकता, अशरफ जीत शरीर।[2]

घटनाओं का संगठन परम्परानुसार किया गया है। आरम्भिक तत्वों की योजना में 'शब्द' रूपी पत्री का उल्लेख मिलता है। अन्य प्रेमाख्यानों में 'गुरु' या मित्र सिद्ध का उल्लेख पथ प्रदर्शक के रूप में मिलता है किन्तु 'हंस जवाहिर' में गुरु गोरखनाथ की चर्चा विरोधी तत्व के रूप में की गई है। सामाजिक संस्कारों के रूप में काव्य में जन्म, स्नान, विवाह आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। तत्कालीन समाज में जन्मोत्सव पर बधाई एवं सोहर तथा विवाह के अवसर पर सुहाग गाने का प्रचलन था जिसका कवि ने सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।[3] अन्य सूफी कवियों ने हिन्दू पंडितों को विवाह संस्कार सम्पादित करते हुए दिखाया है परन्तु कासिमशाह ने अपने प्रेमाख्यान में 'काजी' को यह कार्यभार सौंपा है।[4]

काव्य का सम्बन्ध-निर्वाह परिपुष्ट है।

प्रमुख पात्र और चरित्रांकन -

जवाहिर -

'शब्द' द्वारा चीन देश के राजा आलमशाह की पुत्री जवाहिर के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन सुनकर हंस आसक्त हो उस पर मोहित हो जाता है। और निरन्तर उसी सौन्दर्य का ध्यान करने लगता है। सखियों के साथ जाती हुई जवाहिर के सौन्दर्य को देखकर पक्षी भी आश्चर्य चकित हो उठते हैं -

चला चन्द फुलवार ज्यों , लिये नखत सब नार ।
पंखी देखि भुलान ` सुधि , रहिगे पंख पसार ।[५]

काव्य में स्थान-स्थान पर जवाहिर के ईश्वरीय स्वरूप का भी दर्शन होता है -

जग महं छाई किरन सब , ज्योति मांझ कैलास ।[६]
तपसी थकित जगत के , बैठ सौ तेहि की आस ।
सब जग वहि कर आशा करई । मग कर लिये बास पुनि लेई ।[७]
कौ जिव देय औ साधै योगू । जेहि पावै उस अमृत भोग ।
हारे हिये सौ जगत चितेरा । लिखि नहिं सकै रूप तहि केरा ।[८]

हंस -

एकनिष्ठ प्रेमी हंस जवाहिर को स्वप्न में देखकर उसके प्रति प्रेम की चिनगी सुलग जाने के पश्चात् संसार के प्रति उदासीन रहने लगता है । भोलासाह की पुत्री से विवाह हो जाने पर भी हंस के मन जवाहिर के प्रति प्रेम कम नहीं होता । उसके प्रेम में एकनिष्ठता के पूर्ण दर्शन होते हैं । काव्य में नायक-नायिका के अतिरिक्त विरोधी तत्व के रूप में गुरु गोरखनाथ का उल्लेख भी मिलता है ।

रस-निरूपण -

` हंस जवाहिर ` श्रृंगार रस प्रधान काव्य है ।

संयोग वर्णन -

संयोग वर्णन में काव्य सौन्दर्य एवं भावात्मक मिलन के चित्रण अधिक हैं ।

देखसि कन्त लाग अलसाई । तब धन बिहंसि सेज पर आई ।
सोई लाय कमल दे बांहा । तबहुं न चख खोली पुनि नाहा ।
गहै सो लाग हिये लपटाई । जेहि विधि फूल न बास सुहाई ।

वियोग वर्णन -

कासिमशाह कृत हंस जवाहिर में ' बुद्ध ' द्वारा हंस के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुनकर जवाहिर उस पर आसक्त ही नहीं होती वरन् विरहाग्नि में जलने लगती है। विवाहोपरान्त पुनः वियोग हो जाने पर वह अपना सुख-दुख भूलकर केवल हंस के पुनरागमन की प्रतीक्षा में अपना समय व्यतीत करती है और पतिव्रता धर्म का पूर्ण पालन करती हुई कभी अपनी विरह-दशा पर शोक प्रकट करती है और कभी प्रियतम के कष्टों का स्मरण कर चिन्तित हो जाती है। वह प्रिय से मिलने के लिए कितना बेचैन है, उसकी उस बेचैनी का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

भय अधिराति उठहु पछिताई। बन आंगन तन भीतर जाई।
मन सोचत बीते दिन राता। कबहु मांझ जल दीप बुझाती।
ठाढ़ी व्याकुल अटा पर, जस चकोर में रैन।
निरखत पंथ दुख कठिन, आंसु ढरैं दोउ नैन।[12]

उसकी यह व्यथा धरती एवं आकाश तथा स्वर्ग में व्याप्त है -

उठी आग नहिं जाय बुझाई, धरती लाग स्वर्ग का धाई।[13]

इतना ही नहीं ' बुद्ध ' जब जवाहिर का विरह-सन्देश लेकर हंस के पास जा रहा था तो मार्ग में पड़ने वाले वनखण्ड जल जाते हैं, सरिताएं सूख जाती हैं, पक्षियों का वर्ण श्यामल हो जाता है -

ले सन्देश चलो जेहि बीरा, विरह लोक धाई सबु बीरा।
सुलग जाय विरह की धारा, वनखण्ड जरे भुवि भारा।
पंखी कहूं न बाचे कोई, जो बाचे तन स्याम सो होई।
सूखे सरवर सरिता पानी, जेहि दिसि जाय पंखी उड़ानी।[14]

अलंकरण-शिल्प -

काव्य में अधिकांशतः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति और व्यतिरेक आदि अलंकारों का ही प्रयोग मिलता है।

नूरमुहम्मद कृत इन्द्रावती रचनाकाल सन् १७४४ ई०

कथावस्तु (पूर्वार्द्ध) -

कालिंजर के राजा भूपति के पुत्र का नाम राजकुंवर था । एक रात स्वप्न में राजकुंवर ने एक अत्यन्त रूपवती राजकुमारी को देखा , उसके सौन्दर्य पर मोहित हो राजकुंवर राजकार्य छोड़कर विरहाग्नि में जलने लगा । मंत्री बुद्धसेन ने उसकी उदासीनता को दूर करने के लिये कई युक्तियां सोचा किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुई । अन्त में फुलवारी में ठहरे हुये एक तपस्वी ने राजकुंवर के स्वप्न का अर्थ विचार कर बताया कि राजकुंवर की स्वप्न सुन्दरी समुद्र पार बसे हुये आगमपुर नगर के राजा जगपति की परम सुन्दरी कन्या इन्द्रावती है ।

राजकुंवर योगी रूप धारण कर आगमपुर की ओर चल पड़ा । मार्ग में रस तथा भोग प्रधान बाधक बन पड़े । किन्तु राजकुंवर आगे बढ़ता हुआ इन्द्रावती की मन फुलवारी प्रेमपुर पहुंचा । उधर इन्द्रावती ने स्वप्न में एक योगी को अपनी मांग में सिन्दूर भरते हुए देखा । एक दिन बेला नामक मालिन द्वारा मन फुलवारी में इन्द्रावती की भेंट राजकुंवर से हुई । प्रथम दर्शन में ही राजकुंवर इन्द्रावती को देखकर मूर्छित हो गया । अनेक प्रयास करने पर भी जब राजकुंवर की मूर्छा नहीं टूटी तो इन्द्रावती एक पत्र में " चित्र कहानी " नामक एक कथात्मक लिखकर उसके पास छोड़ कर चली गई ।

" चित्र कहानी " स्वयं अपने में एक उपदेश पूर्ण कथा थी । जिसमें मन का रूप पर मुग्ध न होकर प्रीति की उपासना का भाव था एवं सुरति शत्रु के पराजय करने के हेतु बुद्धि , साहस , क्रिया एवं आनन्द आदि सद्गुणों की उपासना थी ।" " चित्र कहानी " के इस कठिन मर्म को मंत्री बुद्धसेन ने उसे समझाया ।

एक दिन राजकुंवर ने अकस्मात् फरोखे पर आई चन्द्रावती को पुनः देखा जिससे उसकी प्रेमवेदना तीव्रतर हो उठी और वह समुद्र से प्रवालमोती निकालने के लिए आतुर हो उठा किन्तु कुंभराय द्वारा बंदी बना लिया गया। राजकुंवर ने एक तोते के द्वारा चन्द्रावती के पास अपने बंदी होने का समाचार भेजा। कृष्ण नामक राजा द्वारा कुंभराय मार डाला गया। बन्धन मुक्त हो राजकुंवर सागर से प्रवाल मोती निकाल लाया। प्रवाल मोती प्राप्त हो जाने पर राजकुंवर ने उसे चन्द्रावती के पिता जगपति को दिया जिस पर प्रसन्न होकर जगपति ने उसका विवाह अपनी पुत्री चन्द्रावती से कर दिया।

यहीं पर कथा का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्द्ध -

राजकुंवर और चन्द्रावती के समागम से ही इसका आरम्भ होता है। एक ओर राजकुंवर चन्द्रावती के साथ मिलन सुख में लीन था दूसरी ओर राजकुंवर की पहली पत्नी " सुन्दर " कालिंजर में विरहाग्नि से दग्ध हो रही थी। राजकुंवर के कालिंजर से प्रस्थान करते समय राजकुंवर की पूर्व पत्नी सुन्दर गर्भवती थी उसने " कीर्तिराय " नामक पुत्र जन्म दिया। विरह-विदग्ध सुन्दर की उसकी घड़ियाँ राजकुंवर से पुनः मिलन की दिनरात आशा बंधाती रहती थीं। एक दिन " लोम " नामक कुटिल स्त्री के कीर्तिराय पर टोना करने पर रानी सुन्दर ने उसे देश निकाला दे दिया। प्रतिशोधवश उसने बैरपुर के राजा कामसेन से रानी सुन्दर के रूप सौन्दर्य का बखान किया। कामसेन ने मोहिनी-मालिन को योगिन के वेश में रानी सुन्दर के पास भेजा परन्तु सुन्दर ने उसे भी अपमानित किया। क्रोधित हो कामसेन ने कालिंजर पर आक्रमण कर दिया। रानी सुन्दर ने सफलता पूर्वक सामना किया, कामसेन मारा गया। दुखी हो सुन्दर ने राजकुंवर के पास

सन्देश भेजा , फिर सुन्दर राजकुंवर इन्द्रावती के साथ स्वदेश लौट आया । सुन्दर और इन्द्रावती दोनों राजकुंवर के साथ प्रेमपूर्वक रहने लगीं । कुछ समय पश्चात् राजकुंवर की मृत्यु हो जाने पर उसकी दोनों रानियां भी उसके साथ सती हो गयीं ।

<u>वस्तु विश्लेषण -</u>

नूरमुहम्मद कृत इन्द्रावती की कथा पूर्णतः आध्यात्मिक है । काव्य का नायक राजकुंवर साधक है , गुरुनाथ तपस्वी मार्ग प्रदर्शक एवं आठ सखा शरीर के साथ रहने वाले इन्द्रिय विकार हैं । राजकुंवर की रानी सुन्दर सांसारिक मोह का आकर्षक स्वरूप है । बुद्धिसेन ज्ञान है , जो मोक्ष की प्राप्ति में सहायता देता है । इन्द्रावती सौन्दर्ययुक्त , परमशक्ति सम्पन्न ईश्वरीय ज्योति का प्रतीक स्वरूप है तथा मार्ग के सात वन वासनाओं पर विजय के प्रतीक हैं ।

देवस्थापुर में आठों मित्रों को राजकुंवर छोड़ देता है , जो साधना मार्ग में उस बिन्दु तक पहुंचने का प्रतीक है जहां पहुंचकर साधक देह-सम्बन्धी वासनाओं से ऊपर उठ जाता है । देवस्थापुर में दैहिक वासनाओं के त्याग के पश्चात् राजकुंवर " कायापति " के साथ समुद्र पार करके " त्रिपुर " पहुंचता है । त्रिपुर अर्थात् आत्मा का वह स्थान , जहां साधक आत्म-केन्द्रित होकर अपने हृदय रूपी दर्पण में ईश्वर के दर्शन करने का प्रयत्न करता है ।

इस आत्मकेन्द्रित अवस्था के बाद साधक को आगमपुर अथवा उस परम सौन्दर्य के निवास स्थान की प्राप्ति का आभास होने लगता है और उस परम सौन्दर्य का आभास पाकर साधक चेतना विहीन हो जाता है । काव्य में चेता , प्रेमजोगी और बुद्धिसेन आदि पात्र अध्यात्म-मूलक हैं । राजकुंवर तथा इन्द्रावती

का मिलन आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा-परमात्मा के मिलन का प्रतीक है।[2]
ग्रन्थारम्भ में कवि ने निर्गुण-ब्रह्म, रसूल, मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रों तथा शाहेवक्त के रूप में 'मुहम्मदशाह' की भूरि-भूरि प्रशंसा[3] करने के पश्चात् पवन की महिमा का वर्णन किया है।

कवि ने प्रस्तुत कथा के साथ, कई अंतर्कथाओं की संयोजना भी की है, इनमें से कुछ कथाएं प्रस्तुत कथा की गति में सहायक सिद्ध होती हैं। ऐसी कथाओं के अन्तर्गत रानी सुन्दर की सखियों का तोते की कहानी कहना तथा सुजान नाम के तोते के द्वारा 'वल्लभ और प्रेमा' की प्रेम कहानी का वर्णन प्रस्तुत है।

कथा दुखान्त होते हुए भी अपनी विशिष्टता रखती है। जायसी ने अपनी 'पद्मावत' की ऐतिहासिक सत्य की पुष्टि के लिये दुखान्त बनाया। कुतुबन ने 'मृगावती' का दुखद अन्त, जीवन का अन्त मृत्यु ही है, यह सत्य प्रदर्शित करने के लिये किया किन्तु 'इन्द्रावती' का अन्त इन सबसे भिन्न है। दूसरे के दुख एवं शोक में सहानुभूति का दिखाना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। अतः राजकुंवर 'प्रेमा एवं वल्लभ' की शोक कथा को सुनकर इतना अधिक करुणा विभूत हो जाता है कि वह फिर प्रसन्न होकर गति या आनन्द लाभ नहीं करता और रुग्ण होकर इस संसार से चला जाता है। उसकी दोनों पत्नियां भी उसकी मृत्यु पर सती हो गईं।[4]

प्रमुख पात्र और चरित्रांकन -

काव्य में आदि से अन्त तक रहने वाले पात्रों में इन्द्रावती राजकुंवर तथा सुन्दर प्रमुख पात्र हैं। इनके पिता मालिन, कुलीन मंत्री एवं तपस्वी गुरुनाथ एवं जगपति के अतिरिक्त कीर्तिराय दुर्जनराय लोभ नामक कुटनी, रूप लोलुप कामसेन तथा इन्द्रावती की सखियों का भी उल्लेख मिलता है।

उसी रूप का परम-ज्योति है सूर्य तथा चन्द्रमा प्रकाशमान है। रात्रि अपने असंख्य नेत्र रूपी तारों से उसी के सौन्दर्य का दर्शन करता है। यह संसार का कण-कण उसी सौन्दर्य पर मुग्ध है। और संसार का प्रत्येक कण उसका दर्शन करना चाहता है -

मुकुट की छाया सम होई, जानौं आप परी मुख सोई।[6]

इसी प्रकार प्रेमा मालिन राजकुंवर से चन्द्रावती के दिव्य रूप सौन्दर्य की चर्चा करती है, उसमें चन्द्रावती के परमात्म स्वरूप का ही झलक दिखाई देती है -

सोती मुख परभात दिखावै, सीति देत साँझ होइ आवै।
ऐसु रूपवन्ती सुन्दर आहै, बिनु देखें मन लागि सराहै ॥[10]

अतएव लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में चन्द्रावती का चरित्र एक प्रेमिका का चरित्र है।

सुन्दर -

जहाँ काव्य में " चन्द्रावती " का चरित्र प्रेम-भावना के कारण सराहनीय है, वहाँ " सुन्दर " राजकुंवर की विवाहिता पत्नी का चरित्र उसकी त्याग भावना के कारण अवर्णनीय है। राजकुंवर के कालिंजर प्रस्थान के समय रानी सुन्दर रोती नहीं क्योंकि इससे उसे प्रिय के प्रस्थान में अपशकुन होने का भय था। इस प्रकार कवि नूर मुहम्मद ने रानी सुन्दर को प्रोषितपतिका के रूप में चित्रित किया है।

रस-निरूपण -

सम्पूर्ण काव्य में शृंगार रस की ही अभिव्यक्ति दिखायी है।

संयोग शृंगार -

कवि नूर मुहम्मद ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत षट्ऋतु वर्णन उद्दीपन की दृष्टि से किया है। पावस ऋतु में संयोगिनी चन्द्रावती के संयोग सुख का सुन्दर उदाहरण देखिए -

अलंकरण शिल्प -

नूर मुहम्मद ने अधिकांश सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग किया है। प्रयुक्त अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, यमक, स्वरूप तथा सन्देह आदि अलंकारों का प्रयोग प्रचुर रहा है।

शेख निसार कृत यूसुफ जुलेखा रचनाकाल सन् १७९० ई०

कथावस्तु -

यूसुफ नबी याकूब के बारह पुत्रों में से सबसे छोटे पुत्र थे, अत्यधिक सुन्दर होने के कारण अन्य सभी भाई उनसे ईर्ष्या करते थे। ईर्ष्यावश सबने मिलकर एक दिन यूसुफ को एक कुएं में ढकेल दिया और यह प्रचारित कर दिया कि उसे भेड़िया खा गया। इस पर नबी याकूब अत्यन्त दुखी हुए, कहा जाता है कि वे पुत्र वियोग में अन्धे तक हो गये थे। संयोगवश उस मार्ग से जाते हुए व्यापारियों के एक दल ने यूसुफ को कुएं से बाहर निकाला किन्तु उसके भाइयों ने यूसुफ को अपना गुलाम बता कर उसे व्यापारियों के हाथ बेच दिया।

कहा जाता है कि पश्चिम देश के तैमूस नामक सुल्तान की रूपवती पुत्री जुलेखा का स्वप्न दर्शन के द्वारा यूसुफ से प्रेम हो गया था। ज्यों सोच जुलेखा की धाय ने उसके पिता से कहकर उसका विवाह मिस्र देश के अजीज़ के साथ निश्चित करा दिया। परन्तु जुलेखा अजीज़ को देखकर घबड़ा गई क्योंकि यह वह युवक नहीं था जिसे उसने स्वप्न में देखा था। अजीज़ के पास रहकर भी जुलेखा ने अपने सतीत्व की पूर्ण रक्षा की।

व्यापारी यूसुफ को मिस्र के बाजार में दास के रूप में बेचने के लिए पहुंचे। जुलेखा ने अपने पति से कह कर यूसुफ को खरीदवा लिया। एक दिन यूसुफ

जुलेखा के आकर्षण से प्रभावित होकर उसने जुलेखा का आलिंगन करना चाहा लेकिन अपने पिता की स्मृति आने से उसने ऐसा करना अनुचित समझा और वह भागने लगा । जुलेखा ने उसे पकड़ना चाहा इस प्रकार में यूसुफ का कुर्ता फट गया । अपराध स्वरूप यूसुफ बन्दी बना लिया गया । जुलेखा गुप्त रूप से कारागार में यूसुफ से मिलने जाती थी । इस पर जुलेखा की चारों तरफ बुराई होने लगी । जिस पर अजीज ने उसका परित्याग कर दिया । एक रात सुल्तान ने एक स्वप्न देखा जिसका रहस्य यूसुफ ने बता दिया प्रसन्न हो सुल्तान ने उसे बन्दीगृह से मुक्त कर दिया और उसे अपना मंत्री बना लिया ।

मंत्री पद पर रहते हुए यूसुफ की भेंट अपने पिता याकूब से हुई । और अब वह मिस्र का शासक बना दिया गया था । इधर जुलेखा यूसुफ के वियोग में अंधी हो गयी । सुल्तान यूसुफ ने एक बार राजकीय भ्रमण के समय मार्ग में अंधी स्त्रियों में जुलेखा की पहचान किया । यूसुफ के पिता के आशीर्वाद के द्वारा जुलेखा पुनः लावण्यमयी हो गई और दोनों : यूसुफ और जुलेखा : का परिणय हो गया । नबी याकूब की मृत्यु हो जाने पर यूसुफ को नबी पद पर आसीन हुआ और अल्लाह की ओर रहने लगा । यूसुफ के परधाम सिधारने पर जुलेखा ने भी प्राण त्याग दिये ।

<u>वस्तु विश्लेषण -</u>

कवि निसार के इस काव्य रचना के दो आधार हैं -

१- कुरान में वर्णित ' यूसुफ जुलेखा ' की कथा का आधार ।

२- जामी की ' यूसुफ जुलेखा ' कथा का आधार ।

कवि निसार ने यूसुफ-जुलेखा के माध्यम से सूफी सिद्धान्तों की पूरी अभिव्यक्ति की है । यही कारण है कि यूसुफ की प्राप्ति के बाद जुलेखा का युवा

शृंगार रस तथा करुण रस -

> नैन लागि पीउ लिखिहि, जान्हिहि डेर पर धार ।[६]
> पीवहि नैनन पिउ लोचहि रहौं, देखौं लाड निहार ।

अलंकरण-शिल्प -

निसार कृत 'यूसुफ-जुलेखा' में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त प्रतीप, अनुप्रास तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग ही अधिक हुआ है ।

शाह नजफ़अली सलोनी कृत प्रेम चिनगारी - रचनाकाल सन् १८४५ ई०

कथावस्तु -

'प्रेम चिनगारी' में शाह नजफ़अली सलोनी ने मौलाना रूमी की मसनवी की दो कथाओं की हिन्दी भाषा में व्याख्या की है ।

मौलाना रूमी की पहली कथा में मानव को बाँसुरी मानते हुए सूफी अद्वैतवाद को स्पष्ट किया गया है । दूसरी कथा सम्राट मूसा और गड़रिए की है जिसमें निर्गुण ब्रह्म की चर्चा की गई है ।

१- बाँसुरी की कथा -

सारे संसार को अपनी दुःख की करुणात्मक ध्वनि सुनाने वाली बाँसुरी की कथा अत्यन्त व्यथापूर्ण है । वह अपने मूल स्थान वन से अलग है, उसका हृदय छेद दिया गया है, बजाने वाला अपनी ध्वनि को जब सृष्टि में प्रवाहित करता है तो सभी सुनते तो हैं किन्तु कोई विरला ही उसके गुप्त रहस्य की झलक पाता

है , जो उसके उस भेद को उजागर करता है । वह निर्गुण ब्रह्म का ज्ञाता बन जाता है । वास्तव में यह बाँसुरी प्रेम की बाँसुरी है । उसकी ध्वनि मानव हृदय को प्रभावित करके उसे परम-प्रेम का पिपासु बना देता है । इस बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर ही प्राणी माया-जाल से छूटकर आनन्द लाभ करता है ।

निस्सन्देह आत्मा उस परमात्मा की अभिव्यक्ति का साधन है और वही मानव धर्म है , जिसके हृदय में परमात्मा का निवास है । वह संसार में उसी की निर्मल ज्योति से प्रकाशमान है । स्वच्छ हृदयाकाश वाला प्राणी ही उसकी निर्मल ज्योति के दर्शन अपने में कर पाता है ।

२- हजरत मूसा पैगम्बर तथा गड़रिया की कथा -

हजरत मूसा ने एक बार ईश्वर के प्रेम में लीन एक गड़रिये को देखा । उसके अनन्य प्रेम को देखकर हजरत मूसा ने उससे पूछा कि वह कैसी भावनायें किसके प्रति प्रकट कर रहा है । ज्ञात होने पर कि वह परमात्मा का ध्यान कर रहा है । इस पर मूसा ने कहा - " परमात्मा अगम्य है , उसके प्रति प्रेम की ऐसी भावनायें व्यक्त करना अपराध है । " गड़रिया सुनकर अत्यन्त दुखी हुआ । वह वन की ओर चला गया । मूसा का यह उपदेश परमात्मा को भी अच्छा नहीं लगा । उसने शीघ्र ही मूसा के पास प्रेमोपदेश पूर्ण सन्देश भेजा जिसे सुनते ही मूसा गड़रिये के पीछे भागे । मिलने पर मूसा ने उससे क्षमा याचना की और उसके प्रेमभाव की प्रशंसा की । मूसा के कहने पर गड़रिया प्रिय और प्रेमी की द्वैत-भावना को मिटाकर जीवन मुक्त हुआ ।

जिस प्रकार बंसी की ध्वनि से उसका निर्माता पहचाना जाता है उसी प्रकार आत्मदर्शन के द्वारा परमस्वरूप का दर्शन होता है ।

वस्तु विश्लेषण -

मसनवी शैली के अनुरूप ग्रन्थारम्भ में कवि ने निर्गुण वन्दना , हजरत मुहम्मद की प्रशंसा , चार खलीफाओं एवं इमाम हसन एवं हुसैन का गुणगान तत्पश्चात् पीर की चर्चा की है । बाँसुरी की प्रथम कथा में मानव को बाँसुरी मानकर सूफी-अद्वैतवाद का स्पष्टीकरण किया गया है । हजरत मूसा पैगम्बर तथा गड़रिये की कथा में निर्गुणवाद का वर्णन किया गया है ।

रस-निरूपण -

निर्गुणवाद की चर्चा होने के कारण काव्य में शान्त रस ही प्रधान है ।

अलंकरण-शिल्प -

सिद्धान्त निरूपण के कारण सम्भव नहीं हो सका है ।

ख्वाजा अहमद कृत नूरजहाँ रचनाकाल सन् १९०५ ई०

कथावस्तु -

सरनद्वीप के शेरानगढ़ नामक नगर का सुल्तान मलिकशाह अत्यन्त योग्य और कुशल प्रशासक था । उसकी पटरानी का नाम नूरबानू था । पुत्राभाव में दोनों सदैव दुखी रहा करते थे । एक दिन सुल्तान अत्यन्त दुखी हो जंगल में जाकर तपस्या करने लगा फलस्वरूप दस्तगीर नामक पीर ने उसे दर्शन दिया । दस्तगीर-पीर के आशीष से उसे " सुरैयाशाह " नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई ।

सुरैया ने एक दिन स्वप्न में सोने के सिंहासन पर बैठी एक सुन्दरी को देखा । जागने पर वह विरह से व्याकुल हो उठा ।

इधर रूम शहर के सुलतान की पुत्री " गुलबोस " ने स्वप्न में सुरेख को देखा और वह उसके विरह में व्याकुल रहने लगी । चुनन के सुलतान असरशाह और रानी ... की पुत्री का नाम नूरजहां था । वह अपने नाम के अनुरूप अत्यन्त रूपवती थी । नूरजहां की सखी कुमति का पिता परियों का राजा था । नूरजहां के कहने पर कुमति उसके लिये योग्य वर की खोज में उड़ चली । उड़ते-उड़ते वह रूमनगर पहुंची जहां उसने रनिवास में एक अत्यन्त सुन्दर चित्र देखा । तत्काल स्त्री रूप धारण कर कुमति गुलबोस की सखियों के साथ बैठ गयी । वहां उसे ज्ञात हुआ कि वह चित्र ईरान के राजकुमार सुरेख का है , जिसे स्वप्न में देखकर गुलबोस उसके विरह में व्याकुल है । कुमति उड़कर ईरानगढ़ पहुंची वहां उसने सुरेख को देखा और पुनः उड़कर चुनन आ गयी । उसने नूरजहां से सुरेख के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया जिसे सुनकर नूरजहां अभिभूत हो उठी ।

इधर सुरेख ने स्वप्न में नूरजहां को देखा और उसके विरह में नदी के किनारे समाधि लगाकर बैठ गया । उधर गुलबोस के पिता ने सुरेख की खोज में चारों और सेना भेजी । उधर सुरेख योगी-वेश में अपने साथियों के साथ नूरजहां की खोज में निकल पड़ा । मार्ग में पड़ने वाली भीषण कठिनाइयों को पार करता हुआ वह आगे बढ़ता जा रहा था कि एक स्थान पर वह संकट में पड़ गया तभी गुलबोस के पिता द्वारा भेजी सेना भी वहां आ पहुंची । सुरेख सुलतान की सेना के साथ रूम देश पहुंचा । सुलतान ने गुलबोस का विवाह सुरेख के साथ कर दिया परन्तु सुहागरात के पहले ही परियों की रानी गुलबोस को उड़ा ले गई । सुरेख गुलबोस की खोज में उसके पिता की सेना लेकर चला , वस्तुतः वह नूरजहां की खोज में ही चला था । कुमति उसका मार्ग प्रशस्त कर रही थी । चुनन देश पहुंचने पर नूरजहां और सुरेख का विवाह हो गया । आनन्दोपभोग के पश्चात् सुरेख नूरजहां को लेकर रूम लौट आया । तब तक परियां गुलबोस को वापस पहुंचा गयी थीं ।

गुलबोस खुरशेद को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । खुरशेद अपनी दोनों पत्नियों के साथ ईरानाबाद लौट आया । पिता मलिक शाह और माँ नूरताब दोनों उन्हें देखकर प्रसन्न हुए । उनके मरने के बाद खुरशेद सुलतान बना और अपनी दोनों पत्नियों के साथ आनन्द से रहने लगा ।

वस्तु विश्लेषण -

ग्रन्थ के नूरजहाँ नाम से उसके ऐतिहासिक कथानक का आभास होता है । घटनास्थल के रूप में कवि ने तूरान , ईरान और रूम देश को चुना है । परियों के आश्चर्यजनक कार्य काव्य में कुतूहल और चमत्कार उत्पन्न करते हैं ।

अन्य सूफी प्रेमाख्यानों में नायक-नायिका में परस्पर प्रेम स्वप्न दर्शन , साक्षात् दर्शन या गुण-श्रवण के द्वारा होता है किन्तु नूरजहाँ में खुरशेद एवं नूरजहाँ एक दूसरे को स्वप्न में न देखकर खुरशेद नूरजहाँ को और गुलबोस खुरशेद को स्वप्न में देखती है । इस प्रकार काव्य में एक त्रिकोणात्मक संघर्ष चलता है । कथा का अन्त नायक-नायिका के मिलन हो जाने पर होता है । भावात्मक स्थल अधिक न होने के कारण कवि ने रस-निरूपण और अलंकरण-शिल्प की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है ।

शेख रहीम कृत भाषा प्रेमरस - रचनाकाल सन् १९१५ ई०

कथावस्तु -

रूपनगर के राजा रूपसेन और रानी रूपवती सन्तानहीन होने के कारण सदैव चिन्तित रहा करते थे । एक दिन रानी रूपवती ने स्वप्न में लक्ष्मी को अपने घर चन्द्रकला के रूप में जन्म लेते हुए देखा । यथासमय चन्द्रकला का जन्म हुआ । शीघ्र ही चन्द्रकला समस्त कलाओं में प्रवीण हो गई ।

राजा के मंत्री कुबेरसेन के यहाँ प्रेमसेन नामक बालक का जन्म हुआ । चन्द्रकला और प्रेमसेन दोनों एक साथ पढ़ते थे । धीरे-धीरे दोनों में प्रेम जागृत हुआ । बात राजा तक पहुँच गयी उन्होंने चन्द्रकला की पढ़ाई बन्द करा दी । दोनों विरह में व्याकुल रहने लगे । मालिन-मोहिनी के माध्यम से चन्द्रकला ने प्रेमसेन के पास मिलन-सन्देश भेजा । प्रेमसेन नारी वेश में चन्द्रकला के अन्तःपुर में गया । इस प्रकार प्रेमसेन और चन्द्रकला का मिलन होता रहा । मिलन की बात सुनकर कुबेरसेन ने प्रेमसेन को घर से निकाल दिया । संयोगवश उसकी भेंट उत्पाल नामक गुरु से हुई और वह साधना में लीन रहने लगा । इसी बीच एक दिन रात को एक दैत्य सोती हुई चन्द्रकला को उठा ले गया । उसने अपनी चालीस परी की दासियाँ चन्द्रकला को देकर कहा कि वह एक विशेष कमरे को कभी न खोले, यदि कभी खोले भी तो मौन रहकर ।

इधर चन्द्रकला के पिता कपिलसेन चन्द्रकला के गायब हो जाने पर अत्यन्त क्रोधित हुआ । उसने कुबेरसेन का घर लुटवा कर उसे बन्दी बना लिया । माँ पुत्र वियोग में पागल होकर वन-वन भटकने लगी ।

उत्पाल गुरु की कृपा से माँ-बेटे का मिलन हुआ । प्रेमसेन पुनः चन्द्रकला की खोज में निकल पड़ा । चन्द्रकला कष्टमय जीवन बिता रही थी । एक दिन उसने दैत्य का वह विशेष कमरा खोला जिसमें स्थित नरमुण्डों ने चन्द्रकला से दैत्य के मरने का उपाय बताया तथा प्रेमसेन के वहाँ तक आने की सूचना भी दी । उत्पाल गुरु की सहायता से प्रेमसेन ने दैत्य का वध कर दिया । दोनों रूपनगर पहुँचे और दोनों का विवाह हो गया । कुबेरसेन भी बन्धन मुक्त कर दिया गया । कुटिल मालिन देश से निकाल दी गयी ।

प्रतिशोधवश उसने इस्लामाबाद के सुल्तान आबिदशाह से चन्द्रकला के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया । उसने रूप नगर पर आक्रमण भी कर दिया परन्तु

चन्द्रकला के रूप सौन्दर्य को देखकर मद मितवारो हो गया । चन्द्रकला प्रेमसेन के साथ आनन्द रहने लगी ।

वस्तु विश्लेषण -

भाषा प्रेमरस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चन्द्रकला और प्रेमसेन की कथा लोक प्रचलित रही होगी और कवि ने उसे लोक मानस से ग्रहण किया होगा । प्रमुख कथा के रूप में चन्द्रकला और प्रेमसेन की कथा ही प्रधान है । दृष्टान्त रूप में काव्य में प्रेमसेन ने " यूसुफ जुलेखा " की कथा चन्द्रकला से कही है । अन्य सूफी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा काव्य आरम्भ में निराकार ईश्वर की वन्दना के बाद उसकी महत्ता प्रकाशित करते हुये कवि ने सम्पूर्ण सृष्टि की और विशेषकर मानव के अंगों-उपांगों की विस्तृत चर्चा की है । तत्पश्चात् मुहम्मद साहब उनके चारों मित्र अबूबकर उस्मान , उमर और अली की प्रशंसा के बाद कवि ने अपना और अपने वंश का परिचय देने के बाद मुहीउद्दीन मौलाना की प्रशंसा गुरु के रूप में की है । कथा प्रवाह में किसी भी प्रकार की शिथिलता नहीं दिखाई देती है । कौतूहल जागृत रखने के लिये कवि ने कई स्थलों पर अलौकिक पात्रों और घटनाओं का समावेश किया है ।

दीर्घ वियोग के बाद कवि ने चन्द्रकला और प्रेमसेन का मिलन कराकर काव्य को सुखान्त रखा है ।

प्रमुख पात्र और चरित्रांकन -

काव्य में प्रमुख पात्रों के रूप में प्रेमसेन , चन्द्रकला तथा गुरु दत्पाल का उल्लेख मिलता है ।

प्रेमसेन -

प्रेमसेन " प्रेम का आदर्श है । प्रेम के लिये वह अपना जीवन तक उत्सर्ग करने को तैयार रहता है । प्रेम के लिये ही गृहत्याग करके वह गुरु उत्पाल के साथ वन में त्यागमय जीवन व्यतीत करता है । दैत्य को मार गिराने में प्रेमसेन की शक्ति और सम्राट वविद से युद्ध में उसकी शौर्य के दर्शन होते हैं ।

चन्द्रकला -

काव्य में चन्द्रकला का प्रेमिका रूप ही प्रमुख रहा है । पाठशाला में प्रेमसेन से वियुक्त हो जाने पर तथा प्रेमसेन के घर से चले जाने पर दुखी हो वह दूर कहीं भाग जाने को सोचने लगती है ।

गुरु उत्पाल -

काव्य में गुरु उत्पाल का चरित्र आदर्श गुणों से युक्त है । शेख रहीम उसकी प्रशंसा में कहते हैं -

जो गुरु मिलि तो अस मिलि बांह पकड़ि ले तार ।
डूबत नैया भंवर मां खेय लगावें पार ।

इनके अतिरिक्त काव्य में रूपसेन , कुमसेन , महाकाल दैत्य , गुरु , उत्पाल सम्राट , वविद , मालिक तथा मित्र बलसेन का उल्लेख भी मिलता है ।

रस-निरूपण -

रस निरूपण के अन्तर्गत काव्य में श्रृंगार रस ही प्रधान है ।

संयोग श्रृंगार -

संयोग श्रृंगार में प्रेमसेन और चन्द्रकला के संयोग का कहीं भी उल्लेख नहीं

मिलता है । विवाह के समय के हल्दी को भी संभवत: कवि ने गर्व या आनन्दातिरेक का प्रतीक माना है -

हुति रंग जब होइ का पार्वे आगे कब होइ ।[2]

वियोग शृंगार -

काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक मिलता है । सर्वप्रथम वियोग का मर्मस्पर्शी चित्रण उस समय दिखाई देता है जब चन्द्रकला का पाठशाला जाना बन्द हो जाता है । प्रेमसेन उसके वियोग में दुखी हो अपने सम्पूर्ण जीवन के प्रति उदासीन रहने लगता है -

बिसर गयी सुधि भोजन भीगा , जीता विरह आंच ते छूता ।[3]
तन को चैन न मन में धीरा , रह-रह उठै विरह की पीरा ।[4]

इधर प्रेमसेन विरह विदग्ध था । उधर चन्द्रकला प्रेमसेन के वियोग में विरह संतप्त जीवन यापन करती है -

घर बन खोज रहे मोरे प्यारे , विरह अगिन तन उठत लौयारे ।[5]
तुम बिन प्यारे एक घड़ी है , मोहि बरस समान ।[6]
दरसन लालसा लाग है , चैन मिली मोहि जान ।

प्रिय वियोग में वियोगी को सुखद वस्तुएं भी दुखद प्रतीत होती हैं । चन्द्रकला को भी चतुर्दिक दुःखद भावनाओं का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है । फूलों की सेज उसे कांटों के समान कष्टदायक प्रतीत होती है -

फूलन सेज कांट जस खटके , नींद कहां तुम बिन पिय दरके ।[7]

परम्परानुसार " बारहमासा " वर्णन में बारह महीनों का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने " मलमास " या लौंद का भी उल्लेख किया है -

बारह मास वियोग के सत्यों लौंद को बास ।[8]
चित रहीम मिलहिं प्रभु बीति गा मलमास ।

कलात्मक-शिल्प -

अलंकरण-शिल्प -

अलंकरण-शिल्प के अन्तर्गत कवि ने अधिकांशतः सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग किया है जिसमें उपमा, रूपक, अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग मुख्य रूप से किया है।

नसीर कृत प्रेम दर्पण - रचनाकाल सन् १९१७-१८ ई०

' प्रेमदर्पण ' में यूसुफ और जुलेखा की प्रेम कथा कही गयी है। इस प्रकार प्रेमाख्यानों की इस लम्बी परम्परा में सर्वत्र ' इश्क मजाजी के द्वारा इश्क हकीकी ' तक पहुंचने की भावना विद्यमान है। इस परम्परा की सभी कृतियों में नायक-नायिका की सहायता के लिए सहायक पात्रों की सृष्टि की गयी है। प्रेमी प्रेमिका के मिलन में कठिनाइयों का विधान और अन्त में निराकरण प्रायः सभी प्रेमाख्यानों में मिलता है।

नायक की प्रेम परीक्षा के लिए विविध घटनाओं की योजना द्वारा काव्य में रोमांच और अलौकिकता का समावेश किया गया है।

रस-निरूपण की दृष्टि से सभी प्रेमाख्यानक काव्यों में अंगीरस शृंगार है। संयोग और वियोग, बारहमासा, षटऋतु-वर्णन, विविध काम दशाओं के चित्रण तथा विरह की मार्मिक उक्तियों में लगभग सभी काव्यों में अद्भुत समानता दिखाई देती है। इसी प्रकार अलंकरण शिल्प भावानुकूल तथा काव्य सौन्दर्य में सहायक सिद्ध हुआ है।

०० ——— ००

अध्याय - ४

सन्दर्भ-सारिणी

क्र०सं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
	चन्दायन		
१-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	ख
२-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	
३-	डा० डा० माताप्रसाद गुप्त	चांदायन	
४-		हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान	३१
५-	डा० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	८१
६-	वही	"	८१
७-	वही	"	"
८-	वही	"	८२
९-	वही	"	"
१०-	वही	"	८४
११-	वही	"	"
१२-	वही	"	८५
१३-	डा० डा० माताप्रसाद गुप्त	चांदायन	३६
१४-	डा० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	"	११२
१५-	वही	"	१३२
१६-	वही	"	२४७
१७-	वही	"	११७-१३१
१८-	वही	"	२३६
१९-	वही	"	१६२
२०-	वही	"	[illegible]

२१-	पं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चांदायन	२०६
२२-	पं० डा० माताप्रसाद गुप्त	,,	२०२
२३-	वही	,,	२२१
२४-	वही	,,	३४१
२५-	वही	,,	३४२
२६-	वही	,,	३४३
२७-	वही	,,	३४५
२८-	वही	,,	३४६
२९-	वही	,,	३४७
३०-	वही	,,	३४८
३१-	वही	,,	३४९
३२-	वही	,,	३५०
३३-	वही	,,	३५०
३४-	वही	,,	३५१
३५-	पं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१५८
३६-	वही	,,	१७६
३७-	वही	,,	२७४-७५
३८-	वही	,,	३२६
३९-	पं० डा० माताप्रसाद गुप्त	चान्दायन	१०३
४०-	पं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१५६
४१-	वही	,,	८६
४२-	वही	,,	१४०
४३-	वही	,,	२५५
४४-	वही	,,	१२०
४५-	वही	,,	१५८
४६-	पं० डा० माताप्रसाद गुप्त	चान्दायन	६०

४७-	डॉ० माताप्रसाद गुप्त	चान्दायन	७७
४८-	वही	"	७०
४९-	वही	"	६६
५०-	वही	"	६५
५१-	वही	"	६४
५२-	वही	"	६२
५३-	वही	"	६१

<u>मृगावती</u>

१-	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	
२-	डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त	मिरगावती	
३-	पं० परशुराम चतुर्वेदी	सूफी काव्य संग्रह	१२७
४-	वही	हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान	७०
५-	डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय	मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	६८
६-	डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त	मिरगावती	१९४
७-	वही	"	३८९
८-	वही	"	१९९
९-	वही	"	१७६
१०-	वही	"	३५२
११-	वही	"	"
१२-	वही	"	२५६
१३-	वही	"	१७६
१४-	वही	"	१३६
१५-	वही	"	१८९
१६-	वही	"	१७२
१७-	वही	"	१९९

१८-	सं० डा० शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	४९
१९-	वही	"	४९-५०
२०-	वही	"	५१
२१-	वही	"	४८
२२-	डा० श्याम मनोहर पाण्डेय	मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	६८
२३-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	मिरगावती	२६४
२४-	सं० डा० शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	७६
२५-	डा० श्याम मनोहर पाण्डेय	मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	६६
२६-	सं० डा० शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	७६
२७-	वही	"	४६
२८-	वही	"	४५
२९-	वही	"	४५
३०-	वही	"	४ १
३१-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	मिरगावती	३८६
३२-	सं० डा० शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	९५
३३-	वही	"	११
३४-	वही	"	११५
३५-	वही	"	१४६
३६-	वही	"	१९५-९६
३७-	वही	"	९४
३८-	वही	"	१९६
३९-	वही	"	१११
४०-	वही	"	"
४१-	वही	"	१९८
४२-	वही	"	१०८
४३-	वही	"	४५

४४-	रामपूजन तिवारी	हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका	१७२

पद्मावत

१-	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोश भाग-२	२६४
२-		पद्मावत स्तुतिखण्ड	२७
३-	पं० परशुराम चतुर्वेदी	हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान	५६-५७
४-	डॉ० डा० माताप्रसाद गुप्त	पद्मावत	६६
५-	वही	"	७७
६-	वही	"	७८
७-	वही	"	८१
८-	वही	"	८३
९-	वही	"	८४
१०-	वही	"	८६
११-	वही	"	५६२
१२-	रामपूजन तिवारी	जायसी	८१
१३-	रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१
१४-	डॉ० डा० माताप्रसाद गुप्त	"	१९८
१५-	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्यकोश भाग-२	२९८
१६-	वही	"	२९८
१७-	उषा रानी	पद्मावत के काव्य रूप का शास्त्रीय अध्ययन	२७
१८-	वही	"	२७
१९-	डॉ० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१५
२०-	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्यकोश भाग-२	२७४
२१-	उषा रानी	पद्मावत के काव्य रूप का शास्त्रीय अध्ययन	२८
२२-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१२६

२३-	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोश भाग-२	२५
२४-	वही	"	१४३
२५-	उषा रानी	पद्माकर के काव्य रूप का शास्त्रीय अध्ययन	२६
२६-	वही	"	३०
२७-	वही	"	३३
२८-	वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	३२४
२९-	डॉ० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	४६
३०-	वही	"	१२८-१४५
३१-	डॉ० डा० माताप्रसाद गुप्त	"	३४८-३५२
३२-	डॉ० रामचन्द्र शुक्ल	"	४२
३३-	वही	"	५०
३४-	वही	"	५५
३५-	वही	"	५०
३६-	डा० द्वारिकाप्रसाद द्विवेदी	जायसी और उनका पद्मावत	१७१
३७-	शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	२५८
३८-	डॉ० डा० माताप्रसाद गुप्त	जायसी ग्रन्थावली	२७७
३९-	वही	"	२५६
४०-	वही	"	२३३
४१-	वही	"	२३७
४२-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	३५१
४३-	वही	"	३५०
४४-	वही	"	३५७
४५-	वही	"	३५४-३५५
४६-	वही	"	३५२
४७-	वही	नागमती सन्देश खण्ड	
४८-	वही	पद्मावत	३५८

४६-	उषारानी	पद्मावत के काव्यरूप का शास्त्रीय अध्ययन	३७
५०-	वही	,,	३८
५१-	वही	,,	३८
५२-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	६०
५३-	उषारानी	पद्मावत के काव्यरूप का शास्त्रीय अध्ययन	४०
५४-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	६५४
५५-	शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	२६३
५६-	वही	,,	२६५
५७-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	७१०
५८-	वही	,,	१२५
५६-	वही	,,	६६०
६०-	वही	,,	५५६-५६०
६१-	वही	,,	१२
६२-	वही	,,	६६४
६३-	वही	,,	६६५
६४-	वही	,,	६८-६६
६५-	वही	,,	५३६-४०
६६-	वही	,,	५४१
६७-	वही	,,	१५६
६८-	वही	,,	४००
६६-	वही	,,	४०२
७०-	डा० रामकुमारी मिश्र	मध्य युग के हिन्दी सूफी काव्य में अप्रस्तुत विधान : शोध प्रबन्ध :	३६६
७१-	वही	,,	३६६

७२-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	५०७
७३-	वही	,,	५०८
७४-	शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	२९६
७५-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	६९१
७६-	वही	,,	६९५
७७-	डा० रामकुमारी मिश्र	मध्ययुग के हिन्दी सूफी काव्य में अप्रस्तुत विधान : शोध प्रबन्ध :	३६८
७८-	वही	,,	६६८
७९-	वही	,,	६६९
८०-	वही	,,	६७०
८१-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	२५३
८२-	वही	,,	२५३
८३-	वही	,,	७११
८४-	वही	,,	७१२
८५-	जायसी ग्रन्थावली	नागरी प्रचारिणी सभा	९८
८६-	वही	,,	१०७
८७-	वही	,,	१५३
८८-	वही	,,	५
८९-	वही	,,	६७
९०-	वही	,,	१००
९१-	वही	,,	२६५
९२-	वही	,,	५५
९३-	वही	,,	१५७

९४-	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	१४०
९५-	वही	,,	९६
९६-	वही	,,	१००
९७-	वही	,,	५८८
९८-	वही	,,	१२९
९९-	वही	,,	१०२
१००-	वही	,,	९७
१०१-	वही	,,	३०१-७२
१०२-	वही	,,	६४५

मधुमालती

१-	सं० डा० माताप्रसाद गुप्त	मधुमालती	२५
२-	वही	,,	३-६
३-	वही	,,	८
४-	वही	,,	६
५-	वही	,,	१०
६-	वही	,,	११-१३
७-	वही	,,	१३-२०
८-	वही	,,	२१-२२
९-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	२३६
१०-	सं० डा० माताप्रसाद गुप्त	मधुमालती	३३
११-	वही	,,	३६
१२-	वही	,,	४६
१३-	वही	,,	४७

१४–	वही	मधुमालती	३८३
१५–	वही	,,	१०४
१६–	वही	,,	१०६
१७–	वही	,,	४६७
१८–	वही	,,	४६८
१९–	डा० दर्म रैठी	मधुमालती का काव्य सौन्दर्य	६७
२०–	डा० माताप्रसाद गुप्त	मधुमालती	६४
२१–	वही	,,	२२५
२२–	वही	,,	२३३
२३–	वही	,,	४२३
२४–	वही	,,	४०१–०२
२५–	वही	,,	३३
२६–	वही	,,	६१
२७–	वही	,,	६२
२८–	वही	,,	४१६
२९–	वही	,,	३९६
३०–	वही	,,	४३६
३१–	वही	,,	१२१
३२–	वही	,,	३९२
३३–	वही	,,	१२२
३४–	वही	,,	२४१
३५–	वही	,,	२४१
३६–	वही	,,	४[illegible]
३७–	वही	,,	१४४
३८–	वही	,,	३०६

३६— वही पद्मावती ४५७
४०— वही ,, ४५८
४१— वही ,, १४१
४२— वही ,, १४३
४३— वही ,, ४१८
४४— वही ,, २२५
४५— वही ,, ३०५
४६— वही ,, १४६
४७— वही ,, १५१
४८— वही ,, २२२
४६— वही ,, २२६
५०— वही ,, २२३
५१— वही ,, २६३
५२— वही ,, १४४—४५
५३— वही ,, १४५
५४— वही ,, ३२
५५— वही ,, ५८१
५६०

<u>चित्रावली</u>

१— डा० सरला शुक्ल जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य ३१५
२— सं० जगन्मोहन वर्मा चित्रावली ५
३— वही ,, ६
४— वही ,, ६

५-	डा० [illegible] वर्मा	चित्रावली	६
६-	वही	"	१०
७-	वही	"	६८
८-	वही	"	१६१
९-	वही	"	८०-८३
१०-	वही	"	२३६
११-	वही	"	१५५
१२-	वही	"	६३
१३-	वही	"	२०४
१४-	वही	"	३७
१५-	वही	"	५४
१६-	वही	"	३८ [illegible]
१७-	वही	"	१९०

ज्ञानदीप

१-	शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	१९९
२-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४२०
३-	वही	"	४२१

इन्द्रावती

१-	नूर मुहम्मद	इन्द्रावती	३०
२-	डा० जियालाल हण्डू	कश्मीरी तथा हिन्दी सूफी काव्य का - तुलनात्मक अध्ययन	२५६
३-	डा० शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	१२०
४-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४७२-७३

५-	डा० जियालाल हण्डू	कश्मीरी तथा हिन्दी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	२५८
६-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४६६
७-	वही	,,	४६६
८-	वही	,,	४६६
९-	वही	,,	४७६
१०-	वही	,,	४७६
११-	वही	,,	४६८
१२-	वही	,,	४६७-६८
१३-	वही	,,	४६५

<u>यूसुफ जुलेखा</u>

१-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	५२३
२-	वही	,,	५२३
३-	वही	,,	४२६
४-	वही	,,	४२४
५-	वही	,,	४२३
६-	वही	,,	४२३-२४
७-	वही	,,	४२२
८-	वही	,,	४२३
९-	वही	,,	४२४
१०-	वही	,,	४२४-२५

<u>पुहुपावती</u>

१-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	५०३

२-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	५०३
३-	वही	,,	४९८
४-	वही	,,	५०२
५-	वही	,,	४९९
६-	वही	,,	४९९
७-	वही	,,	४९८
८-	वही	,,	४९८

हंस जवाहिर

१-	कासिमशाह	हंस जवाहिर भाषा	६
२-	वही	,,	५
३-	वही	,,	४०
४-	वही	,,	८७
५-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४४५
६-	कासिमशाह	हंस जवाहिर	५०
७-	वही	,,	५२
८-	वही	,,	५५
९-	वही	,,	६७
१०-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४४२
११-	कासिमशाह	हंस जवाहिर	१८४-८५
१२-	वही	,,	६०
१३-	वही	,,	१३५
१४-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	१३७-३८
१५-	वही	,,	५३६
१६-	वही	,,	५३८
१७-	वही	,,	५३१
१८-	वही	,,	५३१

१९- वही — जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य — ५२६

२०- वही — ” — ५२९

२१- वही — ” — ५३०

२२- वही — ” — ५३०

प्रेम चिनगारी

१- डा० सरला शुक्ल — जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य — ५३४

नूरजहाँ

१- शिवसहाय पाठक — हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन — ७६

भाषा प्रेम रस

१- डा० सरला शुक्ल — जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य — ५५८

२- वही — ” — ५५७

३- वही — ” — ५५७

४- वही — ” — ५५७

५- वही — ” — ५५८

६- वही — ” — ५५८

७- वही — ” — ५५८

८- वही — ” — ५५९

प्रेम दर्पण

१- शिवसहाय पाठक — हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन — ७६

00 ——— 00

अध्याय - ५

तत्कालीन परिवेश और उनका काव्य

राजनीतिक , सामाजिक , धार्मिक , दार्शनिक , साहित्यिक , चन्दायन , मृगावती , पद्मावत , मधुमालती , चित्रावली , ज्ञानदीप , पुहुपावती , हंस जवाहिर , इन्द्रावती , यूसुफ जुलेखा , [illegible] , नूरजहाँ , भाषा प्रेम रस , प्रेम दर्पण ।

प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा -

भारत देश में प्रेमाख्यानों की परम्परा बहुत पुरानी है । ये कभी बीज रूप में प्राचीन वैदिक साहित्यिक के अन्तर्गत पाये जाते हैं । ऋग्वेदीय संहिता के सूक्त जिनमें संवादों के प्रयोग आते हैं और जिनमें प्रेमभाव की भी चर्चा है , प्रेमाख्यानों की कोटि में रखे जा सकते हैं । उदाहरण के लिए संहिता के ६५ वें सूक्त में उर्वशी एवं पुरुरवा तथा १० वें सूक्त में यम-यमी संवाद महत्वपूर्ण प्रेमाख्यान माने जाते हैं ।

महाभारत एवं अन्य पुराण साहित्य में अनेक प्रेमाख्यानों के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें आख्यानों का भण्डार कहा जा सकता है । महाभारत के आदिपर्व में दुष्यन्त एवं शकुन्तला एवं वनपर्व में भी नल-दमयन्ती की कथा नामक प्रेमाख्यानों का उल्लेख मिलता है । अतः प्रेमाख्यानों का बीज केवल यहीं तक सीमित नहीं है बल्कि बौद्धों के पालि-साहित्य एवं जैनियों का प्राकृत तथा अपभ्रंश कथाओं के अन्तर्गत बहुत से ऐसे प्रेमाख्यान मिलते हैं जिनमें लीलावई कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है । इसमें प्रतिष्ठान तथा सिंहल के राजकुमार और राजकुमारी के प्रेम एवं विवाहादि का सुन्दर उल्लेख मिलता है ।

इसी प्रकार अपभ्रंश की प्रेमकथा " पउमसिरी चरिउ " में प्रेमी-प्रेमिका को उनके पूर्वजन्मों से ही अनन्तर सफल बनाया गया है। " सदयवत्स सावलिंगा " की जो प्रेम-कथा राजस्थानी भाषा में मिलती है वह शुद्ध प्रेमाख्यान के रूप में प्रचलित है। राजस्थानी भाषा में ही लिखा गया " ढोला मारू रा दूहा " अत्यन्त मार्मिक और मनोहर प्रेमाख्यान कहा गया है। इसमें प्रेमी एवं प्रेमिका के निश्छल उद्गार, उनका निर्विकार मिलाप तथा उनकी आस्था और उत्साह हैं भरे यत्न हमें अपनी ओर बरबस खींच लेते हैं। सस्सि पुन्नूँ, हीर व रांझा, मैनासत, माधवानल कामकन्दला आदि भी इसी श्रेणी में आते हैं और ये भी अभी-अभी पीढ़ियों में उसी प्रकार लोकप्रिय हैं। कुछ ऐसे प्रेमाख्यानों का उल्लेख मिलता है जिनकी कथावस्तु काल्पनिक और ढांचा लोक-गाथाओं जैसा और जो पौराणिक कहे जाते हैं जिन्हें साहित्यिक प्रेमाख्यानों की संज्ञा भी दी जाती है। प्रेमाख्यानों का एक रूप हमें वीरगाथा-काल की प्रेमकथाओं में भी देखने को मिलता है जिनमें कोई राज-पुरुष अथवा बादशाह किसी सुन्दरी का वर्णन सुनकर उसकी ओर आकृष्ट होता है और उसे पाने के लिए अनेक यत्न करता है।

सूफियों के भारत में आकर अपना मत प्रचार करने लगने पर एक विशिष्ट नवीन प्रेमाख्यान पद्धति का सूत्रपात हुआ। उन्होंने ऐसे प्रेमाख्यानों को अपनाया जो अत्यन्त लोकप्रिय थे। उन्होंने ऐतिहासिक एवं अर्द्धपौराणिक प्रेम कथाओं का भी आश्रय लिया और उन पर अपना रंग चढ़ाया।

मौलाना दाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान शेखनबी, हुसैन अली, कासिमशाह, नूर मुहम्मद, शेख निसार, शाह नजफ अली सलोनी, ख्वाजा अहमद, शेख रहीम और नसीर प्रेमाख्यान परम्परा के प्रमुख कवि कहे जा सकते हैं।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा का प्रारम्भ मौलाना दाऊद के ' चन्दायन ' से होता है । इसका रचनाकाल सन् १३७९ ई० माना गया है । इस परम्परा का समापन सशक्त रूप से नसीर के ' प्रेमदर्पण ' से होता है जिसका रचनाकाल सन् १९१७-१८ ई० के आस-पास अनुमानित किया गया है । इस प्रकार यह सूफियाना परम्परा लगभग ५४० वर्षों के मध्य फैली हुई है । इस काल खण्ड के अन्तर्गत भारत का शासन फिरोजशाह तुगलक से लेकर अंग्रेजों के शासनकाल को स्पर्श करता है । इस लम्बी अवधि में देश में निरन्तर राजनीतिक उथल-पुथल रही है ।

सूफी रचनाकारों की रचनाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस लम्बे कालखण्ड में जो कुछ घटित होता रहा है उसका प्रभाव इन रचनाकारों की कृतियों में भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पड़ा है । यह प्रभाव व्यक्तिगत रूप में अलग-अलग रचनाकारों पर अलग-अलग स्तर पर पड़ा है ।

सामान्य रूप से सूफी काव्य परम्परा का सम्बन्ध प्रेमकथाओं से जुड़ा हुआ है । लोक प्रचलित प्रेमकथाओं को कवियों ने मुख्यतया लौकिक और सामान्यतया आध्यात्मिक आवरण में प्रस्तुत किया है जैसा कि सूफी कवियों का लक्ष्य समाज में प्रेम भावना को जागृत करना है ।

मुसलमान बादशाह यदि आतंक के द्वारा हिन्दू जनता को पीड़ित कर रहे थे तो सूफी कवि अपने प्रेम सन्देश द्वारा जनता को परस्पर मिल-जुल कर प्रेम और भाई चारे के साथ रहने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित कर रहे थे । यदि मुसलमान बादशाह हिन्दू जनता को भौतिक और मानसिक स्तर पर आघात पहुंचा रहे थे तो सूफी कवि उन चोटों पर मरहम लगाने का कार्य कर रहे थे ।

हम जानते हैं कि मध्य युग के राजनैतिक निर्णय प्रायः रणभूमि में लिये जाते थे अतएव युद्धकाल में भी समाज पर राजनैतिक संघर्षों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था ।

पूर्वोक्त काव्य ग्रन्थों के अनुशीलन से यह निरूपित होता है कि अलग-अलग कवियों ने अपने-अपने रचनात्मक दृष्टिकोण से अपनी काव्य कृतियों में समाज का चित्रण किया है, ऐसी स्थिति में रचनाओं के शिल्प पक्ष की एकरूपता की कल्पना तो की जा सकती है किन्तु सांस्कृतिक पक्ष में अनेकरूपता मिलना स्वाभाविक है । यहीं प्रत्येक रचना के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक मूल्यांकन से अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है । यहाँ संक्षेप में प्रत्येक कृति से सम्बन्धित सांस्कृतिक पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

चन्दायन -

चन्दायन के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि मध्य युग में राजा लोग अनेक विवाह किया करते थे । गोवर नरेश महर सहदेव के राजमहल में चौरासी रानियों के होने का उल्लेख मिलता है । अनेक विवाहों के होने का कारण एक तो यह प्रतीत होता है कि राजा इनके माध्यम से अपनी हैसियत की अभिव्यक्ति करना चाहते थे । और दूसरा कारण जो अपेक्षया अधिक स्वाभाविक लगता है, वह यह कि राजा लोग कामुक प्रवृत्ति के हुआ करते थे ।

रानियों में भी किसी एक विशिष्ट को विशेष महत्व प्राप्त होता था जो कि पटरानी/महारानी के रूप में प्रतिष्ठित हुआ करती थी । महर सहदेव

का पट महादेवी फुलारानी थी । चन्दा फुलारानी की कन्या थी । चन्दायन से यह ज्ञात होता है कि मध्ययुग में बाल विवाह का चलन था । चन्दा जब केवल चार वर्ष की थी तो उसका विवाह बावन से कर दिया गया था । यह विवाह सब ज्योतिषियों के निर्देश से किया गया था जो कि इस बात का द्योतक है कि लोगों को उस समय ज्योतिषियों पर बहुत अधिक विश्वास हुआ करता था । यह कुछ ऐसा होता था जिसे हम अन्धविश्वास का दर्जा दे सकते हैं । सम्भवतः इसीलिए चन्दा का विवाह एक बौने , काने , गन्दे और पुरुषत्वहीन व्यक्ति से कर दिया गया था । एक राजकुमारी का विवाह ऐसे किसी अवांछित व्यक्ति से सम्पन्न कर दिया जाना ज्योतिष के प्रति अंधविश्वास का सशक्त प्रमाण कहा जा सकता है । वयस्क होने पर इसीलिए चन्दा जो कि अप्रतिम सुन्दरी थी असन्तुष्ट रही ।

चन्दायन से यह भी ज्ञात होता है कि मध्ययुगीन समाज में ननद भौजाई के सम्बन्ध प्रगाढ़ थे जब कि सामान्यतया ऐसा नहीं होता है । चन्दायन के अनुसार रूपगर्विता नारी का रूप सौन्दर्य ही उसके लिए संकट का कारण बन जाता है । अपने नैहर लौटने पर एक दिन चन्दा झरोखे में खड़ी थी । एक भिखारी बाजिर ने उसे देखा तो मूर्च्छित हो गया । चैतन्यता लाभ करने पर बाजिर राव रूपचन्द के पास गया । रूपचन्द के समक्ष उसने चन्दा का रूप वर्णन किया । उस रूप वर्णन का प्रभाव इतना गहरा था कि राव रूपचन्द अपनी चैतन्यता खो बैठा । चन्दा को बलात हस्तगत करने के लिए रूपचन्द ने गोवर पर आक्रमण किया , किन्तु रूपचन्द की सेना अन्ततः पराजित हो गयी । इसमें लोरिक की वीरता उल्लेखनीय थी । राजा महर ने लोरिक को विशेष सम्मान दिया । चन्दा लोरिक की वीरता , पौरुष आदि से विशेष प्रभावित हुई । लोरिक के सम्मान में तब एक भोज का आयोजन किया गया । भोज के अवसर पर लोरिक ने सौन्दर्य राशि चन्दा को देखा और उसके रूप का तेज सहन न कर सकने के कारण मूर्च्छित हो गया ।

बिरस्पत की कुटनी से लोरिक ने भाद्रपद की एक रात को चन्दा के धवल गृह में प्रवेश किया । मैना लोरिक की पूर्व पत्नी को जब लोरिक और चन्दा के प्रेम और प्रणय का समाचार मिला तो उसने हस्तक्षेप किया । सोमनाथ पूजन के अवसर पर मैना और चन्दा में जमकर हाथापाई हुई और मैना ने चन्दा की बड़ी खासी दुर्गति की ।

जब गोबर में विवाद अधिक होते देख लोरिक और चन्दा ने गोबर का त्याग कर दिया । मार्ग में बावन ने लोरिक और चन्दा के पलायन में बाधा डाली । बावन और लोरिक में संघर्ष हुआ और बावन को मुँह की खानी पड़ी । कलिंग पहुँचने पर कुदई ने चन्दा को हस्तगत करने का प्रयत्न किया किन्तु वह कृतकार्य न हो सका । कलिंग पहुँचने पर वहाँ के नरेश ने लोरिक और चन्दा का विशेष सम्मान किया ।

इस प्रेमी युगल के जीवन में निरन्तर बाधाएं और विपत्तियाँ आती रहीं । दो बार तो बेचारी चन्दा सर्पदंश का शिकार हुई । इसके अतिरिक्त एक बार चन्दा और लोरिक टूटा जोगी के माया जाल से ग्रसित हुए किन्तु एक सिद्ध पुरुष की सहायता से वे मुक्त हो सके । अन्ततः लोरिक और चन्दा हरदीपाटन पहुँचे जहाँ वे सुखपूर्वक रहते थे । हरदीपाटन में लोरिक को सिरजन के द्वारा मैना का सन्देश प्राप्त हुआ । दोनों पुनः गोबर लौट आये । गोबर लौटने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि बावन और माँवर ने उसकी माँ को उसकी अनुपस्थिति में बहुत कष्ट दिया और कँवरू की उन्हीं द्वारा मृत्यु हो गयी ।

राजनीतिक स्तर पर यह ज्ञात होता है कि दो राजाओं के बीच युद्ध का कारण बहुधा नारी हुआ करती थी । राय रूपचन्द और गोबरगढ़ नरेश के

बीच होने वाले युद्ध का कारण वस्तुत: चन्दा थी । चन्दा के रूप पर मोहित होने के कारण ही राव रूपचन्द ने गोवर के विरुद्ध अभियान छेड़ा था । चन्दा के कारण ही इस प्रेम काव्य में मुल्ला दाऊद ने तीन बार युद्धों का वर्णन किया है जो कि ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है । चन्दायन वस्तुत: सूफी काव्य परम्परा के अन्तर्गत लिखित एक प्रेम काव्य है । इसलिये युद्ध के कारण के रूप में नारी को प्रस्तुत करना स्वाभाविक कहा जा सकता है । इस प्रेम कथा में सूफियों की धार्मिकता का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । मुल्ला दाऊद ने यद्यपि अपनी इस रचना में भारतीय लोकगाथा को आधार बनाया है । वैसे यदि इसके अन्तर्गत धार्मिकता की भावना का आरोप करना चाहें तो वह अंशत: सम्भाव्य है । हम कह सकते हैं कि चन्दा खुदा की अभिव्यक्ति देने वाली महाशक्ति है । उसके अलौकिक रूप में कहना होगा कि चन्दायन में उल्लिखित पात्र लोरिक रूपचन्द बाजिर आदि सभी उस महाशक्ति में लीन होने के लिये लालायित हैं । विशेषकर बाजिर चन्दा की रूप छवि में खुदा के नूर की ही अनुभूति करता है । अतएव उस रूप ज्योति चन्दा को उपलब्ध करने के लिये ही अलौकिक कष्ट जिनमें मुख्यतया युद्ध है झेलता है ।

सूफी कवि हिन्दुओं के महादेव शिव से परिचित थे । सम्भवत: इसीलिये मौलाना दाऊद ने शिव मन्दिर का अपनी रचना में विशिष्ट उल्लेख किया है । इस रचना में प्रेम के महत्व की सूक्ष्म अभिव्यंजना की गई है । पूरी रचना प्रेम रंग से सुरंजित है । और मानव मात्र को प्रेम का सन्देश देती है । प्रेम दिव्य है और प्रत्येक प्राणी मात्र के लिये कमनीय है ।

रचना चूंकि अधूरी रूप में उपलब्ध है इसलिये आगे की घटनाओं का ब्योरा हमें नहीं मिलता ।

मृगावती -

मृगावती के रचयिता कुतुबन का रचनाकाल १६ वीं शता० ई० के प्रारम्भ से सम्बन्धित माना जाता है। कुतुबन का सम्बन्ध हुसैनशाह से जोड़ा गया है किन्तु शाह हुसैन कौन थे यह स्पष्ट नहीं है। जिस समय मृगावती की रचना की गई उस काल खण्ड में बादशाह दो हुसैनशाह मौजूद थे - एक जौनपुर का हुसैनशाह शर्की और दूसरा बंगाल का शासक हुसैन शाह। डा० विश्वनाथ पाठक का अनुमान है कि कुतुबन द्वारा संदर्भित " हुसैन शाह " शर्की का ही होना चाहिये। पाठक जी का कहना है कि शर्की सुल्तान की सेना का व्यापक प्रभाव था। तिरहुत और उड़ीसा के शासक उसके खिराजदार थे। ग्वालियर के राजा को उसने पराजित किया था। " इटावा कमाना कोलखण्ड के शासक भी उसके प्रभुत्व को स्वीकार कर चुके थे। उसके राज्य का विस्तार तत्कालीन दिल्ली सल्तनत से कम नहीं था। शर्की सुल्तान ने बहलोल लोदी के विरोध में एक लाख घुड़सवार और एक लाख गज सेना के साथ प्रयाण किया था। इससे लगता है कि कुतुबन ने शर्की हुसैन शाह का ही उल्लेख किया है।[1]

निष्कर्ष रूप में डा० विश्वनाथ पाठक ने लिखा है कि कुतुबन ने जौनपुर के हुसैन शाह शर्की की ही आश्रयदाता के रूप में प्रशंसा की है -

" शाह " हुसैन आहि बड़ राजा। छात सिंघासन उनहिं पै छाजा।[2]

मृगावती की कथा का आधार प्राचीन जनश्रुति ही रही है। मृगावती की कथा लोक और साहित्य में पर्याप्त रूप से प्रसिद्ध रही है। यह एक ऐसी लोक कथा है जिसमें कि अति मानवीय तत्वों का पर्याप्त उपयोग किया गया है। लोक कथा हिन्दू जनजीवन से सम्बन्ध रखती है और प्राचीन कथा शैली का अनुसरण करती है।

प्रबन्ध काव्य में अतिमानवीय तत्वों के रूप में राजकुंवर द्वारा सात सिर और चौदह भुजाओं वाले राक्षस का वध तथा राजकुंवर का सतरंगी मृगी पर मोहित होना और फिर उस मृगी का सरोवर में कूद कर अन्तर्धान होना प्रेम मार्ग की कठिनाइयों को दर्शाने के लिये प्रस्तुत किया गया है ।

उड़ने की कला में सिद्धहस्तता तथा वेश एवं अपने स्वरूप को परिवर्तित कर देना काव्य में आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाले तत्त्व हैं । मृगी मृगावती के रूप में अप्सराओं के साथ सरोवर में स्नान करने आती है । राजकुंवर मृगावती को जिसे उसने मृगी के रूप में देखा था देख पहचान लेता है । पाठक के मन में यह शंका उठना स्वाभाविक है । अतएव, यह घटना अविश्वसनीयता पैदा हो जाती है ।

सूफी परम्परा के अनुसार राजकुंवर तथा मृगावती का मिलन आत्मा-परमात्मा के मिलन की ओर संकेत करता है । किन्तु प्रथम एकादशी के दिन तथा दूसरा कंचनपुर में विवाह के समय जब उन दोनों का पुनर्मिलन होता है और उन्हें दो पुत्र रत्नों की भी प्राप्ति होती है । गार्हस्थ्य जीवन यह झांकी प्रेम की अलौकिकता को प्रायः समाप्त कर देती है और मृगावती एक उच्च मानवीय कहानी बन कर रह जाती है ।

कंचनपुर में मृगावती से मिलन से पूर्व राजकुंवर रुक्मिणी से विवाह करता है किन्तु उसकी सम्पूर्ण भावनायें मृगावती को ही समर्पित हैं और वह मृगावती को खोजता हुआ कंचनपुर पहुंच जाता है । अतः हम कह सकते हैं कि काव्य में राजकुंवर और रुक्मिणी की कथा प्रसंग रूप में आयी है क्योंकि किसी नारी का नायक द्वारा राक्षस के चंगुल से बचाना कथा रूढ़ि के परिपालन के लिये ही अपनाया गया है । इसी प्रकार नायिका का रूप बदलना केवल नायक की परीक्षा का ही द्योतक है ।

पद्मावत -

पद्मावत की कहानी भारतीय लोक जीवन पर आधारित एक कथानक रूढ़ि है । वस्तुतः किसी राजकुमारी का अपनी पालित शुक से अपना हृदय खोलना , अपने नाम कथा कहना , शुक के माध्यम से किसी राजा या राजकुमार के यहाँ सन्देश भेजना , राजकुमार का आक्रमण .... शिव मन्दिर में प्रेमी युगल का मिलन , परिणय ग्रन्थि में बंधना , समुद्र यात्रा , तूफान संबंधी विविध प्रसंग , अलौकिक शक्ति अथवा दैवी शक्ति का सहायक होना आदि तत्व अनेक भारतीय कथाओं में पाये जाते हैं ।[3] हीरामन शुक द्वारा वर्णित पद्मावती के नख-शिख वर्णन के अनन्तर राजा रत्नसेन के हृदय में उस अलौकिक रूपाश्रिता के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है । वह राजपाट , सुख वैभव तथा भोग आदि का परित्याग करके योगी बन जाता है और तब तक प्रयत्न करता है जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेता ।

वस्तुतः पद्मावत नायिका प्रधान महाकाव्य है । पद्मावती उसकी नायिका है और रत्नसेन उसका नायक । पद्मावती महाकाव्य के समस्त कथानक का केन्द्र बिन्दु है । दार्शनिक दृष्टि से भी वह परमात्मा का प्रतीक है । और उसका महत्व आत्मा के प्रतीक रत्नसेन ' दुनियाँ-धन्धा ' की प्रतीक-स्वरूपा नागमती , माया के प्रतीक अलाउद्दीन और शैतान के प्रतीक राघव चेतन सभी से अधिक है । कुछ दार्शनिक विद्वानों के अनुसार ' पद्मावत ' का नायक रत्नसेन जीवात्मा का प्रतीक है । इतिहास प्रसिद्ध चित्तौड़गढ़ का वह राजा है और उसका जीवन साहस , त्याग , साधना एवं अनन्यता का एक उत्कृष्ट आख्यान है । रत्नसेन तथा पद्मावती का मिलन आध्यात्मिक दृष्टि से जीवात्मा तथा परमात्मा का मिलन है । और इस मिलन के लिए जीवात्मा को सांसारिकता का त्याग करके विघ्न बाधाओं का निवारण करते हुए अपने प्राणों को हथेली पर लेकर चलना होता है ।

पद्मावत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में सुन्दर नारियों के लिये विकट युद्धों का आयोजन होता था , यही कारण है कि जब अलाउद्दीन ने पद्मावती को अपनी अंकशायिनी बनाने के लिये राजा रत्नसेन के पास सन्देश भेजा तो सन्देश सुनते ही राजा आग बबूला हो उठा और गरज कर बोला " मैं बादशाह भूमिपति है , किन्तु अपना घर प्रत्येक के लिये अपना वैभव होता है । यदि घर की गृहिणी ही चली गई तो फिर क्या चित्तौड़ और क्या चन्देरी[8] ।

इतना ही नहीं जब राजा ने दिल्ली से लौटकर यह सुना कि कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने भी दूती भेजकर पद्मावती को अपनी रानी बनाने का प्रयास किया था तब राजा चैन की नींद नहीं सोता और तुरन्त कुम्भलनेर के गढ़ पर चढ़ाई कर देता है ।

काव्य में अलाउद्दीन पद्मावती का प्रेमी है परन्तु उसका प्रेम सच्चा नहीं है । वह पद्मावती का शरीर चाहता है , अतः वह बाह्य सौन्दर्य पर लुब्ध कामी पुरुष है । उसमें एक सच्चे साधक के समान तपस्या लगन और त्याग नहीं है । उसमें शक्ति जन्य अहंकार , तृष्णा और वासना का प्राधान्य है । इसीलिये उसके हाथ में चिता की राख मात्र आती है -

छार उठाइ लीन्हि एक मूठी । दीन्हि उड़ाइ पिरिथिमी झूठी ।[9]

साधारणतः पति की एक से अधिक पत्नियों की प्रथा तो अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही थी । सूफी प्रेमाख्यानों में भी नायक की दो पत्नियों का उल्लेख मिलने के साथ ही जायसी ने अपने पद्मावत में दोनों पत्नियों के बीच एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना का भी सुन्दर उल्लेख किया है । अतः सूफी प्रेमाख्यानों की परम्परा में जायसी के पद्मावत का वही स्थान है जो बहुत से मांडलिकों में सम्राट का होता है । आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति की दृष्टि

से यह रचना अपना पूर्ववर्ती रचनाओं से अधिक प्रौढ़ है । इस दृष्टि से मधुमालती सूफी प्रेमाख्यान परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहा जा सकता है ।

मधुमालती -

चारित्रिक दृढ़ता पर आधारित मधुमालती एक शुद्ध प्रेमाख्यान है । प्रस्तुत कथा के साथ-साथ काव्य में एक और कथा की आयोजना द्वारा कथा को विस्तृत करने के साथ ही प्रेमा और ताराचन्द के चरित्र द्वारा काव्य में सच्ची सहानुभूति , निःस्वार्थ प्रेम एवं संयम का आदर्श भी उपस्थित किया गया है । मंझन की मधुमालती के रूप सौन्दर्य में सृष्टि के समस्त सौन्दर्य का सार सन्निहित है । वह सौन्दर्य एवं कोमलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है । उसके रूप में कवि सृष्टि के रमणीय उपकरणों के सार को साकार होते अनुभव करता है । उसका सौन्दर्य चित्र कितना ही परम्परायुक्त क्यों न हो , पर उसमें आकर्षण अथवा रसात्मकता की कमी नहीं । उसके रूप वैभव को देखकर अप्सरायें आश्चर्य स्तब्ध हो उठती हैं । कल्पना से मन स्थिर होकर वे उसके विषय में कुछ कह नहीं पाती । मनोहर के साथ मधुमालती को देखकर उन्हें लगता है कि वे दोनों एक दूसरे से बढ़कर हैं । उनका रूप संसार में अनुपम है । उसके अप्रतिम रूपोत्कर्ष को देखकर नायक मनोहर कभी मूर्च्छित हो जाता है , कभी विलाप करता है । उसे देखकर उसका चित्त कराहने लगता है और उसकी विकल प्राण पक्षी की भाँति उड़ जाते हैं ।

सूफी सिद्धान्तों के अनुसार मधुमालती को परमात्मा का प्रतीक माना जा सकता है । राजकुमार मनोहर द्वारा अन्ततः उसकी प्राप्ति जीवात्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का द्योतक है । सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम सम्बन्ध स्थापन का कार्य अधिकांशतः अप्सराओं और देवों ने स्थापित किया है । मधुमालती में भी अप्सराओं के माध्यम से राजकुंवर ने मधुमालती के साक्षात् दर्शन किये । मनोहर को मधुमालती की चित्रसारी में अप्सराएं सुला देती हैं , जहाँ दोनों एक दूसरे को

<u>चित्रावली -</u>

उसमान कृत चित्रावली का कथानक पूर्णतः काल्पनिक है । उसका कोई ऐतिहासिक या पौराणिक आधार नहीं है । चित्रावली में सुजान के प्रेम का उदय चित्रदर्शन से ही होता है । राजकुमार सुजान देवों द्वारा चित्रावली की चित्रसारी में सुला दिया जाता है । जागने पर सुजान चित्रावली के चित्र को देखकर प्रेम विह्वल हो उठता है और उसके पार्श्व में अपना भी चित्र बना देता है और वहाँ सो जाता है । देव उसे पुनः वहाँ से उठा ले जाते हैं पुनः जागने पर वह उस चित्र सुन्दरी के लिए व्याकुल हो उठता है ।

राजकुमार सुजान के हृदय में चित्रावली के रूप की दिव्य ज्योति भास्वर हो उठती है । वह अपना घर बार सब कुछ छोड़ कर योगी बनकर निकल पड़ता है उसे अलौकिक संकटों - प्रत्यूहों का सामना करना पड़ता है । सुजान के प्रेम की दृढ़ता इसी में है कि वह कौलावती के प्रति उदासीन रहता है । वह कौलावती से विवाह करके भी चित्रावली के अनन्य प्रेम में लीन रहता है । चित्रावली की प्राप्ति से पूर्व संयोग सुख लाभ न करने में उसके लक्ष्य की एकात्मकता ही परिलक्षित होती है ।

कवि ने देव द्वारा राजकुमार सुजान को लेकर चित्रसेन के राज्य रूप नगर उड़ जाना और फिर दूसरे दिन लाकर मढ़ी में सुला देना जैसे अतिमानवीय तत्वों की योजना द्वारा पाठक के मन में जिज्ञासा ही उत्पन्न कर दी है । अजगर का राजकुंवर सुजान को विरह ज्वाला के कारण उगल देना , हाथी का राजकुंवर को सूंड़ में लपेटना , एक पक्षी द्वारा सुजान और हाथी दोनों को लेकर आकाश मार्ग से उड़ना आदि की योजना द्वारा कवि ने काव्य में कौतूहल भावना का संचार किया है । काव्य में कुछ यौगिक क्रियाओं का समावेश भी हुआ है जैसे गुरु-अंजन

शक्ति से लोगों की दृष्टि से अदृश्य होना आदि। इसके अतिरिक्त कुछ कथानक रूढ़ियां जैसे कंथा आदि में पुनः ज्योति आना आदि कथानक को गति प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती हैं। चित्रावली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि ने तत्कालीन बादशाह जहांगीर के शासनकाल में चित्रावली की रचना की थी। चित्रावली के प्रारम्भ में ही शाहेवक्त के रूप में कवि ने जहांगीर की प्रशंसा की है।[१२]

कवि मंझन की भांति उसमान ने भी अपनी कथा को सुखान्त ही रखा है।

<u>ज्ञानदीप</u> -

काव्य के कथानक की ओर संकेत करते हुए कवि शेखनबी ने स्वयं कहा है कि उसने इस कहानी को पहले कहीं से सुना था, फिर उसने उसी को अपनी भाषा शैली के अनुसार लिखा -

पोथी बांच नबी कवि कहा। जो कुछ सुना कहूं से रहा।[१३]

काव्य में ज्ञानदीप साध्य है और परम सौन्दर्य से प्रदीप्त देवयानी साधिका। कवि ने प्रत्यक्ष दर्शन के द्वारा दोनों में प्रेम का आविर्भाव दिखाया है। संगीत के द्वारा वश में करना, अग्निकुण्ड में कूदना, शिव-पार्वती की कृपा से बच जाना, मंत्र-सिद्ध गुटिकाओं तथा मंत्राभिषिक्त वस्त्र जैसे आश्चर्य उत्पादक तत्वों द्वारा कथा में कौतूहल की वृद्धि की गई है।

काष्ठ मंजूषा में रखकर प्रवाहित करना, राजा सुदेव क्रुद्ध होकर ज्ञानदीप को काठ की पेटी में बन्द करके नदी में प्रवाहित करा देता है। जैसे मानराय निस्सन्तान है आदि घटनाओं द्वारा काव्य में औत्सुक्य वृद्धि हुई है।

कथानक की परिणति के लिये शंकर की कृपा को साधन अपनाया गया है । नायक की उत्पत्ति और नायिका मिलन दोनों ही अवसरों पर शंकर जी की कृपा का आधार रहा है । ज्ञानदीप के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रेमोत्पत्ति के मूल में प्रत्यक्ष दर्शन को माध्यम बनाया गया है, परन्तु इस प्रत्यक्ष दर्शन का माध्यम गुरु छिद्रनाथ है । गुरु छिद्रनाथ ने ही ज्ञानदीप को परम सौन्दर्य के प्रतीक स्वरूप देवयानी के निकट पहुँचाया ।

प्रायः मध्यकाल में नारी का रूप सौन्दर्य ही युद्ध का प्रमुख कारण रहा है । ज्ञानदीप में देवयानी के रूप की चर्चा सुनकर सुन्दरपुर का राजा सुन्दरसेन स्त्री रूप धारण करके गोमती तट पर पहुँचता है । देवयानी को देखकर प्रेम विह्वल हो उठता है । वह भी स्वयंवर में भाग लेने गया था परन्तु उसे असफल लौटना पड़ा था । वह देवयानी के रूप सौन्दर्य के प्रति उसी समय से आकृष्ट था । उसने छल पूर्वक देवयानी को प्राप्त करना चाहा परन्तु छल से उसे देवयानी की उपलब्धि नहीं हो सकी । सुन्दरसेन और देवयानी में युद्ध छिड़ गया । सुन्दरसेन पराजित हुआ । ज्ञानदीप देवयानी के साथ सकुशल नैमिषार लौट आया । और आनन्दपूर्वक रहने लगा । उसके नैमिषार लौटने पर राय शिरोमणि और रानी को अपार हर्ष हुआ । सारे राज्य में प्रसन्नता लहराने लगी ।

ज्ञानदीप में नाथ पंथी योगियों का प्रभाव नितान्त उजागर है । लगता है इसके कवि नाथ पंथियों के चमत्कारों के प्रति विशेषतया आकृष्ट थे । छिद्रनाथ योगी ज्ञानदीप में इसी प्रकार का अद्भुत पात्र है । उसे दिव्य शक्तियाँ प्राप्त थीं । उसने योग के द्वारा उन्हें प्राप्त कर रखा था । राजकुमार ज्ञानदीप को उसने भरसक अपने यौगिक प्रभाव से शिष्य बनाने का उपक्रम किया । उसने राजकुमार को संगीत द्वारा भी विमोहित करना चाहा । छिद्रनाथ ने उसे यौगिक प्रभाव से मूर्च्छित कर रखा था ।

रचना से अनुमान हो जाता है कि मध्ययुग में तंत्र-मंत्र आदि का प्रचार जनता में व्यापक रूप से व्याप्त था । देवयानी की सखी सुरसाना ने ज्ञानदीप को संगीत के माध्यम से पुनः चैतन्यावस्था प्राप्त करवाया था । देवयानी स्वयं वशीकरण मंत्र के माध्यम से ज्ञानदीप को अपने वश में करना चाहती थी किन्तु जब उसकी तांत्रिक विधा अनुकूल परिणाम न दे सकी तो सुरसाना ने मंत्रशक्ति से कागज का एक घोड़ा बनाया । पार्वती की कृपा से उस अश्व में जीवन का संचार हुआ । और ज्ञानदीप उसी पर सवार होकर प्रति रात्रि राजप्रासाद की अट्टालिका पर उतर कर देवयानी से मिलने लगा । राजा सुखदेव को जब यह रहस्य ज्ञात हुआ तो उसने घोड़े को मार गिराया । इस प्रकार वह तंत्र के तिलस्म को तोड़ने में सफल हुआ । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा को भी तांत्रिक क्रियाओं का सम्यक् ज्ञान था ।

ज्ञानदीप के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय दण्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी । राजा सुखदेव राजकुमार ज्ञानदीप को अपराधी मानकर मृत्यु दण्ड देने का निर्णय दे चुका था । केवल मंत्रों के हस्तक्षेप से ज्ञानदीप को मारा नहीं गया बल्कि ज्ञानदीप को एक काठ की पिटारी में बन्द करके नदी में प्रवाहित कर दिया गया था । जाहिर है कि यह दण्ड भी प्रायः मृत्यु दण्ड जैसा कठोर था । रचना में अतिमानवीय तत्वों का पर्याप्त उपयोग है । योगेश्वर भगवान शंकर ने राजा सुखदेव को स्वप्न में बताया कि ज्ञानदीप निर्दोष है ।

ज्ञानदीप के नदी में प्रवाहित होने की सूचना मिलने पर देवयानी सती की भाँति अग्निकुण्ड में छलांग लगा देती है । वहाँ भी पार्वती उनकी रक्षा करती है जो दैवी कृपा का फल है । उस युग में स्वयंवर का चलन था । राजा सुखदेव देवयानी स्वयंवर में ज्ञानदीप का वरण करती है ।

से होता है। नायक-नायिका के मिलन में किसी प्रकार की बाधा प्रतीत नहीं होती। दुखहरनदास ने पुहुपावती में सिंहलद्वीप उसके प्रेम और पद्मिनी रानियों का उत्पत्ति स्थान सिंहलद्वीप ही है। कथानक रूढ़ियों का आश्रय लेकर कथानक को विस्तार देने का प्रयत्न किया है।

अन्य सूफी प्रेमाख्यानों की भांति पुहुपावती में अलौकिक सौन्दर्य प्रतीक स्वरूपा पुहुपावती तक पहुंचने में साधक मानिक चन्द को किसी भी प्रकार के विरोधी तत्त्वों का सामना नहीं करना पड़ता। मात्र भाटिन : चित्र देखी [?] बातों के द्वारा दोनों का मिलन सम्भव होता है। काव्य का अभिधान पुहुपावती अपभ्रंश भाषा का शब्द है। शुद्ध शब्द पुष्पावती होना चाहिये। इसमें राजपुर नरेश के पुत्र राजकुंवर और अनूप नगर के राजा अंबरसेन की पुत्री पुहुपावती : पुष्पावती : की प्रेम-कथा वर्णित है।

पुहुपावती शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्य है। इसमें मानिक चन्द और पुहुपावती के प्रेम का जो स्वरूप देखने को मिलता है उसमें विशुद्ध रूप से सूफियों के प्रेम के दर्शन होते हैं। सूफी मान्यता के अनुरूप पुहुपावती का चित्रण परमसत्ता के रूप में किया गया है। वह अलौकिक सौन्दर्य की प्रतीक है। ऐसी पुहुपावती की प्राप्ति करने के लिये मानिकचन्द के भीतर प्रेम की जिस व्याकुलता के दर्शन होते हैं वास्तव में उसे ही प्रेम की पीर कहते हैं। कवि दुखहरन भी [?] सूफी एकेश्वरवाद में पूर्ण विश्वास करते हैं। उनके अनुसार दृश्यमान जगत में परिव्याप्त एक मात्र सत्य अल्लाह है और उसी की सत्ता से जगत की सभी वस्तुएं जीवन प्राप्त करती हैं। दुखहरनदास ने पुहुपावती में मानिकचन्द की साधना के माध्यम से एकेश्वरवाद का पूर्ण प्रतिपादन किया है।

परमात्मा को परम सत्य और परमसत्ता मानने के अलावा सूफी यह भी मानते हैं कि वह परम सौन्दर्य है। इस परम सौन्दर्य के प्रतीक पुहुपावती के

काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में भक्ति भावना का पूर्ण प्रसार था । पुष्पावती अपना मनोरथ सिद्धि के लिये राम के दिन सूर्य कुण्ड में स्नान करने गयी और चतुर्भुजा के मन्दिर में चित्र में देखे हुए पुरुष के समान सुन्दर पति पाने की कामना की । पुष्पावती के अनुशीलन से यह भी पता चलता है कि उस समय लोगों को चित्र आदि बनाने का अत्यधिक शौक था । चित्र कला में प्रवीण मालिन मानिक चन्द का सुन्दर चित्र बनाकर पुष्पावती के पास लेकर आयी जिसे देखते ही पुष्पावती आश्चर्यचकित हो कहने लगती है जिसका चित्र ही इतना सुन्दर है वह स्वयं कितना सुन्दर होगा ।

हंस ज्वाहिर -

कासिमशाह कृत हंस ज्वाहिर का कथानक पूर्णतः काल्पनिक है ।[९८] परम्परानुसार बलखनगर के राजा बुरहानशाह का पुत्राभाव प्रेमोत्पत्ति , मार्ग की विकट कठिनाइयाँ , गुरु , परी अथवा परेवा की सहायता , विरोधी तत्वों का दमन आदि घटनाओं के निरूपण में सूफी प्रेमाख्यानों से विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता । जिस प्रकार मधुमालती में अप्सराओं ने मनोहर और मधुमालती का संयोग करवाया , चित्रावली में देव के द्वारा सुजान और चित्रावली का मिलन हुआ , उसी प्रकार " हंस ज्वाहिर " में अप्सराओं के माध्यम से हंस और ज्वाहिर का मिलन हुआ है ।

प्रायः सभी सूफी प्रेम कथाओं में गुरु या किसी सिद्ध की कथा सहायक रूप में हुई है किन्तु हंस ज्वाहिर में गुरु बालनाथ की कथा विरोधी तत्व के रूप में हुई है । योगी वेश में भ्रमण करते हुए जिस प्रकार चित्रावली में सुजान पर कंवलावती मोहित हो जाती है ठीक उसी प्रकार " हंस ज्वाहिर " में मौलाशाह की पुत्री हंस के सौन्दर्य पर मोहित हो जाती है । कवि ने स्वप्न दर्शन के द्वारा नायक हंस के हृदय में अलौकिक सौन्दर्य के प्रतीक ज्वाहिर के प्रति प्रेम का आविर्भाव दिखाया है ।

विरोधी तत्वों के रूप में मार बौना हंस को लौकिक उत्तराधिकार से वंचित करना चाहता है। तथा दिनौर उसे जवाहिर प्राप्ति में बाधा पहुंचाता है। "शब्द" पत्र द्वारा दिनौर को अयोग्य प्रमाणित करना और योग्य वर ढूंढने के लिये प्रयत्न करना आदि प्रसंग पाठक को जिज्ञासु और चकित कर देते हैं। अतः लौकिक प्रेमकथा पर आधारित हंस जवाहिर एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रेमाख्यानक काव्य है। इसमें लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्याख्या सुन्दर ढंग से की गई है। काव्य की नायिका जवाहिर काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है।

दार्शनिक दृष्टि से यह परमात्मा का प्रतीक है। हंस जवाहिर में कवि कासिमशाह ने स्वप्न-दर्शन के द्वारा प्रेम का आविर्भाव दिखाया है। किसी अज्ञात सुन्दरी को स्वप्न में देखकर काव्य का नायक "हंस" संसार के प्रति उदासीन रहने लगता है। स्वप्न दर्शन के पश्चात् नायक के मन में "अभिलाषा" उत्पन्न होता है और वह एक निष्ठ होकर प्रेम मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

सूफियों के यहां प्रेम का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही कर्म है और प्रेम ही परमात्मा है। सूफी ईश्वर को भी प्रियतम रूप में देखते हैं। और लौकिक प्रेम के बहाने अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करते हैं। प्रेम मार्ग में सौन्दर्य की भूमिका विलक्षण है। काव्य की नायिका जवाहिर अप्रतिम सौन्दर्य सम्पन्न है। उसके सौन्दर्य की कल्पना ईश्वरीय सौन्दर्य की भास्वरता है। इसलिये नायक हंस स्वप्न में ही जवाहिर के अनुपम रूप सौन्दर्य को देखकर संसार के प्रलोभनों से निस्संग हो जाता है। नानाविध प्रत्यूहों का प्रत्याख्यान करता हुआ नायक का लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम में परिणत होने लगता है। विवाहोपरान्त नायक-नायिका के प्रेम में अलौकिकता के दर्शन होते हैं।

सूफियों के अनुसार प्रेम भगवान तक पहुंचने का ही सोपान है और समस्त सूफी प्रेमाख्यानक काव्य इसी आधार शिला पर प्रस्थापित है ।

काव्य में चमत्कारपूर्ण तत्वों का यथेष्ट प्रयोग हुआ है । सोते हुए हंस को परियाँ उठा ले जाती हैं और चित्तौर के स्थान पर बिठा जाती हैं । हंस और जवाहिर का परिणय हो जाता है । आनन्दकेलि के पश्चात् परियाँ हंस को पुनः उठा ले जाती हैं और चित्तौर को पुनः अपने स्थान पर रख जाती हैं । काव्य में अतिमानवीय तत्वों के रूप में जवाहिर की सखी " शब्द " पक्षी रूप में जवाहिर के लिये योग्य वर की तलाश में उड़ती है । और हंस को ही योग्य समझ कर हंस के समक्ष जवाहिर के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करती है । हंस जवाहिर में काव्य रूढ़ियों का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर दृष्टव्य है । काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोगों को ज्योतिष पर पूर्ण विश्वास था । ज्योतिषियों ने ही हंस के नक्षत्र देखकर बतलाया था कि हंस स्वदेश से एक बार बिछुड़ जायेगा । किन्तु पुनः वतन लौटेगा और यहाँ का सुल्तान बनेगा अतः हंस अपनी दोनों रानियों के साथ रूम लौट आया । रूम का बादशाह बनने पर उसने बलख पर आक्रमण कर उसे फिर से हस्तगत किया ।

<u>इन्द्रावती -</u>

नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावती एक प्रतीकात्मक प्रेमाख्यान है । इन्द्रावती में उल्लिखित आठ सखा शरीर के साथ रहने वाले इन्द्रिय विकार हैं , राजकुंवर की पूर्व पत्नी " सुन्दर " माया अथवा सांसारिक आकर्षण का , बोहरू मन - स्पर्श , शब्द , रूप , रस और गन्ध ज्ञानेन्द्रियों के विकारों से अथवा सांसारिक वासना के प्रतीक स्वरूप हैं । राजकुंवर की विजय शारीरिक वासनाओं पर विजय का प्रतीक

है । आगमपुर , परमसत्ता का निवास स्थान है । काव्य की नायिका इन्द्रावती परमसत्ता है ।

इन्द्रावती का सम्बन्ध राजघराने से है जिसमें पात्रों के व्यक्तिगत सम्बन्ध और समस्याएं हैं । सर्वप्रथम राजकुंवर के समक्ष उसकी बड़ी समस्या समुद्र से प्रणमोती निकालना था । इस कार्य में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा , युद्ध करना पड़ा , वह बन्दी भी हुआ , अन्त में , सागर पुत्री समता देवी ने प्रसन्न होकर राजकुंवर को वह मोती दे दिया । राजकुंवर से वह मोती प्राप्त कर आपति ने इन्द्रावती और राजकुंवर का विवाह कर दिया ।

कवि नूरमुहम्मद ने काव्य में राजकुंवर और इन्द्रावती का प्रेम विषयक आख्यान का निरूपण अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक किया है । काव्य के नायक राजकुंवर के हृदय में प्रेम भावना का आविर्भाव स्वप्न दर्शन के माध्यम से होता है । स्वप्न में ही इन्द्रावती के रूप सौन्दर्य को देखकर राजकुंवर उस अनुपम सुन्दरी पर मोहित हो जाता है और राजकार्य की ओर से उदासीन होकर विरही बन जाता है ।

काव्य की नायिका इन्द्रावती परमसत्य है । दीपक की ज्योति के समान प्रज्वलित उसके रूप सौन्दर्य पर संसार पतंगे के समान अपने प्राण तक न्योछावर करने को तत्पर रहता है । उसी एक की परम ज्योति से सम्पूर्ण सृष्टि प्रकाशमान है । सूफी नायक सौन्दर्य के ही उपासक है , उस सौन्दर्य में विश्व-राग मिला हुआ है । सृष्टि के कण-कण में उसका सौन्दर्य बिखरा पड़ा है ।[99] वह एक ब्रह्म : इन्द्रावती : ही सौन्दर्यमय है । उस परम सौन्दर्य के कारण ही नायक राजकुंवर में व्याकुलता उत्पन्न होती है और वह समुद्र से मोती निकालने लगता है ।

सूफियों की दृष्टि में नायक-नायिका का मिलन आत्मा-परमात्मा का तादात्म्य है । राजकुंवर तथा इन्द्रावती के विवाह द्वारा कवि नूर मुहम्मद ने आत्मा-परमात्मा के ऐक्य की ओर संकेत किया है ।

काव्य में कथानक रूढ़ियों का पर्याप्त प्रयोग दृष्टव्य है - तपस्या द्वारा प्राप्त दिव्य दृष्टि द्वारा राजकुंवर ने पंथ रहित आगमपुर को देखा और योगी वेश धारण कर अपने आठ साथियों के साथ आगमपुर की ओर चल पड़ा । आगमपुर परमसत्ता का निवास स्थान पर पहुंच कर साधक की सारी वासनाएं केन्द्रित हो जाती हैं और वह परमात्मा के विरह का निरन्तर अनुभव करता हुआ हृदय दर्पण में ईश्वरीय ज्योति के दर्शन का प्रयास करता है । इस आत्मकेन्द्रित अवस्था के बाद साधक को उस परम सौन्दर्य के रूप का आभास होने लगता है । जैसे सूफी साधक अनेक साधनाओं के पश्चात् अपनी अन्तिम मंजिल परमात्मा तक पहुंचता है वैसे ही राजकुंवर अनेक ' मुकामात ' सोपानों को पार करता हुआ अपने अभीष्ट को प्राप्त होता है ।

काव्य का नायक राजकुंवर ' इश्क ' में ही अपने जीवन को अर्पित कर देना चाहता है । काव्य में स्वप्न-दर्शनजन्य प्रेम , योगी द्वारा प्राप्त दिव्य दृष्टि से प्रिया-देश दर्शन , आकाशवाणी द्वारा इन्द्रावती को फुलवारी में मिलन की सूचना आदि कथानक रूढ़ियों का पर्याप्त प्रयोग दृष्टव्य है । काव्य में सत्संगति की महिमा का भी उल्लेख मिलता है । कवि ने शैतान के साथ ' माया ' के कार्यों का भी वर्णन किया है । काव्य के प्रारम्भ में ' स्तुति ' के सन्दर्भ में कवि ने तत्कालीन राजा के रूप में ' मुहम्मदशाह ' की प्रशंसा की है ।

कवि नूर मुहम्मद ने काव्य को आध्यात्मिकता के ढांचे में ढालने का पूर्ण प्रयास किया है । ' प्रेमा ' , ' प्रणामीतो ' तथा दुर्जन आदि पात्र अध्यात्मपरक हैं ।

<u>यूसुफ जुलेखा -</u>

कवि निसार ने अन्य सूफी कवियों की भाँति लोक प्रचलित कथाओं का आधार न लेकर कुरान में वर्णित " यूसुफ जुलेखा " की कथा तथा जामी कृत " यूसुफ जुलेखा " की कथा का आधार लिया है । कथारम्भ से लेकर अन्त तक का कथानक कुरान में वर्णित " यूसुफ जुलेखा " की कथा से मिलता-जुलता है । कथास्थान कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो कुरान में नहीं मिलते ।

यूसुफ से जुलेखा का मिलन , विवाह एवं दाम्पत्य प्रेम का वर्णन कवि निसार ने जामी की मसनवी " यूसुफ जुलेखा " के आधार पर किया है । अधिकांश प्रेमाख्यानों में जिस प्रेम पद्धति का वर्णन किया गया है उसका आरम्भ रूप , गुण , श्रवण या साक्षात्-दर्शन से होता है किन्तु निसार कृत " यूसुफ-जुलेखा " में प्रेम का आविर्भाव स्वप्न-दर्शन से होता है । अन्य सूफी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा यूसुफ जुलेखा में नायिका " जुलेखा " स्वप्न में नायक यूसुफ के सौन्दर्य को देखकर उस पर मोहित हो जाती है और उसकी प्राप्ति का संकल्प कर लेती है ।

सूफी आध्यात्मिक प्रेम की उपलब्धि के लिये सांसारिक प्रेम को सोपान के रूप में ग्रहण करते हैं । काव्य में कवि निसार द्वारा वर्णित प्रेम लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है । नायक यूसुफ के सौन्दर्य के आधार पर ईश्वर की कल्पना की गई है । और काल्पनिक सौन्दर्य के वशीभूत हो जुलेखा सांसारिक विषयों का त्याग करती है । अर्थात " अहं " का पूर्ण विसर्जन कर परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रेम के अतिरिक्त सूफियों को कुछ भी साधन ऐसा नहीं दिखाई देता जो उनको " फना " की स्थिति में पहुंचा दे । निसार के प्रेमाख्यान में ईश्वरीय गुणों तथा सौन्दर्य का प्रतीक नायक यूसुफ जिसके सौन्दर्य को स्वप्न में देखकर नायिका जुलेखा प्रेम विमोहित हो जाती है [30]

और इस उच्चतम प्रकार द्वारा उसे अपना बनाना चाहती है । कवि कहते हैं कि इसके पश्चात् जब जुलेखा को यूसुफ की प्राप्ति होती है तो यूसुफ के स्थान पर वह परमेश्वर प्रेम की डोर खींच सकती है । स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम जब उच्च, पवित्र और व्यापक भाव भूमि पर पहुंच जाता है तो वह ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है अर्थात् जब इश्क मजाजी, इश्क हकीकी में परिणत हो जाती है तब साधक आत्मानन्द पाता है और वह ईश्वरीय सौन्दर्य पर विमुग्ध होता हुआ परम साक्षात्कार के लिये प्रयत्नशील रहता है । काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि ने कहीं पर भी नारी रूप में ईश्वर की कल्पना नहीं की है अपितु ईश्वरीय सौन्दर्य के प्रतीक यूसुफ का सौन्दर्य ही अद्वितीय है । उसका शान्त एवं शक्तिमान चरित्र सराहनीय है ।

रचना के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यूसुफ को स्वप्न विचारने का पूर्ण ज्ञान था । अपने इस अनुभव के आधार पर यूसुफ सुल्तान को उसके देखे स्वप्न का रहस्य बता देता है । जिस पर प्रसन्न होकर सुल्तान यूसुफ को बन्धन मुक्त कर अपना मंत्री नियुक्त कर देता है । उधर जुलेखा को यूसुफ प्राप्ति के लिये तप करते-करते चालीस वर्ष व्यतीत हो गये । उसके नेत्रों की ज्योति भी मन्द पड़ गयी । वह बूढ़ी हो गयी । अपना सर्वस्व खोकर वह केवल प्रेम की भिखारिन मात्र रह गयी । एक दिन यूसुफ की सवारी शहर में निकलनी ही थी । नेत्रहीन होकर भी जुलेखा ने यूसुफ को देखना चाहा और यूसुफ के दर्शनार्थ मार्ग में खड़ी हो गयी । यूसुफ देखकर ही जुलेखा को पहचान गया और सारा हाल मालूम किया । खुदा की दुआ से जुलेखा पुनः तारुण्यमयी बन गयी और दोनों यूसुफ तथा जुलेखा का परिणय हो गया । अब प्रेमी यूसुफ को ईश्वर रूप में स्वीकार करके जुलेखा ईश्वरोन्मुख होती गयी अर्थात् इश्क मजाजी छोड़कर वह इश्क हकीकी की ओर झुकने लगी ।

<u>नूरजहां -</u>

ख्वाजा अहमद कृत नूरजहां नाम से इसके कथानक के ऐतिहासिक होने का भ्रम होता है । वास्तव में नूरजहां का कथानक काल्पनिक है ।[२१] अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्य ग्रन्थों में नायक एवं नायिका में परस्पर प्रेम , स्वप्न दर्शन , चित्रादि-दर्शन या गुण श्रवण के द्वारा होता है किन्तु नूरजहां में खुरशेद नूरजहां को और गुलबोस खुरशेद को स्वप्न में देखता है । इस प्रकार काव्य में एक त्रिकोणात्मक संघर्ष की स्थिति बनाई गई है ।

ईरानगढ़ नामक नगर के सुल्तान मलिकशाह के पुत्र खुरशेद ने एक दिन स्वप्न में स्वर्णसिंहासनासीन सुन्दरी को देखा और उसके विरह में पागल हो उठा । उधर सुजान के सुल्तान सबरशाह की पुत्री नूरजहां की सखी सुमति ने ईरानगढ़ के राजकुमार खुरशेद के रूप सौन्दर्य का वर्णन नूरजहां से किया जिसे सुनकर नूरजहां भावाभिभूत हो उठा ।

नायक खुरशेद स्वप्न में देखी सुन्दरी : नूरजहां : की खोज में योगी वेष धारण कर साथियों के साथ घर से निकल पड़ा । उधर रूपनगर के सुल्तान ने भी खुरशेद की खोज में चारों दिशाओं में अपनी सेना भेज दी । मार्ग के विभिन्न संकटों को पार करता हुआ खुरशेद रूपनगर के सुल्तान की सेना के साथ गुलबोस के यहां पहुंचा , वहां उन दोनों का विवाह हो गया , किन्तु सुजानराज के पूर्व की परियां गुलबोस को उठा ले गयीं । खुरशेद गुलबोस की खोज के बहाने नूरजहां की खोज में चल पड़ा । सुमति के उचित मार्गदर्शन के फलस्वरूप वह सुजान पहुंचा और नूरजहां के साथ पाणिग्रहण कर आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगा । इस बीच परियां गुलबोस को पुनः उसी स्थान पर पहुंचा गयीं । खुरशेद अपनी दोनों पत्नियों को साथ लेकर स्वदेश लौट आया और आनन्दपूर्वक रहने लगा ।

रचना के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि नायक खुर्शेद नायिका नूरजहाँ में विराट-सत्ता का सौन्दर्य प्राप्त करता है । उसमें अलौकिकता का पूर्ण समावेश है । नायक खुर्शेद निश्चित मन से उसकी ओर उन्मुख होता है परन्तु उसकी प्रत्येक तड़पन में ईश्वर की स्मृति है । और उसके प्रत्येक प्रयास में उस अनुपम स्वरूप को पाने का आग्रह है , उसका प्रत्येक प्रयास स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ता है ।

सूफी उपासना के अनुकूल अनन्त सौन्दर्य एवं अनन्त शक्ति का रूप कवि ख्वाजा अहमद ने नायिका नूरजहाँ में प्रस्तुत किया है । खुर्शेद उसके प्रेम में मानवीय गुणों को छोड़ता हुआ ईश्वरीय गुणों की ओर बढ़ता है । काव्य की दृष्टि सूफी सिद्धान्तों के पूर्णतः अनुरूप है जिसमें एक राजकुमार रूप , गुण , श्रवण , स्वप्न दर्शन अथवा साक्षात् दर्शन के द्वारा किसी राजकुमारी के रूप सौन्दर्य पर मोहित हो उससे प्रेम करने लगता है परन्तु मार्ग की बाधाओं के कारण प्रेमी प्रेमिका का मिलन सम्भव नहीं हो पाता , अन्त में किसी हितैषी या पथ-प्रदर्शक की सहायता से दोनों का मिलन होता है । यही परिस्थिति काव्य के नायक खुर्शेद की है जो स्वप्न में नूरजहाँ के अप्रतिम रूप सौन्दर्य को देखकर उसके प्रेम में दीवाना हो जाता है । अन्त में सुमति का उचित मार्ग दर्शन पाकर दोनों का मिलन होता है ।

काव्य में योग भावना का नितान्त प्रभाव परिलक्षित होता है । खुर्शेद ख्वाजा अहमद कृत नूरजहाँ का नायक खुर्शेद साधक बनने से पूर्व योगी रूप धारण कर प्रेम मार्ग पर अग्रसर होता है । अधिकांश प्रेमाख्यानों के नायक ऐसी ही वेश-भूषा धारण करते हैं । अतः हम कह सकते हैं कि प्रेमाख्यानों के नायक विदेशी रूप न अपना कर भारतीय रूप धारण कर साधना के मार्ग पर अग्रसर होते हैं ।

सूफी काव्य में नायक का घर-बार छोड़ कर निकल पड़ना और प्रिय प्राप्ति के लिये आत्म-विसर्जन करना सूफी काव्य की दिव्य साधना है। नायक खुर्शेद एक दिव्यानुभूति के प्रति आकर्षित होकर आध्यात्मिक सत्य की प्राप्ति करता है। और उसका सांसारिक व्यापारों एवं क्रियाओं से विरक्त हो परमात्मा की सत्ता में इस भाव से घुल मिल जाता है कि उसका अपने प्रियतम से पृथक कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

नूरजहाँ की सखि सुमति द्वारा योग्य वर की तलाश में उड़कर ईरान पहुँचना और पुनः उड़कर लौटकर नूरजहाँ से खुर्शेद के रूप सौन्दर्य का वर्णन करना तथा सुलाणरास के पुत्री परियों द्वारा गुलशेद को उठा ले जाना आदि वर्णनों द्वारा काव्य में कुतूहल और चमत्कार की सृष्टि हुई है।

भाषा प्रेम रस -

शेख रहीम कृत " भाषा प्रेमरस " की रचना के समय एकबई उस्मान का स्वर्गवास हो चुका था, उनके पुत्र पंकज जायसी की कीर्ति सम्पूर्ण जगत में छायी हुई थी।

भाषा प्रेमरस की कथा पूर्णतः काल्पनिक है। रूपनगर के राजा रूपसेन की पुत्री चन्द्रकला और राजा के मंत्री कुलसेन का पुत्र प्रेमसेन दोनों एक ही पाठशाला में पढ़ते थे। साथ रहते-रहते दोनों में प्रेम का आविर्भाव हो गया। राजा रूपसेन को दोनों के प्रेम की जानकारी हो जाने पर राजा ने चन्द्रकला की पढ़ाई बन्द करा दी। दोनों चन्द्रकला और प्रेमसेन विरह में व्याकुल रहने लगे। किसी प्रकार मालिन-पोस्तिनो के माध्यम से अन्तःपुर में दोनों का मिलन हुआ। इस मिलन की बात सुनकर मंत्री कुलसेन ने प्रेमसेन को घर से निकाल दिया। वन में भटकते हुए प्रेमसेन की भेंट सत्पाल नामक गुरु से हुई और वह साधना में लीन रहने लगा।

एक रात सोती हुई चन्द्रकला को दैत्य उठा ले गये। चन्द्रकला के गायब हो जाने पर राजा रूपसेन ने मंत्री कुबसेन को कारागार में डाल दिया। प्रेमसेन की माता दुखी हो वन-वन भटकने लगी। रत्नपाल गुरु की सहायता से किसी प्रकार माँ-बेटे का मिलन हुआ। प्रेमसेन अब भी चन्द्रकला के विरह में दुखपूर्ण जीवन व्यतीत करता रहा और एक दिन चन्द्रकला की खोज में घर से निकल पड़ा। अनेक कठिनाइयों के पश्चात् प्रेमसेन को चन्द्रकला की प्राप्ति हुई। दैत्य जो सोती हुई चन्द्रकला को पर्वत पर उठा ले गया था, का वध कर प्रेमसेन चन्द्रकला को साथ लेकर रूपनगर लौट आया। और दोनों का विवाह हो गया। राजा रूपसेन ने कुबसेन को भी कैद से मुक्त कर दिया। उधर देश निकाले का दण्ड पाकर मालिन ने प्रतिशोध की भावना से इस्लामाबाद के सुल्तान आबिदशाह के समक्ष चन्द्रकला के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया जिसे सुनकर रूप लोलुप आबिदशाह ने रूपनगर पर धावा बोल दिया परन्तु चन्द्रकला के रूप सौन्दर्य को देखते ही वह एक भिखारी बन गया। चन्द्रकला और प्रेमसेन आनन्द रहने लगे।

रचना के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रेमसेन बाल्यावस्था में अत्यन्त चतुर और चालाक था। राजा रूपसेन का उसे तनिक भी भय नहीं था। वह नारी वेश में अन्तःपुर में जाकर चन्द्रकला से मिलता था। पिता द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर भी वह प्रेमपथ से विचलित नहीं होता बल्कि चन्द्रकला के प्रति उसका प्रेम और अधिक प्रगाढ़ हो जाता है। सूफी कवियों के अनुसार प्रेम ही इस जगत में सराहनीय है। इसी प्रेम के द्वारा वे परम तत्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। प्रेम को सूफी ईश्वर प्राप्ति का निश्चित साधन मानते हैं।

शेख रहीम ने " भाषा प्रेमरस " में प्रेमसेन को प्रेम का आदर्श माना है वह प्रेम के लिये अपना जीवन उत्सर्ग तक कर देता है। प्रेम के लिये ही सुख त्याग करके वह गुरु रत्नपाल के साथ वन में त्यागमय जीवन व्यतीत करता है।

काव्य में नायक प्रेमसेन रूप-सौन्दर्य सम्पन्न है। काम का साक्षात् प्रतिमूर्ति है। रूप वैभव सम्पन्न होने के कारण ही प्रेमसेन से दूर रहकर भी चन्द्रकला की समस्त भावनाएं प्रेमसेन की आश्रित थीं।

सूफी सिद्धान्तों के अनुसार नायिका चन्द्रकला ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतीक है। वही जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य है, वही उसका प्राप्तव्य है। उसकी प्राप्ति के अभाव में मानव जीवन व्यर्थ है। प्रेम मार्ग सर्वस्व न्यौछावर करके कठोर साधना द्वारा उसे प्राप्त करना जिस मनुष्य ने नहीं सीखा उसने अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। अतः नायक प्रेमसेन द्वारा अन्ततः उसकी प्राप्ति ईश्वरीय सौन्दर्य में पूर्णतः अत्य होने की ओर संकेत करता है।

काव्य में दैत्य द्वारा चन्द्रकला का अपहरण निषिद्ध कक्ष की भीत रखकर खोलने का आदेश तथा नरमुण्डों द्वारा दैत्य को मारने का उपाय बताना आदि कथानक रूढ़ियों का पर्याप्त उपयोग है। " भाषा प्रेम रस " में रसात्मक स्थलों की कमी नहीं है। चन्द्रकला का दैत्य के यहाँ निवास तथा सन्यासी गुरु की कृपा से प्रेमसेन का जीवित होना ऐसे मार्मिक स्थल हैं जहाँ पाठक की केवल कौतूहल वृत्ति ही शान्त नहीं होती प्रत्युत हृदय भी रम जाता है। काव्य में महाकाल दैत्य का संहार प्रेमसेन की दृढ़ता का परिचायक है तथा सम्राट आलिम का रूपनगर पर आक्रमण असत् पर सत् की विजय का द्योतक है।

रचना के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस युग में " देश निकाला " दिया जाने का दण्ड अत्यन्त जोरों पर था। देश निकाले का ही दण्ड पाकर मालिन-मोहिनी सम्राट आलिम के समक्ष चन्द्रकला का रूप सौन्दर्य वर्णित कर उसे युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित करती है।

प्रेम-दर्पण -

कवि नज़ीर के प्रेमदर्पण और कवि निसार की " यूसुफ जुलेखा " में कोई नवीनता नहीं है । दोनों की कथावस्तु में बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है तथा कथा-बिन्दु लगभग समान है ।

प्रेम-दर्पण में किनआ नगर के याकूब के पुत्र यूसुफ और तैमूर देश के सुल्तान की पुत्री जुलेखा की प्रेमकथा वर्णित है । नायक-नायिका में प्रेम का आविर्भाव स्वप्न दर्शन के माध्यम से होता है । रूप गुण सम्पन्न जुलेखा एक दिन स्वप्न में रूपवान युवक यूसुफ को देखकर उस पर मोहित हो विरह विदग्ध रहने लगी । यूसुफ के पिता याकूब अन्य पुत्रों की अपेक्षा यूसुफ को अत्यधिक प्यार करते थे । ईर्ष्यावश सभी भाइयों ने मिलकर यूसुफ को एक अन्धे कुएं में गिरा दिया । संयोगवश एक सौदागर उस मार्ग से गुजर रहा था जिसने यूसुफ पर तरस खाकर उसे कुएं से बाहर निकाला और अपने साथ मिस्र ले गया । जुलेखा ने उसे देखते ही पहचान लिया । जुलेखा ने अनेक प्रकार से यूसुफ को आकर्षित करने का प्रयास किया परन्तु असफल रही । हार कर जुलेखा ने यूसुफ को बन्दी बना लिया । मिस्र में रहते हुए एक दिन यूसुफ ने मिस्र के सुल्तान को उसके देखे स्वप्न का रहस्य बताया । इस पर सुल्तान ने प्रसन्न होकर यूसुफ को अपना वज़ीर नियुक्त किया । जुलेखा की करुणापूर्ण गाथा सुनकर यूसुफ ने उसे अपने पास बुला लिया और जुलेखा का विवाह यूसुफ के साथ कर दिया ।

नज़ीर के प्रेमदर्पण में नायक-नायिका के मिलन से पूर्व स्वप्न दर्शन-जन्य प्रेमोत्पत्ति कथानक रूढ़ि का सहारा लेकर भावी प्रेम को और अधिक गहरा बनाने का प्रयास किया गया है । सूफी प्रेमाख्यानों का प्रमुख प्रतिपाद्य प्रेम है । सूफी

कवियों ने प्रेमाख्यानों के नायकों को विकट परिस्थितियों में रखते हुए उनके प्रेम का विकास प्रदर्शित किया है। काव्य में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन स्वयं में एक प्रतीक है अतः प्रेमकथा के माध्यम से सूफी कवि आत्मा-परमात्मा के प्रेम की प्रतीकात्मक कथा की अभिव्यक्ति करते हैं और रूप सौन्दर्य-वर्णन के माध्यम से परमात्मा के जमाल-जलाल का उद्घाटन करते हैं।

जुलेखा लौकिकतः यूसुफ की प्रेमिका और पत्नी है परन्तु अलौकिक रूप में वह साधिका रूप में चित्रित की गई है। नायक यूसुफ की मृत्यु के अनन्तर जुलेखा भी प्राण त्याग देती है। अतः कवि नज़ीर : प्रेम दर्पण : और निसार : यूसुफ जुलेखा : दोनों ही रचनाओं का परिवेश विदेशी है। दोनों ही के माध्यम से मुसलमानी सभ्यता और संस्कृति का अंतरंग परिचय और परिज्ञान होता है। यूसुफ और जुलेखा अभिजात्य वर्ग से संबद्ध हैं लेकिन मानव सुलभ दुर्बलताओं का चित्रण विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। यूसुफ जुलेखा के प्रति आकृष्ट है। इस बात को लेकर उसके भाई उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। ईर्ष्या क्रमशः हिंसा के रूप में परिवर्तित हो जाती है और यूसुफ के भाई यूसुफ की हत्या करने का प्रयत्न करते हैं। यह संयोग की बात है कि यूसुफ की मृत्यु नहीं होती और उसके प्राणों की रक्षा हो जाती है।

जुलेखा भी यूसुफ को अपनी ओर आकर्षित करने पर असफल होने पर यूसुफ के साथ अमानवीय व्यवहार करती है। जब वह यूसुफ को अपने रूप और गुण से रिझा नहीं पाती तो यूसुफ को बन्दी बना लेती है। वस्तुतः यह उसका काम भाव है जो कि उसे इस प्रकार के अवांछनीय कार्य करने को विवश करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यूसुफ-जुलेखा और प्रेम दर्पण दोनों ही रचनाओं में मानव दुर्बल विकारों के प्रभाव की अभिव्यंजना की गयी है। कदाचित किसी रचना को आध्यात्मिक रंग देने के लिए इनका उल्लेख आवश्यक भी है। जैसे - उड़िया मिट्टी से निखरने के लिये क्षारपट की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक उत्कर्ष की उपलब्धि के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर जैसे विकारों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक होता है। दोनों ही कवियों ने इसीलिये अपनी कृतियों में मानवविकारों से उत्पन्न दुःखद चित्र प्रस्तुत किये हैं। विषय को सरल सहज और बोधगम्य बनाने के लिये इस प्रकार के चित्रण निश्चय ही प्रासंगिक होते हैं।

रचनाकारों ने इसके माध्यम से अपनी रचनाओं को निखारने और अलंकृत करने का सार्थक उपक्रम किया है। ये रेखांकित करने की कदाचित अपेक्षा नहीं कि कवियों का लक्ष्य सूफी आध्यात्मिक चेतना को जागृत करना है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों के रचयिता प्रायः मुसलमान कवि रहे हैं। इन मुसलमान सूफी कवियों ने हिन्दू समाज में प्रचलित लोक कथाओं का आधार लेकर जनता में प्रचलित कथाओं को उन्हीं की ठेठ भाषा में कहकर अपना जन कवि होना सिद्ध कर दिया है।[22] कुछ प्रेमाख्यानों को छोड़कर लगभग सभी प्रेमाख्यान जैसे उसमान की चित्रावली, शेखनबी की ज्ञानदीप, दुखहरनदास की पुहुपावती, कासिमशाह का हंस जवाहिर तथा नूर मुहम्मद की इन्द्रावती में काल्पनिक आधार को अपनाकर काव्य रचना की गई है। ग्रन्थारम्भ में क्रमशः ईश्वर, पैगम्बर और उसके चारों मित्र, कवि के गुरु और समसामयिक राजा की प्रशंसा की गई है।

प्रेमाख्यानों की रचना भारतीय चरित[23] काव्यों की भांति सर्गबद्ध शैली में न होकर फारसी मसनवी के ढंग पर हुई है। वस्तु संगठन की दृष्टि से सूफी कवियों पर अपभ्रंश के चरित काव्यों का भी प्रभाव पड़ा है। किसी एक घटना

प्रसंग में कितने उपकथाओं का समावेश किया जाये यह भी वर्ण्य विषय को देखते हुए कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार किया है।

सूफी काव्यों की कथावस्तु को प्रारम्भ, प्रयत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है। कथानक की भूमिका के प्रारम्भ में निःसन्तान राजा को पुत्रोत्पत्ति तथा उसके युवावस्था तक पहुंचने का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् स्वप्न दर्शन, गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन तथा साक्षात्-दर्शन के द्वारा नायिका के रूप सौन्दर्य पर आसक्त होना कथानक प्रारम्भ कहलाता है। इसके बाद नायक की ओर से नायिका को प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ होता है और यहीं से प्रयत्नावस्था आरम्भ होती है। मार्ग की कठिनाइयों, राक्षसों से युद्ध तथा प्रासंगिक कथाओं के समावेश से कथा का विस्तार होता है। नायक के द्वारा नायिका के नगर में पहुंचने पर प्राप्त्याशा स्थान पाती है, किन्तु आकस्मिक दुर्घटना द्वारा नायक-नायिका का विछोह हो जाता है। दोनों प्रेमी एक दूसरे से दूर जा पड़ते हैं और उनका मिलन दुर्लभ हो जाता है। यही नायक की नियताप्ति की अवस्था कहलाती है। अनेक प्रयत्नों के पश्चात् नायक-नायिका के मिलन द्वारा फलागम की पूर्ति होती है। सूफी काव्यों में अधिकांश कथानक का अन्त वियोग में ही होता है और स्वर्ग में ही नायक-नायिका के मिलन की भावना को फलागम के रूप में अपनाया जाता है।

अधिकांश सूफी काव्यों में आश्चर्य तत्त्वों के सहारे कथानक उद्देश्य की ओर मुड़ता है। काव्यों में आधिकारिक कथा के साथ-साथ प्रासंगिक कथाओं की संयोजना भी की गई है। नायक के भांति नायक के मित्र की कहानी भी साथ-

लाभ करता है । नायक की फल प्राप्ति के अनन्तर उसके मित्र का मिलन भी उसकी प्रेमिका से हो जाता है । ` मृगावती में राजकुमार और रुक्मिणी की कथा , मधुमालती में प्रेमा एवं ताराचन्द की कथा तथा चित्रावली में सुजान और कौलावती की कथा प्रासंगिक कथा के रूप में वर्णित है । इन प्रासंगिक कथाओं के नायक एक ओर तो नायक की सहायता करते हैं दूसरी ओर स्वयं भी सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

सूफी प्रेमाख्यानों का मुख्य उद्देश्य प्रेम की अभिव्यंजना करना है । प्रेम का उद्भव , साधक की विविध कठिनाइयाँ , प्रेमिका से मिलन-सुख वियोग तथा विरहानुभूति आदि प्रसंगों को सूफी कवियों ने अपने काव्यों में उचित स्थान दिया है ।

सूफी रचनाओं में सन्तानाभाव , सन्तानोत्पत्ति , ज्योतिषियों की भविष्यवाणी , नायिका के गुण-श्रवण , चित्र-दर्शन , स्वप्न दर्शन अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम का प्रादुर्भाव , मिलन के लिये आतुरता , पूर्व रागजन्य विरह , नायिका का नख-शिख वर्णन नायक के प्रति उसकी उत्सुकता , प्रेमी से भिन्न पुरुष से नायिका का विवाह , नायक के प्रति प्रेमनिष्ठता नायक की साधना और कठिनाइयाँ , मिलन और विरह तथा नायक के निधन पर नायिका का सती होना आदि प्रसंग प्रेमाख्यानक काव्यों के मुख्य अंग रहे हैं ।

सूफी काव्यों में ` यूसुफ जुलेखा ` और ज्ञानदीप को छोड़कर शेष सभी सूफी काव्यों में नायिका की प्राप्ति का प्रयत्न नायक की ओर से ही होता है ।

सूफी प्रेमाख्यानों में " प्रेम " की गूढ़ाभिव्यंजना की गई है । लौकिक प्रेम की बातों पर चलकर उनमें आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना की गई है अर्थात् सूक्ष्म भावों के द्वारा इस कथा का वर्णन किया गया है । " वर्ण्य विषय " की दृष्टि से सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में हिन्दू जीवन और उसके लोकाचार का वर्णन अलौकिक पात्रों के रूप में किया गया है जो सन्तान का वरदान देते, पात्रों की परीक्षा लेते तथा प्रेम पंथ के पथिकों की सहायता करने में सहयोग देते हैं । " हंस जवाहिर " का हंस, चन्द्रावती का राजकुंवर तथा " चित्रावली " का सुजान अलौकिक पात्रों के वरदान से ही उत्पन्न होते हैं । " पद्मावत " में भवानी एक सुन्दर अप्सरा का रूप धारण कर रत्नसेन की परीक्षा लेने के लिये उपस्थित होती है और कहती है -

सुनहु कुंवर मोसौं एक बाता । जस रंग मोर न औरहि राता ।
औं विधि रूप दीन्ह है तोकां । उठा सो सबद जाइ सिव लोकां ।
तब हौं तो कंह इन्द्र पठाई । गै पदुमिनि तैं अछरि पाई ।
अब तजु जरन मरन तप जोगू । मो सौं मानु जनम भरि भोगू ।[२६]

रत्नसेन सिंहलगढ़ के पास किंकर्तव्यविमूढ़ होकर जब अपना अन्त करने के लिये तैयार होता है, तभी शिव आकर उसे सिद्धि गुटिका देते हुए सिंहलगढ़ में प्रवेश करने का मार्ग बताते हैं -

सिद्धि गोटिका राजै पावा । औ भै सिद्धि गनेस मनावा ।
जब संकर सिधि दीन्ह गोटिका । परी हूल जोगिन्ह गढ़ छेका ।।[२७]

काल्पनिक पात्रों के रूप में राक्षस एवं परियों का वर्णन मृगावती, मधुमालती पद्मावत तथा चित्रावली आदि काव्यों में देखने को मिलता है । परियों का चित्रण कासिमशाह कृत हंस जवाहिर में हुआ है । कासिमशाह परियों की सहायता द्वारा हंस और जवाहिर परिणय सूत्र में बंधते हैं ।

प्राकृतिक पात्रों के रूप में पशु-पक्षियों का उल्लेख मिलता है । 'पद्मावत' का सुआ, 'चन्द्रावती' का तोता, नागमती का पंछी, 'चित्रावली' का अजगर एवं मत्त हाथी, 'मृगावती' में हरिणी के रूप में स्वयं मृगावती तथा 'मधुमालती' में स्वयं पक्षी रूप में मधुमालती आदि सभी पात्र प्राकृतिक पात्र के रूप में वर्णित हैं । प्राय: सभी सूफी काव्यों में प्रकृति का खुला चित्रण समुद्र, सरोवर, वन-उपवन तथा नगर वर्णन के रूप में मिलता है । रत्नसेन की नौका पद्मावती के साथ घर आते समय छिन्न-भिन्न हो जाती है । इसी प्रकार 'मधुमालती' में मधुमालती की खोज में निकला मनोहर चार मास तक सागर की यात्रा करता है । सरोवर वर्णन के रूप में मानसरोवर का सुन्दर वर्णन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

खेलत मानसरोवर गईं । जाइ पालि पर ठाढ़ी भईं ।
देखि सरोवर रहसहिं केली । पदुमावति सौं कहहिं सहेली ।[26]

नगर वर्णन का उल्लेख पद्मावत, चित्रावली, चन्द्रावती तथा पुहुपावती आदि सभी में मिलता है ।

'षट्-ऋतु वर्णन' तथा 'बारहमासा-वर्णन' प्राय: सभी प्रेमाख्यानक काव्यों का मुख्य अंग है । प्रकृति-चित्रण करते हुए उसे सहानुभूतिमय रूप में भी प्रकट किया गया है । मनुष्य के सुख दुख के प्रति सहानुभूति रखने वाली प्रकृति का चित्रण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है -

जौं न फिरावसि पिउ मोर मारी , पुनि देखु गिरि कानन झारी ।
करै पुकार मंजीरन गोया , कुहुकि कुहुकि बन कोकिल रोया ।[27]

इसी प्रकार पद्मावत में पक्षी आधी रात को बोलकर नागमती को सान्त्वना देता है ।

वियोगिनी की प्रकृति का दुःखमय स्वरूप और कभी उदास स्वरूप अपनी प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता प्रतीत होता है । " चित्रावली " में चित्रावली के विरह को देखकर कुसुम बारह मास तक फल नहीं धारण करती । अनार का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है किन्तु उसके प्रियतम का हृदय नहीं फटता -

वनस्पति सुनि विथा हमारा । बरहै मास होइ पतझारी ।
दारिउँ हिया फाटि सुनि धारा । पै पिय और न भया दरारा ॥[२८]

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में शृंगार रस का चित्रण मुख्य रूप से हुआ है । शृंगार के दोनों रूप संयोग तथा विप्रलम्भ के अतिरिक्त सम्भोग शृंगार का चित्रण भी मिलता है । सम्भोग शृंगार के चित्रण में कहीं-कहीं सूफी कवियों ने मर्यादा का परित्याग कर दिया है । शृंगार के अतिरिक्त सूफी प्रेमाख्यानों में " वीर रस " का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है । इन दो रसों के अतिरिक्त शान्त , वात्सल्य , वीभत्स तथा करुण रस के उदाहरण भी मिलते हैं ।

सूफी कवियों ने भावों की तीव्रता के लिये अलंकारों के रूप में उपमा , उत्प्रेक्षा , रूपक , उल्लेख , सन्देह तथा अतिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग किया है तथा विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकों का सहारा लिया है । प्रेमाख्यानों के नायक आत्मा के प्रतीक तथा नायिकाएं परम सौन्दर्य के प्रतीक रूप में चित्रित की गई हैं । दोनों का मिलन आत्मा-परमात्मा के मिलन के रूप में चित्रित किया गया है और सूफी की सम्पूर्ण साधना परम्परा में " फना " : लीन : होकर " बका " : अस्थिता : हो जाने की साधना कही गई है ।

सूफी काव्यों में अविवाहिता कुमारियों की स्वच्छन्द क्रीड़ा पूर्व पत्नी की विरहावस्था तथा पूर्व पत्नी द्वारा प्रेषित वियोग सन्देश और नायक द्वारा

प्रतिनायक के पराजय आदि का भी उल्लेख मिलता है। ' बहु विवाह ' की प्रथा के कारण कई सूफी काव्यों में सौतिया-डाह अथवा सपत्नियों में पारस्परिक वैमनस्य का चित्रण भी किया गया है। चन्दायन[२९] और पद्मावत[३०] में स्पष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इसके अतिरिक्त पातिव्रत्य, शील तथा सतीत्व के महत्त्व की चर्चा भी इन प्रेमाख्यानों में मिलती है। ज्योतिषी, भूत-प्रेत, योगी तथा सिद्ध पुरुष आदि के वर्णनों को भी प्रेमाख्यानक काव्यों में यथास्थान समाविष्ट किया गया है।

00 ——— 00

सन्दर्भ - टिप्पणी

अध्याय - ५

क्र०सं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
१-	डा० शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	८७
२-	प० डा० माताप्रसाद गुप्त	मृगावती	५
३-	डा० शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	३७
४-	प० डा० माताप्रसाद गुप्त	जायसी ग्रन्थावली	१६८
५-	वही	"	१५४
६-	वही	"	३१२-१५
७-	वही	"	५५३-५४
८-	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	पदमावत में काव्य संस्कृति और दर्शन	३६२
९-		जायसी ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा	३००
१०-	मंझन	मधुमालती	
११-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	३५६
१२-	प० जगन्मोहन वर्मा	चित्रावली	८
१३-	डा० शिवसहाय पाठक	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन	११६
१४-	वही	"	१६२
१५-	वही	"	१६२
१६-	रामपूजन तिवारी	सूफीमत साधना और साहित्य	२६३
१७-	डा० जियालाल हण्डू	कश्मीरी तथा हिन्दी सूफी-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	२५८

१८-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४३४

१९- उन्होंने कहा है कि अन्तिम सत्य का रूप पूर्ण सौन्दर्य का रूप है । यह सत्य स्वयं तो प्रच्छन्न है , किन्तु सृष्टि रूपी दर्पण में उसका जो बिम्ब पड़ता है , वही उसकी अभिव्यक्ति है । यह अभिव्यक्ति प्रेम का संकेत देती है , प्रेम है सौन्दर्य को पहचानने की शक्ति , प्रेम है सौन्दर्य पर निछावर होने की योग्यता ।

रामधारी सिंह दिनकर
संस्कृति के चार अध्याय । पृष्ठ - २५

२०-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	५१६
२१-	वही	,,	५३०
२२-	वही	,,	३२७
२३-	डा० कमल कुलश्रेष्ठ	हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य	८२
२४-	डा० माताप्रसाद गुप्त	जायसी ग्रन्थावली	२६१
२५-	वही	,,	२६६
२६-	वही	,,	१९५
२७-	डा० जगन्मोहन वर्मा	चित्रावली	१६७
२८-	वही	,,	१६८
२९-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	३३२
३०-	डा० माताप्रसाद गुप्त	पद्मावत	४१४-१५

00 ——— 00

अध्याय - ६

सांस्कृतिक लाक्षणिकता एवं रचनाओं में उनकी अभिव्यक्ति -

सूफी प्रेमाख्यानों में हमें मुसलमान और हिन्दू संस्कृतियों का समन्वित रूप देखने को मिलता है । सूफी कवि संस्कारवश अपने जातीय आचार-विचार से अंतरंग स्तर पर जुड़े हुए थे , किन्तु भारतीय लौकिक प्रेम कहानियों ने उनका ध्यान आकर्षित किया । इसका सम्भव कारण यह भी सकता है कि इन कहानियों में उन्हें एक अपनापन मिला । उन्हें लगा कि भारतीय जन जीवन में व्याप्त प्रेमकथाएं लैला-मंजनू , शीरीं फरहाद , यूसुफ-जुलेखा के समान ही हैं और उनमें जीवन की वही धारा प्रवाहित है जो उनकी अपनी संस्कृति और सभ्यता से संपृक्त कहानियों में है । इन सूफी कवियों ने पूरी तन्मयता और मनोयोग से अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जन जीवन के स्पंदन को अभिव्यक्त किया है ।

किसी भी युग के रीति-रिवाज तत्कालीन समाज की संस्कृति के प्रतीक माने जाते हैं । भारत में ग्रीक , शक , कुषाण , हूण आदि अनेक विदेशी जातियों का आगमन हुआ । यहां पर स्थायी रूप से बस जाने के बाद उनकी संस्कृति आर्य संस्कृति में पूर्णतः घुल मिल गई परन्तु हिन्दू संस्कृति और सूफी संस्कृति आपस में पूरी तरह घुल-मिल नहीं सकी । दोनों संस्कृतियों के रीति-रिवाज खान-पान , वेश-भूषा , रहन-सहन , आचार-विचार आदि ने एक दूसरे को प्रभावित किया ।

सूफी प्रेमाख्यानों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि सूफी कवियों ने हिन्दू जन-जीवन में परिव्याप्त बहुतेरी वस्तुओं को ग्रहण किया है । उपरोक्त दृष्टि से ज्ञात होता है कि सूफियों ने हिन्दुओं की लोककथाओं को अपनी रचनाओं का

आधार बनाया है । स्वभावत: उन्होंने हिन्दुओं की परिवार-व्यवस्था, सामाजिकता, राजनीतिक परिवेश, धर्म-दर्शन तथा साहित्यिक परम्पराओं से बहुत कुछ ग्रहण किया है । अत: इन प्रेमाख्यानों में चित्रित भारतीय संस्कृति को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

१- राजनीतिक स्थिति

२- समाज का पारिवारिक जीवन

३- धार्मिक स्थिति

४- ललित कलाएं

१- <u>राजनीतिक स्थिति</u> - <u>शाहे वक्त का उल्लेख</u>

सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में ~~आश्रयदाता का उल्लेख~~ आश्रयदाता के रूप में तत्कालीन राजा का उल्लेख किया है, जिसका इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध था । साम्राज्य विस्तारक होने के साथ-साथ सूफी कवियों ने उन्हें प्रकाण्ड पंडित, महान दानी, न्यायशील तथा चमत्कार कुशल आदि संज्ञाओं से विभूषित कर उन्हें युग-युगान्तर तक सिंहासनासीन होने का आशीर्वाद दिया है।[१]

<u>जागीरदारी प्रथा</u> -

सूफी काव्यों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मध्यकाल में 'जागीरदारी' प्रथा का प्रचलन था । फीरोज तुगलक ने अपने सैनिकों और सिपाहियों को वेतन जागीर के रूप में देने का नियम बना लिया था । सूफी प्रेमाख्यानों में इस प्रथा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है ।

चन्दायन में युद्ध में जाने के लिए उद्यत लोरिक को उसकी माँ कहती है कि जो लोग राजा को दी हुई जागीरें भोगते हैं वहाँ क्यों नहीं राजा की ओर

है सकती है।[2] लोरिक को राजा सहदेव ने निमन्त्रण भेजकर युद्ध के लिए बुलवाया था अतः उसकी स्थिति भी एक जागीरदार की सी कही जा सकती है। युद्ध के समय राजा अपने सामन्तों जागीरदारों को बुलवाकर मंत्रणा करता था। राव महर ने भी इसी कारण सामन्तों को बुला कर विचार विमर्श किया।

आजकल की भांति छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा करने के लिए प्रत्येक गांव में एक पंचायत के होने का उल्लेख हमें तत्कालीन इतिहास से मिलता है।[3]

नगरसभा -

चन्दायन में ऐसी पंचायत जिसे दाऊद ने " नगरसभा " की संज्ञा दी है, यह निर्णय करने के लिए जुटती है कि चांद वास्तव में लोरिक और टौंटा में से किसकी स्त्री है।

दास प्रथा -

दास प्रथा मध्य युगीन राजनैतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसे फीरोज तुगलक के शासनकाल में विशेष प्रश्रय मिला था। उसके निजी दासों की संख्या एक लाख अस्सी हजार कही जाती है।[4] परम्परानुसार चन्दायन में राव महर की प्रत्येक रानी के आधीन अनेक दासियों का उल्लेख मिलता है। चांद के विवाह के अवसर पर उसके पिता ने एक हजार दास-दासियां दहेज के रूप में दी थीं।[5]

सुन्दर स्त्रियों के लिए युद्ध करना -

मध्य युग में सुन्दर स्त्रियों के लिये युद्ध करना सामान्य बात थी। उदाहरणार्थ चांद को प्राप्त करने के लिए राव रूपचन्द का गोवरगढ़ पर आक्रमण

तोते सुए से पद्मावती का अनुपम रूप सौन्दर्य का वर्णन सुन रत्नसेन का उस पर आसक्त होना तथा ज्ञानदीप और देवयानी के स्वदेश लौटते समय मार्ग में सुल्तान द्वारा आक्रमण समकालीन राजनैतिक स्थिति के अनुरूप घटना कही गयी है।

बाल विवाह -

मुसलमानों द्वारा हिन्दू कन्याओं का अपहरण लोक प्रचलित होने के कारण मध्यकाल में " बाल विवाह " का प्रचलन बहुत तेजी से समाज में प्रचलित था। चन्दायन की नायिका चांद का[6] विवाह चार वर्ष की अवस्था में ही बावन के साथ निश्चित कर दिया गया था।

कुमारी कन्याओं की दयनीय स्थिति -

~~इसके अतिरिक्त~~ मध्ययुगीन समाज में कुमारी कन्याओं की स्थिति बड़ी दयनीय थी। वे अपने विचार व्यक्त करना चाहती थीं किन्तु भय एवं लोक लज्जा उन्हें आगे नहीं बढ़ने देती थी। " हंस जवाहिर " में जवाहिर चिनौर के साथ विवाह करने की अपेक्षा मर जाना उचित समझती है। " भाषा प्रेमरस " में चन्द्रकला प्रेमसेन के विरह में घर तक छोड़ देने की सोचने लगती है। चित्रावली भी इच्छानुसार सुजान से विवाह करना चाहती है परन्तु कह नहीं सकती है। देवयानी ज्ञानदीप को प्राप्त न कर पाने पर अग्निकुण्ड में कूद पड़ती है।

सामाजिक स्थिति -

रहन-सहन के ढंग, उत्सव एवं त्यौहारों का वर्णन सूफी प्रेमाख्यानों में अत्यन्त सजीव है। सामाजिक परम्पराओं तथा विभिन्न संस्कारों का वर्णन सूफी प्रेमाख्यानों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। भारतीय कथाकाव्यों में मनुष्य के

गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन को विभिन्न सोलह संस्कारों में विभक्त किया गया है किन्तु सूफी प्रेमाख्यानों में मुख्य रूप से जन्म और विवाह के प्रसंगों का ही उल्लेख मिलता है ।

छठी मनाने का आयोजन -

सूफी कवियों ने सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर खुशियाँ मनाने का उल्लेख किया है । चांद के जन्म के पांचवे दिन " छठी " मनायी गयी । भोज का आयोजन घर बधाई के बाजे बजाये गये । राशिफल तथा जन्म कुण्डली आदि पर विचार करने के लिए ब्राह्मणों को बुलाया गया -

> पांचों दिवस छठी भइ राता । निउता नौहर छत्तीसों जाती ।।
> घर-घर उमग कर निउता आवा । औ तिंह ऊपर बाज बधावा ।।
> घर्र पछा धात एक आये । अंग फूल सेंदुर जन्मावै . ।।
> बांभन सभा आइ सौ बैठी । काढ़ि पुरान रासि गुन डाठी ।।
> छठी का आदर देखि लिलारा । अरु दस्टि सौ जाइ बिचारा ।।

जायसी कृत पद्मावत के " जन्मखण्ड " में पद्मावती के जन्म के अवसर पर छठी का आयोजन , छठी के दूसरे दिन पुरोहित पंडित का आगमन , कन्या का नामकरण और जन्म कुण्डली बनाने के लिए ज्योतिषी के आगमन आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है -

> भै छठी राति छठि सुख मानी । रहस कूद सौं रैनि बिहानी ।।
> भा बिहान पंडित सब आये । काढ़ि पुराण जन्म अरथाए ।।

किसी-किसी सूफी कवि ने " विद्यारम्भ " संस्कार का भी वर्णन किया है । इन विवाह संस्कार सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में " विवाह " संस्कार का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

विवाह एक ऐसा संस्कार है जिसे लोक और वेद दोनों की मान्यता प्राप्त है। कहीं-कहीं तो इसके बिना जीवन की पूर्णता ही नहीं मानी जाती है। सूफी प्रेमाख्यानों के अनुशीलन द्वारा समकालीन विवाह पद्धति तथा तत्सम्बन्धी लोक-रीतियों की पर्याप्त जानकारी मिलती है। परम्परानुसार विवाह की पहली रस्म " बरच्छा " : अरौनी : मानी गयी है, जिसका उल्लेख प्रेमाख्यानों में भी मिलता है। मधर ने सिन्दूर पुष्प तथा मोतियों का हार भेजकर अपनी कन्या के लिए वर को रोक लिया था -

> सेंदुर फूल चढ़ायि, औ मोतिंह गलहार।
> देस बांदा बाकन कहं तोर लाउ करतार॥[९]

पदमावत में सबसे पहले पदमावती का पिता बरच्छा करता है और रत्नसेन को टीका काढ़ता है, तत्पश्चात् विवाह के अन्य कृत्य आरम्भ होते हैं। सूफी काव्यों में विवाह कार्य सम्पन्न होते समय वर-वधू का गांठ जोड़ने के अतिरिक्त सम-भांवरि, वरण दान, न्योछावर तथा दहेज आदि का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। कुतुबन कृत मृगावती में रुक्मिणी और राजकुंवर का मंडप के नीचे गांठ जोड़ कर भांवर पड़ने का विधान मिलता है।[१०]

गौना प्रथा -

यह प्रथा तब सम्पन्न होती है जब विवाह के कुछ दिनों के बाद बहू मैके से ससुराल लायी जाती है। पदमावत में " रत्नसेन विदाई खण्ड " में गौना के लिए दिन देखने का उल्लेख मिलता है -

> पोथा काढ़ि गवन दिन देखहि, कौन दिवस दहुंकाल।
> दिसा सूर औ चक्र जोगिनी सौंह न चलिऐ काल॥[११]

द्यूत-क्रीड़ा अथवा चौपड़ खेल प्रथा -

मध्ययुगीन समाज में विवाह के अवसर पर वर-वधू के बीच चौपड़ खेलना शुभ माना जाता था। पद्मावत में पद्मावती रत्नसेन से " पासा " खेलने का प्रस्ताव रखती हुई कहती है -

पैं राजकुंवर नहीं मानौं। खेलु सारि पांसा तब जानौं ॥
काचे बारह परा जो पांसा। पाके पैंत परी तनु रासा ॥[१२]

भोज प्रथा -

भोज प्रथा मध्यकाल से लेकर आज तक प्रचलित रहने वाली एक महत्वपूर्ण प्रथा है। प्रेमाख्यानक काव्यों में भी इस प्रथा के संकेत मिलते हैं। चांद के विवाह के अवसर पर दिया गया भोज मध्यकालीन सामन्तीय परिवार का द्योतक है। रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के अवसर पर दिये गये भोज में भोज्य पदार्थों की एक लम्बी सूची देखने को मिलती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार - " इसमें अनेक व्यक्तियों के प्रकार हुए व्यंजनों, तरकारियों और मिठाइयों इत्यादि की बड़ी लम्बी सूची है - इतनी लम्बी कि पढ़ने वालों का जी ऊब जाता है।[१३] भोज वर्णन में व्यंजनों की संख्या गिनाते हुए जायसी ने स्वयं लिखा है -

औ छप्पन परकार जो आए। नहिं अस देख न कबहूं खाए ॥

आज भी विवाह आदि के अवसर पर भोज देने की प्रथा लोक मानस में प्रचलित है।

दहेज प्रथा -

सामान्यतया विवाह के अवसर पर " दहेज " देने की प्रथा आज भी लोग यथासम्भव सम्पन्न करते हैं जिसका उल्लेख प्रेमाख्यानों में भी मिलता है।

महर ने अपनी पुत्री चांद को दहेज में बारह गांव, पचास घोड़े, एक लाख टके, एक हजार दास-दासियां, अगणित गायें और भैंसे, बहुमूल्य वस्त्र, सेज और देने के साथ-साथ चावल, गेहूं, खाण्ड, घी, नमक, तेल, हल्दी आदि भी दहेज के रूप में दिया।[१५] गन्धर्वसेन ने विवाह के अवसर पर पुत्री पद्मावती को हीरे-मोती आदि बहुत धन सम्पत्ति दहेज के रूप में दी -

> रतन पदारथ मानिक मोती। काढ़ि भंडार दीन्ह रथ जोती।
> परखि सो रतन पारखिन्ह कहा। एक-एक दीप एक-एक लहा।
> सहसन पांति तुरय कै चली। औ सो पांति हस्ति सिंघली॥
> लिखना लागि जौ लेखै, कहै न पारै जोरि।
> अरब, खरब दस नील, संख औ अरबुद पदुम करोरि॥[१६]

कुतुबन कृत मृगावती में राजकुंवर और रुक्मिणी के विवाह के अवसर पर रुक्मिणी के पिता ने अपनी पुत्री को दहेज के रूप में अपना आधा राज्य दे दिया जिससे उसकी पुत्री वह सहस्र वर्षों तक आनन्द से रह सकें।

बहु विवाह प्रथा -

मध्ययुगीन समाज में पुरुषों को बहु विवाह की छूट थी। महर के घर चौरासी रानियां होने का उल्लेख मिलता है। शाकिबशाह कृत "हंस ज्वाहिर" में बलख नगर के सुलतान बुरहानशाह की ग्यारह रानियां थीं।[१७] लोरिक अपनी पत्नी मैना के होते हुए चांद को भी प्राप्त करता है। रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार के प्रत्यूहों का सामना करता है। इसी प्रकार मृगावती, मधुमालती, चित्रावली, इन्द्रावती के नायक बहुपत्नीत्व हैं।

बहुपत्नीत्व प्रथा का प्रचलन होते हुए भी कुतुबन कृत मृगावती में राजकुंवर का बहुपत्नीत्व खलने वाला है। राजकुंवर के न चाहने पर भी रुक्मिणी का विवाह

राजकुंवर के साथ रुक्मिणी का विवाह कर देता है , किन्तु अन्त तक राजकुंवर मृगावती को ही सर्वोपरि मानता है ।[18]

<u>सपत्नी प्रथा</u> -

सपत्नी प्रथा सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिये आज भी अभिशाप समझी जाती है । चन्दायन , मृगावती और पद्मावत में वर्णित समाज में भी यह रोग फैला हुआ है । सौतिया-डाह में पड़कर चांद और मैना आपस में गाली-गलौज तक करती हैं ।[19] इसी प्रकार शुक के मुख से पद्मावती के रूप-गुण का वर्णन सुनते ही नागमती को भावी सौत की चिन्ता सताने लगती है और वह धाय को शुक को मार डालने का आदेश देती है ।

जेहि दिन कहं मैं डरति हौं , रैनि छपावौं सूर ।
लै चह दीन्ह कंवल कहं , मो कहं होइ मयूर ।।[20]

इतना ही नहीं रत्नसेन का सिंहलद्वीप में पद्मावती के साथ जीवन यापन करते देख वह पद्मावती को कोसती भी है -

जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा । मो कहं विरह सवति दुख दूजा ।।[21]

सौत के बीच होने वाला कलह आज भी पारिवारिक जीवन में विषाद पूर्ण माना जाता है । दाऊद कृत चन्दायन में चांद और मैना के बीच हुई कलह के अनन्तर दोनों के बीच झोंटा झोटौअल भी हो जाता है -

चांदे आपनु खिरन बढ़ाई । मैनहि झुकति रही सकाई ।
बीच काहु पर्द छुटाई । छतहिन चांद कहां लै जाई ।।[22]

इसी प्रकार जायसी कृत पद्मावत में नागमती और पद्मावती दोनों अपने-अपने सौन्दर्य पर अभिमान करती हुई एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न

करती है । एक दूसरे के प्रति दोनों का ईर्ष्या प्रकट होता जाता है । दोनों का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच जाता है और दोनों हाथापाई पर उतर आती हैं । इसके विपरीत नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावती में 'इन्द्रावती' और 'सुन्दर' को आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते हुए भी दिखाया गया है । भारतीय समाज में एक साथ अनेक पुरुषों के साथ सम्बन्ध रखने वाली स्त्री को 'छिनार' कहा जाता है । मौलाना दाऊद के समय में भी स्त्री के लिए छिनार शब्द बुरी गाली समझा जाता था । लोरिक के साथ सम्बन्ध के कारण मैना चांद को छिनार कहती है ।[२४]

इनके अतिरिक्त सूफी प्रेमाख्यानों में अनेक ऐसी प्रथाओं का उल्लेख मिलता है जिनका सम्बन्ध मध्यकालीन संस्कृति से था । जैसे सती प्रथा तथा जौहर प्रथा ।

सती प्रथा -

सती प्रथा मध्यकालीन समाज में विशेष रूप से प्रचलित थी । इस प्रथा के अनुसार स्त्रियां अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उसके शव के साथ जीवित ही जल जाया करती थीं । इसे वे एक प्रकार का धार्मिक कृत्य मानती थीं । उनका विश्वास था कि उनका पति जो इस लोक में साथ रहा, उस लोक में अकेले कैसे रह सकता है । मृगावती, पदमावत, एवं ज्ञानदीप, इन्द्रावती में नायक की मृत्यु के पश्चात् उनकी नायिकाओं में सती होने का स्वाभाविक आनन्द दिखाई देता है । पदमावत में रत्नसेन की मृत्यु हो जाने पर उसकी दोनों रानियां प्रसन्नतापूर्वक शृंगार करके गाजे बाजे के साथ सती होने जाती हैं । जैसा कि निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

> नागमती पदमावति रानी । दुवौं महासत सती बखानी ।।
> दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठी । औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी ।।

चन्दन अगर काठ सर साजा । औ गति देइ चले लेइ राजा ।।
बाजन बाजहिं होइ अगूता । दुवौ कन्त लेइ चाहहिं सूता ।।[25]

निश्चय ही सती प्रथा मध्यकालीन भारत की विषाद पूर्ण प्रथा थी परन्तु आधुनिक युग में सती प्रथा के विरुद्ध कठोर कानून बना दिये गये हैं और यह प्रथा पूर्णतया समाप्त कर दी गई है ।

जौहर प्रथा -

सती प्रथा की भाँति जल मरने की एक और प्रथा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित थी जिसे " जौहर प्रथा कहते हैं । चन्दायन में एक स्थान पर इस प्रथा की ओर संकेत मिलता है । आक्रमणकारी राव रूपचन्द को महर सहदेव से कुल कहती हैं । तुम भले ही हमें मार डालो परन्तु यदि अग्नि में जल मरेंगी , उसका कोई नाम नहीं ले सकेगा ।[26] पद्मावती नागमती सती खण्ड " में रत्नसेन देवपाल से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त होता है । उसकी दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं । अलाउद्दीन चित्तौड़ पर आक्रमण करता है । बादल की राजपूती सेना से उसका युद्ध होता है । बादल हार जाता है , उधर स्त्रियाँ मान-मर्यादा की रक्षा हेतु महलों के भीतर चिता बनाकर सामूहिक रूप से जल मरती हैं -

जौहर भइ सब इस्तरी , पुरुष भए संग्राम ।
बादशाह गढ़ चूरा , चितउर भा इस्लाम ।।[27]

समाज का गठन -

सूफी प्रेमाख्यानों में चित्रित समाज का स्वरूप चिर-प्रतिष्ठित भारतीय सामाजिक धारणाओं के पूर्णतः अनुरूप है । जिसका मूलाधार वर्ण-व्यवस्था है ।

समाज का गठन -

सूफी प्रेमाख्यानों में चित्रित समाज का स्वरूप चिर-प्रतिष्ठित भारतीय सामाजिक धारणाओं के पूर्णतः अनुरूप है जिसका मूलाधार वर्ण-व्यवस्था है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिनकी उत्पत्ति क्रमशः ब्रह्मा के मुख, भुजा, जंघा और चरणों से कही गयी है, भारतीय समाज का निर्माण करते हैं -

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्य कृतः ।
उरू तद अस्यपद् वैश्य पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥[28]

इन्हीं चार वर्णों से श्रम और व्यवसाय की आवश्यकतानुसार अनेक जातियों और उपजातियों का विकास हुआ। चन्दायन का सिरजन वर्ण से ब्राह्मण[29] होते हुए भी व्यवसाय से वैश्य[30] है परन्तु लोरिक उसका ब्राह्मण[31] रूप में ही सम्मान करता है। चन्दायन में वर्णित निम्नलिखित पंक्तियां मध्यकालीन समाज की वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवसाय की ओर संकेत करती हैं -

गोबर गौता कुल ओर कुलावा । छत्तीसों चार सभै है आवा ।
\+ \+ \+
बैस कुंवर मै पातिहं पांती । परजा पौन दौ भांतिहिं भांती ॥
\+ \+ \+
बरन चार भरि बैठे, जानित कहो न जाइ ।[32]

व्रत और पर्वोत्सव -

भारतीय संस्कृति के अनुसार " व्रत " मनोकामना सिद्धि एवं उज्ज्वल भविष्य के लिये किये जाते हैं। सूफी काव्यों में व्रत-पूजन सम्बन्धी बातों का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। " मंझन [illegible] " में रत्नसेन पद्मावती की प्राप्ति करने के लिये अखण्ड व्रत-पूजन आरम्भ कर देता है -

तेहि विधि किये न जानी जेहि विधि अस्तुति तोरि ।[33]
जासु कृपादृष्टि मोहिं पर होहा पूजै मोहि ॥

' बसंत खण्ड ' में पद्मावती सखियों के साथ ' बसंत पंचमी ' के दिन महादेव जी के मन्दिर में जाती है और पूजा करती हुई कहती है -

कहु हौं जोग मोहि भैसु , दरसु जाति हौं मानि ।
जेहि दिन हींछा पूजै मेरि , चढ़ावउं आनि ॥[34]

इसके अतिरिक्त मध्ययुगीन समाज में प्रचलित हरतालिका व्रत : शिव : सोमनाथ पूजा[35] और देवीस्थापन[36] का यथास्थान उल्लेख मिलता है । कासिमशाह कृत हंस जवाहिर में कामाख्या देवी के मन्दिर का वर्णन तथा कृत पुहुपावती में चतुर्भुज : विष्णु : की पूजा का उल्लेख मिलता है ।

पर्वोत्सव जन-मानस के बीच उल्लास की सामूहिक अभिव्यक्ति है , जिसको धर्म के सांचे में ढालकर मनाया जाता है । चन्दायन में चित्रित समाज में पर्वोत्सवों के प्रति विशेष उत्साह दिखाई देता है । रामनवमी , दशहरा के अवसर पर रामायण का पाठ होता था तथा रासें भी गायी जाती थीं -

रासें गावंहि मद कहलावंहि । संग मुद किय देव चढ़ावंहि ॥[37]

इसके अतिरिक्त सूफी काव्यों में होली , दीवाली के मनाये जाने का उल्लेख भी मिलता है । चन्दायन में होली के अवसर पर लोग फाग के नृत्य में लीन दिखाई देते हैं -

ना घरिं फागु होइ झनकारा । निस दिन भईं नई झंकारा ॥[38]

जायसी ने ' राजा बादशाह ' युद्ध खण्ड ' में होली के अवसर पर ' चांचरि ' नृत्य करने और ' फाग ' खेलने के साथ-साथ ' गोरा बादल युद्ध खण्ड ' में रंग गुलाल उड़ाने का बड़ा ही सटीक और मनमोहक चित्र चित्रित किया है ।

भा तिवहार जौ चांचरि जोरी । खेलि फाग अब लाइय होरी ।।[39]
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा । चांचरि खेलि आगि जनु लावा ।।[40]

नूर मुहम्मद के अनुसार होली के चांचर में बूढ़े और बच्चे का भेदभाव समाप्त हो जाता है । इसके अतिरिक्त कवि ने डफ और मिरदंग बजाते हुए झूमने और रंग डालने की क्रिया का बड़ा स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कहा है -

बागमपुर कविलास मझारा , फागुन आइ आनन्द पसारा ।
एक दिस पुरुष एक दिस गोरी , हिलमिल गावहिं चांचर जोरी ।
डफ बजावहिं औ मिरदंगू , पिचकारिन भरि भरहि सुरंगू ।
धन के ऊपर डारहिं नाहीं , धन डारहि पुरुष उपराहा ।
रंग अबीर भरा सब कोई , जो जहां रहा भरा तहां होई ।[41]

कार्तिक मास में पड़ने वाले दीपावली के पर्व का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर मिलता है । चांद अपनी अनेक सखियों के साथ दीवाली देखने जाती है -

कहूं देवारी देखन जाई । उत्तम परब रितु देखहिं गाई ।।[42]

इसके विपरीत तिल-तिल जलती मैना और नागमती को दीपोत्सव का त्यौहार और अधिक उद्विग्न कर देता है -

कातिक मास चन्द उजियारी । जग सीतल हौं बिरहै जारी ।।
चौदह करा चांद परगासा । जनहुं जरै सब धरति अकासा ।।[43]

<u>लौकिक आचार व्यवहार -</u>

सूफी काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मध्ययुगीन समाज में विवाह के समय मंडप का गाड़ा जाना , भांवरी पड़ना , सोहाग गाना इत्यादि

चौपड़ , चौगान आदि खेला करते थे । मनोरंजन के लिए पहेलियाँ बूझना और फूलों के नाम लिखकर उन्हें समूहों में विभाजित करना जैसे खेलों का भी प्रचलन था ।[५१] राजकुमारियों की जलक्रीड़ा भी उनके मनोविनोद का एक साधन था ।

मध्यकालीन पुरुषों के लिए युद्ध करना मनोरंजन का एक साधन समझा जाता था । चन्दायन का लोरिक युद्ध करने में कुछ ऐसा ही आनन्द प्राप्त करता है । तत्कालीन समाज में आखेट भी मनोरंजन का प्रमुख साधन समझा जाता था । पुरुषों के अन्य प्रकार के मनोरंजन का साधन वारांगनाएं वेश्याएं थीं । विवाह आदि के अवसर पर वे नाच गाकर लोगों का मनोरंजन करती थीं । बावन की बारात में उन्हें इसीलिए सम्मिलित किया गया था ।

<u>युद्ध पद्धति -</u>

सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में द्वन्द्व युद्ध से लेकर सेनाओं के जूझने तक के व्यापक दृश्य चित्रित किये हैं जिनसे तत्कालीन युद्ध पद्धति की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है । आजकल के समान मध्यकाल में वेतनभोगी सेनाओं की व्यवस्था नहीं थी । सामन्त जागीरदार ही राजाओं की सेना की व्यवस्था करते थे । युद्ध उपकरणों के रूप में मौलाना दाऊद ने " औड़न " : ढाल : का प्रयोग आत्म-रक्षा के लिए किया है । शरीर की रक्षा करने वाले अन्य उपकरणों में तारवार-अंगा[५२] सनाह[५३] , पाखर[५४] आदि का उल्लेख भी चन्दायन में मिलता है ।

पारिवारिक जीवन के चिर प्रतिष्ठित आदर्श को आज भी वही मान्यता प्राप्त है , जो मध्यकाल में थी । चांद का विवाह छोटी अवस्था में बावन के साथ कर दिया गया था , परन्तु पति के घर में पुत्री को दुखी जानकर पिता का हृदय तड़प उठता है और तुरन्त पुत्री को बुलवा लेता है किन्तु जब पुत्री ने जब अपनी

जखुता है दोनों कुलों की मर्यादा को क्षति पहुँचाया तो क्यों पुत्री उनको नजरों से गिर जाती है । ऐसी पुत्री पैदा होते ही मर क्यों नहीं गयी ।[५५]

इसके विपरीत काव्य में लोरिक मैना में परस्पर मधुर दाम्पत्य सम्बन्ध भी दिखाये गये हैं जिसमें चांद ने कुछ कटुता अवश्य घोल दी थी । पर चंदा के साथ पति के अनुचित सम्बन्ध को जानकर भी मैना उच्च भाव से पति की सेवा करती है ।

वियोगाग्नि में तप कर मैना का पति प्रेम और भी प्रगाढ़ हो जाता है । हृदय में चांद के प्रति पूर्ण स्थान होते हुए भी लोरिक अपनी पत्नी मैना का दुख सह नहीं सकता । वह मैना को अनेक प्रकार से समझाता है । विरक्त हो उसकी विरह दशा जानकर चांद को साथ लेकर लौट आता है । काव्य में चांद मैना के सम्बन्ध सपत्नी रूप में चित्रित हैं उनमें परस्पर कलह भी होती है परन्तु अपने पति की प्रसन्नता के लिये दोनों सह अस्तित्व भी स्वीकार कर लेती हैं ।

<u>पर्दा प्रथा -</u>

लोरकी उपाख्यानों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मध्यकाल में उच्चवर्गीय हिन्दू परिवारों में स्त्रियों के लिए पर्दे की प्रथा का प्रचलन था अतः रूपान्वयी लोरिक की शोभा-यात्रा चांद अपने आवास के ऊपर चढ़ कर देखती है ।[५६] मध्ययुगीन परिवार में ननद-भाभी के सम्बन्ध अत्यन्त [illegible] थे । इसी प्रकार चांद के हृदय की बात सबसे पहले उसकी ननद ही जान पाती है ।

<u>पान का बीड़ा देना -</u>

किसी महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन के लिए पान का बीड़ा भेंट करना मध्य युग में सम्माननीय कार्य समझा जाता है । सम्भवतः हो युद्ध के लिए जा रहे लोरिक को महर उदैत ने स्वयं पान का बीड़ा दिया ।[५७] युद्ध जीतकर लौटने पर

पुन: राव ने लोरिक को पान भेंटकर गले से लगाया । अत: स्पष्ट ज्ञात होता है कि मध्यकाल में पान-सम्मान के विशेष रूप में प्रतिष्ठित था , जैसा कि आज भी कुछ परिवारों में प्रचलित है । वर्तमान काल की भांति मध्य युग में भी भोजनोपरान्त पान खाने का प्रचलन था । चांद के विवाह के अवसर पर ज्योनार के पश्चात् पान देने का उल्लेख मिलता है ।[58]

परिधान -

आजकल की भांति मध्यकाल में भी सुन्दर वस्त्रों के प्रयोग का प्रचलन था । गोवर नगर की स्त्रियां सुन्दर वस्त्र पहनकर देवपूजा को जाती थीं ।[59] हिन्दू समाज में सौभाग्य का रंग लाल मानकर विवाह आदि के अवसरों पर लाल रंग के वस्त्रों का आज भी सोद्देश्य प्रयोग होता है । मध्यकालीन स्त्रियों को प्राय: लाल रंग में रंगे वस्त्र अधिक प्रिय थे । चन्दायन की कुरंग , कसुम्भी और मुंगिया साड़ियों में लाल रंग विशेष रूप से झलकता दिखाई देता है ।

पुरुषों के सिर पर धारण की जाने वाली " पगड़ी " भारत में आज भी चिरपरिचित है । मध्ययुगीन समाज में पगड़ी का पूरी तरह से प्रचलन था तभी तो गोवर के कोट की ऊंची बुर्जियों को देखने में लोगों की पगड़ियां सिर से उतर जाती थीं ।[60] तथा युद्ध के लिये जाते समय लोरिक ने सिर पर पगड़ी बांधी थी ।[61] मध्यकालीन हिन्दू समाज में " धोती " पुरुषों का प्रमुख पहनावा था । चन्दायन का विरस्पत ब्राह्मण धोती पहने वर्णित किया गया है ।[62]

शृंगार प्रसाधन -

शृंगार प्रसाधन के प्रति मध्ययुगीन समाज की विशेष रुचि थी । गोवर के बाजारों में कपूर , चन्दन , कुंकुम , परिमल , केसर जैसे सुगन्धित द्रव्य , पान-सुपारी तथा विविध फूल बिकते थे ।[63] जिनका प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में होता था ।

स्नान -

शृंगार ' स्नान ' भारतीय लोक जीवन का एक अनिवार्य नित्यकर्म माना गया है । मध्ययुग में भी स्नान का अत्यन्त महत्व रहा है । चांद के वाग्दान के अवसर पर ब्राह्मण और नाई को स्नान करवाया गया । पति गृह से लौटने पर चांद को नहलाकर उसकी सखियाँ उसका शृंगार करती थीं ।[65]

सिन्दूर और काजल मध्यकालीन समाज में सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था । जोगिन अपनी दोनों चक्षुओं को काजल और सिन्दूर से मंडित करती है ।[66] अधर रंजन के लिए स्त्रियाँ ' ताम्बूल ' का प्रयोग करती थीं जिसे वर्तमान लिपस्टिक का पूर्व रूप कहा जा सकता है । भारतीय स्त्रियाँ हाथ-पांव रंजित करने के लिए ' मेंहदी ' का प्रयोग करती हैं । चांद भी अपने हाथों का शृंगार मेंहदी द्वारा करती है ।

आभूषण -

लोरकी प्रकरणों में वर्णित विभिन्न प्रकार के आभूषण जैसे शिरो-भूषण : मांग में धारण करने वाला आभूषण :, कान में पहने जाने वाले आभूषणों के रूप में कुण्डल , झुमका तरयौना और कर्णफूल , नाक का आभूषण नथ , तथा गले में पहने जाने वाले आभूषणों के रूप में हार , डोर , हिंसुली हाँस और कण्ठी , कंगन , चूड़ी , अंगूठी , पायल और बिछुवा आदि से मध्यकालीन समाज में प्रचलित विविध आभूषणों की लोकप्रियता का सहज आभास मिलता है ।

नैतिक आचरण -

प्रकरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मध्ययुगीन समाज में पुरुषों का नैतिक आचरण इतना निम्न था कि वे अपनी विवाहिता पत्नी को छोड़कर

किसी भी सुन्दरी के रूप पर मोहित हो घर-बार तक छोड़ देते थे । पद्मावत का नायक रत्नसेन पद्मावती के सुन्दरता पर आसक्त हो मरने तक को तैयार हो जाता है । मुल्ला दाऊद कृत चन्दायन का नायक लोरिक भी अपनी विवाहिता पत्नी मैना को तड़पता छोड़कर चांद के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो योगी बनकर निकल पड़ता है । इसी प्रकार राघवचेतन द्वारा पद्मावती के रूप-गुण का वर्णन सुनकर अलाउद्दीन चित्तौड़ पर चढ़ाई कर देता है । इतना ही नहीं वह जोगिन के वेश में पद्मावती को पथ भ्रष्ट करने के लिए दूती भी भेजता है ।

मध्ययुगीन मुसलमान बादशाहों का आचरण और भी निम्न था । नारी के प्रति उनका दायित्व मात्र भोग-विलास ही रह गया था । तलवार के बल पर ये मुसलमान बादशाह हिन्दू कन्याओं का सतीत्व भंग करना अपना शौक समझते थे , उनके इस प्रकार के आचरण के फलस्वरूप ही पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ किन्तु सूफी और मध्यकालीन प्रेमाख्यानक काव्यों में स्त्रियों के नैतिक आचरण पर महानता की छाप लगी मिलती है । चन्दायन में मैना को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है । भारतीय नारी के लिए पति ही ईश्वर माना जाता है । पति को योगी बनते देख नागमती का पातिव्रत्य जाग-उठता है । वह भी पति के साथ योगिनी बनना चाहती है । पति के प्रति दास-भाव कायम रखना ही उसका आदर्श है । पति को अपने रूप-जाल में फंसाने वाली सौत को वह भले ही कोसती है लेकिन अपने मन-मन्दिर के देवता के प्रति दास्यभाव की भक्ति ही रखती है । नागमती की भांति पद्मावती के नैतिक आचरण की महानता को नकारा नहीं जा सकता है । अलाउद्दीन द्वारा रत्नसेन को बन्दी बनाये जाने पर कुम्भल नरेश देवपाल ने दूती भेजकर पद्मावती को अपने मार्ग से विचलित करना चाहा किन्तु पद्मावती ने दूती को धिक्कारते हुए यही कहा " कि मेरे लिए मेरा पति ही सब कुछ है । " यदि प्रीतम

इस संसार से जहाँ लौटने पर उस लोक में पद अवश्य मिलेगा।[67] मृगावती में कवि ने नारी के आदर्श-रूप की विवेचना करते हुए कहा है कि राजकुंवर योगी रूप धारण कर मृगावती की खोज में निकल पड़ता है। मार्ग में राक्षस का वध करके रुक्मिणी के साथ भी उपकार करता है उसके बदले रुक्मिणी का पिता रुक्मिणी का विवाह राजकुंवर के साथ कर देता है। यद्यपि राजकुंवर मृगावती के आगे रुक्मिणी को उतनी मान्यता नहीं देता तथापि रुक्मिणी राजकुंवर को अपना सर्वस्व मानती है। " सौत " किसी भी स्त्री को नहीं भाता, फिर भी रुक्मिणी मृगावती के साथ आनन्दमय जीवन बिताती है और राजकुंवर की मृत्यु होने पर वह उसी के साथ सती हो जाती है।

कर्म फल में विश्वास -

भारत देश में कर्मों के फल, काल की प्रबलता तथा " ईश्वर की इच्छा " पर भारतीय जन मानस का पूर्ण विश्वास अति प्राचीन काल से ही रहा है। कुतुबन ने मृगावती में ईश्वरेच्छा को सर्वोपरि मानते हुए मनुष्य को उसके इशारों पर चलने वाला प्राणी बताया है। दैत्य द्वारा रुक्मिणी को उठा ले जाने पर रुक्मिणी का पिता ईश्वर पर भरोसा रख कर दैत्य से छुटकारा दिलाने के लिये दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है। मृगावती की खोज करता हुआ राजकुंवर भी ईश्वर से यही प्रार्थना करता है कि " हे ईश्वर जिसके लिए मैंने इतने कष्ट सहे हैं मुझे उससे शीघ्र मिला दे।"[68] इसके अतिरिक्त इस जीवन को रंगमंच कहा है, जो चलता जाता है, अतः इस संसार में रहकर कर्तव्य मार्ग पर चलना ही मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। मनुष्य के भाग में जो कुछ विधाता लिख देता है, वही होता है।[69] जन्मपत्र का लिखा हुआ असत्य नहीं हो सकता। भाग्य बलवान होता है।

विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय -

मध्ययुगीन समाज में अनेकानेक धार्मिक सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है।

चन्दायन में बिरस्पत का जो रूप वर्णित है, वह वैष्णव मान्यताओं के अनुरूप है। बिरस्पत के माथे पर चन्दन तिलक है। वह काँख में पोथी हाथ में बैसाखी, कान में कंचन मुद्रा, दोनों कलाइयों में राखी, कन्धे में जनेऊ तथा तन पर धोती धारण किये हुए है। वह वेदों और धर्म ग्रन्थों का ज्ञाता है।[70] नगर निवासियों में नायकों का उल्लेख होने से जैन धर्म के प्रचलन का भी संकेत मिलता है।[71]

'प्रेमकथा' के प्रति जन साधारण की श्रद्धा अति प्राचीनकाल से रही है। गौधर में सभी वर्गों की स्त्रियाँ एकत्र होकर भगवान शिव की पूजा करती हैं।[72] चाँद भी वहाँ मनौती मानकर वर भी माँगती है।[73] बिरस्पत के कहने पर जब लोरिक 'मढ़ि-सेवा' के लिए जाता है तो वह कानों में स्फटिक मुद्रायें सिर पर सेली, गले में रुद्राक्ष की माला, पैरों में खड़ाऊँ, मुख में भस्म, हाथ में अधारी लेकर वह मढ़शाला पर आसन मार कर हाथ में दण्ड और खप्पर लेकर नाथ पंथी योगी का रूप धारण करता है।[74]

जायसी कृत पद्मावत में रत्नसेन सिंहलद्वीप के लिये प्रस्थान करते समय हाथ में किंगरी, सिर पर जटा, शरीर में भस्म, मेखला, सिंगी, धंधारी चक्र, रुद्राक्ष और अधार को लेकर, कंथा पहन कर हाथ में सोंटा लिये हुए 'गोरख' की रट लगाता हुआ अपना मार्ग पर अग्रसर होता है।[75]

इसी प्रकार मंझन कृत मधुमालती में मनोहर खप्पर, दण्ड और अधारी, धंधारी, कंथा, मेखला बाँधरा और मृगछाला धारण कर 'नाथ पंथी' योगी का रूप धारण कर घर से निकल पड़ता है।[76] ज्ञानदीप में नायक ज्ञानदीप को गुरु [illegible] का शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ा था। इस प्रकार प्रेमाख्यानक काव्यों से नायकों की भिन्न-भिन्न प्रकार की वेश-भूषा से तत्कालीन सम्प्रदायों की व्यापक जानकारी प्राप्त होती है।

विविध धर्मग्रन्थों के आधार पर हिन्दू समाज की अनेक पौराणिक मान्यताओं का उल्लेख भी प्रेमाख्यानक काव्यों में मिलता है जैसा कि - देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ है ।[७७] ' वासुकि नाग ' जो पाताल में रहता है ।[७८] ' इन्द्र ' देवताओं का राजा है ।[७९] प्रेम का देवता ' कंदर्प ' है ।[८०] हनुमान ने लंकादहन किया था ।[८१] भीम महाबली था ।[८२] अर्जुन निशाने बाज था ।[८३] इसके अतिरिक्त मेरु मंदर कैलाश,[८४] वैतरणी[८५] तथा पाताल आदि का उल्लेख भी पद्मावत के अनेक प्रसंगों में हुआ है । अतः कहा जा सकता है कि सूफी कवियों ने हिन्दू देवताओं और धर्म प्रवृत्तियों का अपने काव्यों में सफलतापूर्वक उल्लेख किया है और इस कार्य में इन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है ।

धार्मिक कृत्य -

भारतीय समाज में पुण्य लाभ हेतु दान देने की प्रथा अति प्राचीन है । ' कुरान शरीफ ' में भी दान की महत्ता का उल्लेख मिलता है । सूफी काव्यों में भी दान की महत्ता प्रतिपादित की गई है । जायसी के अनुसार उसी का जीवन सार्थक है जिसने इस जगत में दान दिया हो, जितना मनुष्य दान करता है प्रतिफल स्वरूप उसे उससे दसगुना लाभ होता है -

धनि जीवन और ताकर हीया, ऊंच जगत मंह जाकर दीया ।
दिया जो जप तप सब उपराहीं, दिया बराबर जग किछु नाहीं ।
एक दिया ते दसगुन लहा, दिया देखि सब जग मुख चहा ।।

कासिमशाह के अनुसार संसार में बिना दान दिये किसी[८६] को मोक्ष प्राप्ति नहीं होती । इस भवसागर को पार करने के लिए दान ही महत्वपूर्ण नाव है । दान देने से मनुष्य लोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त करता है ।[८७] उसमान दान के महत्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं, इस भव समुद्र में सूफी की केवल दान

सूफी काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मध्ययुगीन समाज में रामायण और महाभारत से सम्बन्धित अनेक लोक कथाएं समाज में प्रचलित थीं । पद्मावत में रावण द्वारा सीताहरण , राम द्वारा समुद्र पार करके रावण के साथ युद्ध करने का उल्लेख[१०४], हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी लाने की कथा[१०५] तथा राम और सीता के वनगमन की कथा , रावण के दस मस्तकों के कटने का उल्लेख , लंकादहन , राम द्वारा सेतु बंध , रामेश्वर की स्थापना , महादेव की भक्ति सम्बन्धी अनेक कथाओं का संकेत मिलता है । काव्य में श्रवण कुमार और उसके अन्धे माता-पिता की कथा का भी उल्लेख मिलता है ।

काव्य में महाभारत से सम्बन्धित कर्ण के दान एवं त्याग की कथा[१०६], अर्जुन द्वारा मत्स्य भेदन के पश्चात् द्रौपदी के साथ विवाह[१०७], नल दमयन्ती की कथा[१०८], लाक्षागृह के जलने पर भीम द्वारा पाण्डवों एवं कुन्ती के प्राण बचाने की कथा[१०९], से सम्बन्धित अनेक प्रसंग मिलते हैं ।

मध्ययुगीन समाज में भागवत की कथाओं का भी उल्लेख मिलता है ।

आर्थिक स्थिति -

मध्यकालीन भारत अपनी आर्थिक सम्पन्नता के लिए आज भी विख्यात था । इसकी इस स्थिति को सुनकर मुहम्मद बिन-कासिम और महमूद गजनवी जैसे लुटेरों ने इस पर आक्रमण कर दोनों हाथों से इसे लूटा फिर भी इसके वैभव का अन्त न हुआ ।[११०] तत्कालीन आर्थिक स्थिति का चित्रण मौलाना दाऊद ने करते हुए कहा है कि गोवर के बाजारों में खांड मिठाई , दाख , छुहारा , चार , पटोर या बहुमूल्य वस्त्र बिकते हैं ।[१११] राजा सहदेव के घर में अन्न-द्रव्य-घोड़े-हाथी की कोई गणना नहीं । उसकी बेटी के विवाह में दिये गये दहेज की लम्बी सूची तत्कालीन राजाओं के सम्पन्नता का परिचायक है । चन्दायन का व्यापारी भी

भी धन सम्पन्न होने के कारण बहुमूल्य पदार्थों का क्रय-विक्रय भी करता है। चन्दायन में ऐसे अनेक व्यापारियों का उल्लेख मिलता है। चन्दायन में वर्णित नगर का स्वरूप मध्यकालीन नगर रचना का सुन्दर उदाहरण है। नगर के अन्दर महल और गलियाँ हैं, हाट बाजार हैं, जहाँ विभिन्न वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है।[१९२]

__खाद्य पदार्थ -__

चन्दायन में रूपचन्द पर विजय प्राप्ति के पश्चात् महर सहदेव की ओर से अपने राज्य की छत्तीस जातियों के लोगों को बड़ा भोज दिया गया, जिसमें अनेक प्रकार के व्यंजन परोसे गये। दाऊद ने पकाने और परोसने की विधियों का भी सविस्तार उल्लेख किया है। चन्दायन में साधारण हल्दी नमक से लेकर लौंग, जायफल केसर, कस्तूरी, कुंकुम, अजवायन, सौंफ, सोंठ और मेवों आदि की चर्चा मध्ययुगीन समाज में इनकी लोकप्रियता की परिचायक है। मध्ययुगीन समाज भारतीय भोजन-पद्धति से पूरी तरह परिचित थे।

तत्कालीन " मूर्तिकला " की भव्यता का निरूपण करते हुए जायसी ने कहा है कि सिंहलगढ़ के प्रत्येक द्वार पर पत्थर के सिंह बने हुए थे। वे मुख फैलाये हुए और जीभ निकाले ध्यान मग्न थे। उन्हें देखकर हाथी भी डर जाते थे। चित्तौड़गढ़ के प्रत्येक द्वार पर बनी सुन्दर मूर्तियाँ ऐसी ध्यान मग्न थीं मानों खड़ी हुई स्वागत कर रही हों।[१९३] ऐसे " वास्तुकला " का वर्णन करते हुए जायसी ने कहा है कि सिंहल नगर में राजा गन्धर्वसेन के राजभवन के फर्श और छत पर सोने का पानी चढ़ा हुआ था। धवलगृह सात खण्डों का था जो हीरे की ईंटों और कपूर के गारे से बनाया गया था तथा रत्नों से जड़कर स्वर्ग के बराबर ऊँचा बनाया गया था।[१९४]

जायसी ने मध्ययुगीन चित्रकला का वर्णन करते हुए कहा है कि सिंहलद्वीप के राजा के भवन में जितने भी चित्र लगे थे उनमें विभिन्न प्रकार के नग पच्चीकारी करके लगाए गये थे। तद्नुरूप न 'संगीतकला' की ओर संकेत करते हुए जायसी ने कहा है कि सिंहल की हाट में वेश्याएँ खम्भ-खम्भ पर बैठी थीं। उनके द्वारा बजाई गई वीणा की मधुर ध्वनि को सुनकर मृग चुप-चुप हो बैठे थे। मनुष्य तो सुनकर ऐसे मुग्ध होते थे कि एक कदम भी वहाँ से उठते नहीं थे।

इस प्रकार देश का चौदहवीं शताब्दी में सूफी-कवियों ने लोक प्रचलित आख्यानों को सूफी सिद्धान्तों के अनुरूप कर जन भाषा में प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। इससे एक साहित्यिक परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ जिसे सूफी प्रेमाख्यानक काव्यधारा के नाम से अभिहित किया गया। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य लोक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाले लोकप्रिय ग्रन्थ माने जाते हैं। यद्यपि मध्यकाल राजनैतिक अव्यवस्था का युग था तथापि सूफी कवियों ने अपने गहन अध्ययन और सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा सम-सामाजिक परिस्थितियों, धर्म, नीति, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि का सुन्दर अंकन अपने काव्य ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है।

oo ———— oo

सन्दर्भ - तालिका

अध्याय-६

क्र०सं०	रचनाकार	रचना	पृष्ठ संख्या
१-	माताप्रसाद गुप्त	चांदायन	७
२-	वही	"	२६६
३-	ए० एल० श्रीवास्तव	दा सल्तनत आफ देहली	२६१
४-	वही	"	२९४
५-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१०४
६-	वही	"	१०१
७-	वही	"	६८
८-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	९६
९-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१०२
१०-	सं० माताप्रसाद गुप्त	मृगावती	१२१
११-	सं० वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	३८५
१२-	सं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१३६
१३-	वही	" भूमिका	८२
१४-	वही	"	१२४
१५-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१०४
१६-	सं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१७१
१७-	डा० सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	४४३
१८-	शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	१८
१९-	डा० ज्ञानचन्द शर्मा	चन्दायन का सांस्कृतिक परिवेश	६२-६३
२०-	सं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	

२१-	वही	जायसी ग्रन्थावली	१५४
२२-	पं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	३३२
२३-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१९३
२४-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	२२६
२५-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	२९९
२६-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१३८
२७-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	३००
२८-	ऋग्वेद		१०।९०।१२
२९-	डा० परमेश्वरी लाल गुप्त	चन्दायन	३०३
३०-	वही	,,	,,
३१-	वही	,,	३१६
३२-	,,	,,	१७४
३३-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	९७
३४-	वही	,,	८३
३५-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	२२२
३६-	वही	,,	३०६
३७-	वही	,,	९३
३८-	वही	,,	३०८
३९-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	२४७
४०-	वही	,,	२९१
४१-	नूर मुहम्मद	इन्द्रावती	३३
४२-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	३०६
४३-	पं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१७७
४४-	शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	१३६
४५-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	

४६-	डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१७६
४७-	डा० माताप्रसाद गुप्त	जायसी ग्रन्थावली	१३८
४८-	कासिमशाह	हंस जवाहिर	१८६
४९-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१०१
५०-	कासिमशाह	हंस जवाहिर	१७५
५१-	नूर मुहम्मद	इन्द्रावती	
५२-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	१५७
५३-	वही	,,	१५७
५४-	वही	,,	१४३
५५-	वही	,,	२३८
५६-	वही	,,	१६१
५७-	वही	,,	१५७
५८-	वही	,,	१०४
५९-	वही	,,	२२२
६०-	वही	,,	८५
६१-	वही	,,	१५७
६२-	वही	,,	२१५
६३-	वही	,,	६३
६४-	वही	,,	१०२
६५-	वही	,,	१०६
६६-	वही	,,	२३४
६७-	सं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	२७२
६८-	सं० शिवगोपाल मिश्र	मृगावती	५०
६९-	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	अनुराग बाँसुरी	
७०-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	

७१-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	६०
७२-	वही	,,	२२२
७३-	वही	,,	२२४
७४-	वही	,,	१८२
७५-		पद्मावत	५३
७६-	मंझन	मधुमालती	
७७-	सं० डा० परमेश्वरी लाल गुप्त	चन्दायन	१५७
७८-	वही	,,	१५४
७९-	वही	,,	१५४
८०-	वही	,,	२२५
८१-	वही	,,	२७८
८२-	वही	,,	२४०
८३-	वही	,,	१५७
८४-	वही	,,	८१
८५-	वही	,,	१३२
८६-	सं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	६१
८७-	कासिमशाह	हंस जवाहिर	१५८
८८-	उसमान	चित्रावली	८८
८९-	सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	चन्दायन	८२
९०-	सं० डा० माताप्रसाद गुप्त	मृगावती	५८
९१-	सं० रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	२३
९२-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	४६
९३-	वही	,,	३५०
९४-	वही	,,	२६०
९५-	वही	,,	७२

९६-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	१६
९७-	वही	,,	१५३
९८-	वही	,,	१२६
९९-	वही	,,	१२७
१००-	वही	,,	१२१
१०१-	डा० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	कन्दायन	१५७
१०२-	वही	,,	२३०
१०३-	वही	,,	१३७
१०४-	वही	,,	१०१
१०५-	वही	,,	११६
१०६-	वही	,,	१६
१०७-	वही	,,	२२४
१०८-	वही	,,	४२२
१०९-	वही	,,	६६४
११०-	ए० एल० श्रीवास्तव	दा इक्स्टैंट आफ वैशाली	३२४-२५
१११-	डा० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त	कन्दायन	६२
११२-	वही	,,	६३
११३-	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत	५१ और ५५६
११४-	वही	,,	५८

०० ——— ००

उपसंहार

हिन्दू तथा सूफी संस्कृति के संगम के परिणाम

मध्यकाल में प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना के समय एक ओर तो असहिष्णुता और विद्वेष की भावनाएं लोगों में प्रखर होती जा रही थीं तो दूसरी ओर प्रेम और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए प्रयत्न हो रहे थे। मुसलमानों के स्थायी रूप से भारत में बस जाने के साथ ही अलग-अलग संस्कृतियों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने और समझने का अवसर मिला तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर आदान-प्रदान प्रारम्भ हुआ। धर्म और दर्शन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दुओं ने मुसलमानों के एकेश्वरवाद तथा सूफियों के प्रेमतत्व को अपनी धर्म साधना में उचित स्थान दिया तो सूफियों ने भारतीय वेदान्त और साधनात्मक रहस्यवाद को। वैष्णवों की भांति कीर्तन करते समय सूफियों को भी " हाल " अवस्था में आकर आत्म विभोर होकर मूर्छित होने लगे तो सूफियों की साधना में नृत्य-संगीत आदि का समावेश हुआ। शबे बरात पर दीपमाला और मुहर्रम के अवसर पर ताजिया का जुलूस स्पष्टतः दीपावली और रथयात्रा जैसे हिन्दू उत्सवों से प्रभावित हैं।

मुसलमानों के हिन्दू स्त्रियों से विवाह के फलस्वरूप हिन्दू स्त्रियों ने अपने घरों में हिन्दू प्रथाओं को प्रचलित किया जिससे मुसलमान अत्यधिक प्रभावित हुए। भारतीय मातृत्व की परम्परागत भक्ति, श्रद्धा, सहृदयता और दयालुता ने तत्कालीन क्रूरता को कम कर दिया था। इसके अतिरिक्त मुस्लिम समाज में धन की प्रचुरता होने पर धर्म का प्रभुत्व क्षीण होने लगा था। अन्धविश्वास और अशिक्षा अपनी जड़ें जमाने लगी थे। हिन्दुओं का अमर हो जाने का अन्ध-विश्वास

मुस्लिम समाज में घर कर गया था । इस अन्धविश्वास का उतारा और आरती की प्रथा भी मुसलमानों ने हिन्दुओं से अपना ली थी । हिन्दुओं में परम्परागत मठों, साधु-सन्तों और शिष्यों की जो परम्परायें थीं मुसलमानों ने उसे अपने सन्तों के लिये अपना लिया । और उसके आधार पर उन्होंने पीर, शेख आदि का विकास किया । अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु हिन्दुओं के समान मुसलमान भी इन सन्तों और औलियों के पास जाने लगे । " मानताओं " और " मिन्नतों " में भी उनका विश्वास दृढ़ होने लगा । मुसलमानों ने राजपूतों की " जौहर प्रथा " को भी अपना लिया था ।

दैनिक जीवन में भी मुसलमानों ने हिन्दुओं की प्रथाओं का ही अनुकरण किया । हिन्दू " पगड़ी " मुसलमानों में लोकप्रिय हो गयी । हिन्दुओं की दैनिक स्नान की प्रथा और धार्मिक कृत्य करने के पूर्व शरीर को शुद्ध व पवित्र करने की प्रणाली मुसलमानों ने ग्रहण कर ली । हिन्दुओं के उत्सवों और समारोहों तथा त्यौहारों के अनेक तत्वों को मुसलमानों ने अपना लिये । उदाहरण के लिये मुसलमानों का " शबेबरात " का त्यौहार हिन्दुओं के " शिवरात्रि " के त्यौहार की नकल है । पीरों की पूजा भारत की पूजा का ही दूसरा रूप है ।

भारत में मुस्लिम आधिपत्य के बाद हिन्दुओं में शिशु हत्या और पर्दा प्रथा अधिकृत रूप से प्रचलित हो गयी । मुसलमानों द्वारा कन्याओं का बलात अपहरण होने से " बाल विवाह " उस युग की सर्वमान्य प्रथा हो गयी थी । यद्यपि मध्ययुगीन समाज में स्त्रियों का पूर्ण सम्मान होता था तथापि कन्या का जन्म एक अशुभ घटना मानी जाती थी । मुसलमानों से अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा करने हेतु स्त्रियों में सती प्रथा देश व्यापी हो गई थी ।

मुसलमानों ने हिन्दुओं के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया। उपनिषद, महाभारत, रामायण, भगवद्गीता, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों के अनुवाद फारसी में किए गये। मजहर साहब ने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा के बारे में लिखा है कि - मूर्तिपूजा- मुसलमान सूफियों की ध्यान साधना - "जिक्र" के समान ही है। इतना ही नहीं एक ओर विद्वान मुसलमान अध्ययन और तर्क द्वारा हिन्दू अध्यात्म के समझने का प्रयत्न करते थे तो दूसरी ओर भाव प्रवण और चिंतनशील मुसलमान प्रत्यक्ष और आत्मिक स्फूर्ति द्वारा उसे ग्रहण करके अपने जीवन में मिलाते और उसका अभ्यास करते थे।

दो अलग-अलग धर्मों के होते हुए भी दोनों जातियों में गहरे सांस्कृतिक भेद नहीं थे। दोनों मिलकर एक दूसरे के तीज त्योहार मनाते थे। वे एक ही जबान बोलते थे। यदि परलोक की जिन्दगी को नहीं तो इस लोक की जिन्दगी को एक ही तरह से देखते थे। सूफीमत के अनुयायी इस्लाम के मूल सिद्धान्तों को पूर्ण मान्यता देते हुए भी भारतीय वेदान्त, अद्वैतवाद, योग साधना इत्यादि से प्रभावित थे। हिन्दू पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों से भी वे अभिभूत थे। अतः मध्य युग में हिन्दू मुसलमानों के आपसी सम्बन्ध के इतिहास में ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे हम आजकल की साम्प्रदायिक ईर्ष्या और आपसी सन्देह को उचित ठहरा सकें।

इस प्रकार यह काल दो विभिन्न संस्कृतियों के निकट आकर एक दूसरे को समझने का काल था। सूफियों ने भारतीय योग, अद्वैत आदि को स्वीकार किया तो भारतीय धर्म साधना में उनके प्रेमतत्व एकेश्वरवाद आदि को ग्रहण किया गया। वस्तुतः इसे धार्मिक सहिष्णुता का युग कह सकते हैं जिसमें अनेक बाधाओं के होते हुए भी हिन्दू और मुसलमान जन-साधारण दो ओर से परस्पर भिन्नत्व को दूर कर सह-अस्तित्व के नये धरातल खोजने के प्रयत्न कर रहे थे।

परिशिष्ट

१- मूल : हस्तलिखित ग्रन्थ :

१- पुहुपावती : कुंअरवती : - श्री गोपाल चन्द्र सिन्हा
२- मृगावती - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
३- चन्द्रावती : उत्तरार्द्ध : - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४- प्रेम चिनगारी - श्री अख्तर हुसैन निजामी
५- नूरजहाँ - श्री गोपाल चन्द्र सिन्हा
६- यूसुफ जुलेखा - श्री गोपाल चन्द्र सिन्हा
७- ज्ञानदीप - श्री उदयशंकर शास्त्री

२- सहायक ग्रन्थ सूची : हिन्दी ग्रन्थ :

क्रमसं०	रचना	रचनाकार	प्रकाशन
१-	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा० दीनदयाल गुप्त	हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग वि०सं० २००४
२-	अशोक के फूल	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली
३-	इस्लाम के सूफी साधक	अनु० श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी	मित्र प्रकाशन, इला०
४-	इस्लाम और मुसलमान	शाहजादा मिर्जा अहमद	भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, दिल्ली
५-	इतिहास के आईने में हिन्दू और मुसलमान	डा० यूसुफ मन्सूर	हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी, इलाहाबाद, प्र०सं० १९७५
६-	उसमान दर्शन और काव्य	डा० यश गुलाटी	वाणिका प्रकाशन, नई दिल्ली, [illegible]
७-	उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज	के० एम० मिश्रा	राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर

५८-	भारतीय मध्यकालीन संस्कृति	डा० तरीफ़ अहमद	शारदा पुस्तक भवन, इला० १९७१
५९-	मध्यकालीन धर्म साधना	हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य भवन, इलाहाबाद प्र०सं० १९५२
६०-	मध्यकालीन प्रमुख संतों में अप्रस्तुत योजना	डा० माया श्रीवास्तव	राष्ट्रीय साहित्य भवन, लखनऊ, प्र०सं० १९८३
६१-	मुगल शासकों की धार्मिक नीति-	श्रीराम शर्मा	एस चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली १९६०
६२-	मध्ययुगीन सूफी और संत-साहित्य	डा० पुष्पेश्वर तिवारी	सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद, प्र०सं० १९७०
६३-	मध्यकालीन हिन्दी साहित्य	डा० विजेन्द्र स्नातक डा० रामजी मिश्र	प्रेम पुस्तक भण्डार, दिल्ली प्र०सं० १९७६
६४-	मधुमालती	डा० माताप्रसाद गुप्त	मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद १९६१
६५-	मधुमालती का काव्य सौन्दर्य	डा० दर्शन ढींढी	हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, प्र०सं० १९७२
६६-	मुस्लिम लोक गीतों का - विवेचनात्मक अध्ययन	डा० इरशाद अली	अनुपम प्रकाशन, कानपुर प्र०सं० १९८४
६७-	मंझन का सौन्दर्य दर्शन	डा० शीतलाप्रसाद सक्सेना	निर्मल प्रकाशन, जयपुर प्र०सं० १९६६
६८-	मधुमालती का पुनर्मूल्यांकन	डा० रामबुद्धि राय	वसुन्धरा प्रकाशन, नई प्र०सं० १९७६
६९-	मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति काव्य का विवेचन	डा० गिरधर प्रसाद शर्मा	वसुन्धरा प्रकाशन,
७०-	मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति	डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव	शिवलाल अग्रवाल आगरा, १९७६

७१-	मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास	डॉ० ईश्वरी प्रसाद	इंडियन प्रेस, प्रयाग १९५२
७२-	मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति	डॉ० फारुखी चौबे एवं कन्हैयालाल श्रीवास्तव	हिन्दी संस्थान, लखनऊ १९७९
७३-	मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी प्रेमाख्यान	डॉ० ओम प्रकाश	हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, प्र०सं० १९७१
७४-	मृगावती	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग प्र० संस्करण
७५-	मिरगावती	डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त	श्रीमती अन्नपूर्णा गुप्ता वाराणसी। प्र०सं० १९६७
७६-	मध्ययुगीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक	डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल	साहित्य प्रकाशन, दिल्ली १९७२
७७-	मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय	मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद
७८-	मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य	डॉ० शिवसहाय पाठक	साहित्य भवन, इलाहाबाद प्र०सं० १९७६
७९-	मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति	डॉ० मदनगोपाल गुप्त	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। प्र०सं० १९६८
८०-	मध्यकालीन भारत	पी० डी० गुप्ता	रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा प्र०सं० १९५३
८१-	मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति	डॉ० जनार्दन पाण्डेय	सरस्वती प्रकाशन, प्र०सं० १९८२
८२-	मध्यकालीन हिन्दी संत और विचार साधना	डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया	हिन्दुस्तानी एकेडमी प्र०सं० १९६५

९५- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन — डा० रामकुमार वर्मा — रामनारायणलाल, इला० छठाँ सं० १९७१

९६- हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ० रामचन्द्र शुक्ल — ना०प्र०स०, काशी संवत् २०३५ वि०

९७- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ — डा० शिवकुमार शर्मा — अशोक प्रकाशन, दिल्ली छठाँ सं० १९७२

९८- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ — जयकिशन प्रसाद — विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, १९५१

९९- हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामशंकर शुक्ल 'रसाल' — रायसाहब रामदयाल अग्रवाला, इलाहाबाद प्र०सं० १९३१

१००- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास — सं० परशुराम चतुर्वेदी — ना० प्र० स०, वाराणसी सं० २०२५

१०१- हिन्दी साहित्य का इतिहास — डा० नगेन्द्र — नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १९७३ ई०

१०२- हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी — अतरचन्द कपूर एण्ड संस, देहली १९६४

१०३- हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति — श्यामसुन्दर शुक्ल — काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

१०४- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय — डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल — अवध पब्लिशिंग लखनऊ, सं० २०[illegible]

१०५- हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि — डा० गोविन्द त्रिगुणायत — साहित्य निकेतन कानपुर, १९६१

१०६- हिन्दी साहित्य में विरह प्रसंग — डा० हनुमानदास 'चकोर' — नवयुग ग्रन्थागार लखनऊ,

३- इन्फ्लुएंस आफ् इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर - डा० ताराचन्द दि इण्डियन प्रेस इलाहाबाद १९६३ ई० ।

४- इन्साइक्लोपीडिया आफ दि सोशल साइन्सेज , भा० ४

५- दि इंडियन हैरिटेज - प्रो० हुमायूं कबीर , सन् १९५५

६- ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ् परशिया - ई० जी० ब्राउन लंदन १९२० ई० भा० १,२

७- एनल्स एण्ड ऐन्टिक्विटीज आफ् राजस्थान - कर्नल टॉड

८- ग्लिम्पसेज आफ् मेडीवल इंडियन कल्चर - यूसुफ हुसैन एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५९ ई०

९- नोट्स टुवर्ड्स दि डेफिनिशन आफ् कल्चर - टी० एस० इलियट १९५४ ई०

१०- स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन दि इण्डियन एन्वायरमेन्ट - प्रो० अ० अहमद

११- सूफिज्म इट्स सेंट्स एण्ड श्राइन्स इन इंडिया - जान ए० सुभान , लखनऊ, १९६० ई०

१२- दि सल्तनेट आफ् देहली - ए० एल० श्रीवास्तव, आगरा १९६४

संस्कृत ग्रन्थ

१- अग्नि पुराण - गीता प्रेस , गोरखपुर

२- कूर्म पुराण - " "

३- वाल्मीकीय रामायण - गीता प्रेस, गोरखपुर

पत्र-पत्रिकाएं

१- कल्याण - हिन्दु संस्कृति अंक

२- शोध पत्रिका - डा० देव कोठारी, अप्रैल-जून १९७८, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर ।